दिसंबर, 2023

I.S.S.N. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय
निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. राजीव मणि,
सचिव, विधायी विभाग

श्री अश्वनी,
संयुक्त सचिव और विधायी परामर्शी,
विधायी विभाग, (विभागाध्यक्ष) वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप, एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. आर्येन्दु द्विवेदी,
प्राचार्य, मां वैष्णों देवी ला कालेज
फैजाबाद रोड, चिनहट, लखनऊ, उ.प्र.

श्री कुलदीप चौहान,
चेयरमैन, एस.आर.सी. ला कालेज
129, सेक्टर-1, मंगल पाण्डेय नगर,
मेरठ, उ.प्र.

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री दयाल चन्द ग्रोवर,
सेवानिवृत्त उप-संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री अविनाश शुक्ला,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा,
संपादक

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह, जसवन्त सिंह, जाह्नवी शेखर शर्मा और अमर्त्य हेम विप्र पाण्डेय

परामर्शदाता : सर्वश्री कमला कान्त और असलम खान

ISSN 2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ` 195/-

वार्षिक : ` 2,100/-

© **2023 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय**

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

दिसंबर, 2023 अंक - 12

संपादक

पुण्डरीक शर्मा

[2023] 4 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001. दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्‌वारा प्रकाशित उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्चतम न्यायालय द्‌वारा पारित प्रतिवेद्‌य निर्णय, जो न्यायाधीशों, अधिवक्ताओं, विधि छात्रों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते हैं और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

क्या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अपीलार्थियों का नाम न होने के बावजूद पुलिस द्‌वारा उन्हें पूछताछ के लिए पुलिस थाने लाए जाने तथा पूछताछ के दौरान उनके द्‌वारा पुलिस के समक्ष अपराध की संस्वीकृति किए जाने को आधार बनाकर उनके विरुद्‌ध विचारण किया जा सकता है और क्या जहां पुलिस द्‌वारा साक्ष्य एकत्रित करने के लिए आवश्यक संनियमों के प्रति पूरी तरह उदासीनता बरती गई हो, पंचनामा और अभिग्रहण के साक्षियों ने केवल अपने हस्ताक्षर करके प्रमाणकर्ता के रूप में कार्य किया हो और उनके द्‌वारा स्वयं अपने शब्दों में यह प्रकटीकरण न किया गया हो कि वस्तुएं किसके बताने पर और कैसे बरामद की गई थीं, पुलिस द्‌वारा अभियुक्तों को गिरफ्तार करने के समय के बारे में विसंगति पाई गई हो, वहां ऐसी चूक अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक सिद्‌ध होकर पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला को नष्ट कर सकती है ? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय ने **राजेश और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** [2023] 4 उम. नि. प. 81 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 27 के अधीन यह आवश्यक है कि संबंधित व्यक्ति अवश्य 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना चाहिए और 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होना चाहिए तथा ये दोनों पहलू पुलिस को की गई संस्वीकृति को एक सीमित सीमा तक ग्राह्य बनाने के लिए अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएं हैं और जहां पुलिस द्‌वारा ऐसे

व्यक्तियों को पुलिस थाने ले जाया गया जिनका नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नहीं था और उनसे पूछताछ करने पर उन्होंने अपराध की संस्वीकृति की हो और बाद में उन्हें गिरफ्तार किया गया हो, वहां गिरफ्तार किए जाने से पूर्व उन्हें 'पुलिस अभिरक्षा' में और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना नहीं कहा जा सकता तथा गिरफ्तारी से पूर्व की गई संस्वीकृति और भले ही ऐसी संस्वीकृति से प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी तथ्य का पता चला हो, उसे उनके विरुद्ध साबित नहीं किया जा सकता तथा एक बार पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला में गंभीर खांमियां और दरारें सिद्ध होने पर अभियुक्तों के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता कि अभियोजन पक्ष उन्हें युक्तियुक्त संदेह के परे दोषसिद्ध करने में सफल रहा है और ऐसी परिस्थिति में अभियुक्तों की दोषसिद्धि को बनाए रखना अनुचित होगा, अत:, उन्हें दोषमुक्त किया जाए ।

इस अंक में अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 2001 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्यक प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं।

पुंडरीक शर्मा
संपादक

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

दिसंबर, 2023

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य 585

राजेश और एक अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य 81

संसद् के अधिनियम

अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 2001 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ 1 – 29

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 364/120ख और धारा 302/120ख – व्यपहरण और हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा अभिकथित रूप से मृतक का व्यपहरण किया जाना, फिरौती की रकम की मांग किया जाना और फिर उसकी हत्या कर दिया जाना – पारिस्थितिक साक्ष्य – दोषसिद्धि – आजीवन कारावास और मृत्यु दंडादेश अधिरोपित किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि – संधार्यता – जहां पुलिस द्वारा साक्ष्य एकत्रित करने के लिए आवश्यक सन्नियमों के प्रति पूरी तरह उदासीनता बरती गई हो, पंचनामा और अभिग्रहण के साक्षियों ने केवल अपने हस्ताक्षर करके प्रमाणकर्ता के रूप में कार्य किया हो और उनके द्वारा स्वयं अपने शब्दों में यह प्रकटीकरण न किया गया हो कि वस्तुएं किसके बताने पर और कैसे बरामद की गई थीं, पुलिस द्वारा अभियुक्तों को गिरफ्तार करने के समय के बारे में विसंगति पाई गई हो, वहां ऐसी चूक अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक होने के कारण पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को युक्तियुक्त संदेह के परे दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में गंभीर खामियां और दरारें होने पर उन्हें संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त करना उचित होगा ।

राजेश और एक अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 81

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 26 और 27 – अभियुक्त द्वारा पुलिस को

पृष्ठ संख्या

अपराध की संस्वीकृति किया जाना – ऐसी संस्वीकृति को धारा 27 में अनुध्यात अपवाद को लागू करके ग्राह्य बनाने के लिए पूर्वापेक्षाएं – हत्या के अपराध के संबंध में पुलिस द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों को पूछताछ के लिए पुलिस थाने लाया जाना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्तों का नाम न होना – अभियुक्तों द्वारा पुलिस के समक्ष अपराध की संस्वीकृति किया जाना – संधार्यता – धारा 27 के अधीन यह आवश्यक है कि संबंधित व्यक्ति अवश्य 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना चाहिए और 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होना चाहिए तथा ये दोनों पहलू पुलिस को की गई संस्वीकृति को एक सीमित सीमा तक ग्राह्य बनाने के लिए अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएं हैं और जहां पुलिस द्वारा ऐसे व्यक्तियों को पुलिस थाने ले जाया गया जिनका नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नहीं था और उनसे पूछताछ करने पर उन्होंने अपराध की संस्वीकृति की हो और बाद में उन्हें गिरफ्तार किया गया हो, वहां गिरफ्तार किए जाने से पूर्व उन्हें 'पुलिस अभिरक्षा' में और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना नहीं कहा जा सकता तथा गिरफ्तारी से पूर्व की गई संस्वीकृति और भले ही ऐसी संस्वीकृति से प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी तथ्य का पता चला हो, उसे उनके विरुद्ध साबित नहीं किया जा सकता ।

राजेश और एक अन्य बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** 81

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2023] 4 उम. नि. प.

अक्तूबर-दिसम्बर, 2023

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.		
1	2	3		4		5		
1.	उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** सोनू कुशवाहा (5 जुलाई, 2023)	[2023] 4	1	2023	3210	(2023)	–	–
2.	केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो **बनाम** श्याम बिहारी और एक अन्य (17 जुलाई, 2023)		11		–		8	197
3.	संदीप कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य और एक अन्य (28 जुलाई, 2023)		33		3648		–	–
4.	मो. सिद्दीक (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** महंत सुरेश दास और अन्य (9 नवंबर, 2019)		369		–	(2019)	7	633

1	2	3	4	5
5.	केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो **बनाम** नरोत्तम धाकड़ (25 अगस्त, 2023)	[2023] 4 47	2023 4066	(2023) – –
6.	प्रमोद कुमार मिश्रा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (4 सितंबर, 2023)	69	5119	– –
7.	राजेश और एक अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (21 सितंबर, 2023)	81	4759	– –

[2023] 4 उम. नि. प. 81

राजेश और एक अन्य

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

[2022 की दांडिक अपील सं. 793-794 और 795]

21 सितंबर, 2023

न्यायमूर्ति बी. आर. गवई, न्यायमूर्ति जे. बी. पारदीवाला और न्यायमूर्ति संजय कुमार

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 26 और 27 – अभियुक्त द्‌वारा पुलिस को अपराध की संस्वीकृति किया जाना – ऐसी संस्वीकृति को धारा 27 में अनुध्यात अपवाद को लागू करके ग्राह्य बनाने के लिए पूर्वापेक्षाएं – हत्या के अपराध के संबंध में पुलिस द्‌वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों को पूछताछ के लिए पुलिस थाने लाया जाना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभियुक्तों का नाम न होना – अभियुक्तों द्‌वारा पुलिस के समक्ष अपराध की संस्वीकृति किया जाना – संधार्यता – धारा 27 के अधीन यह आवश्यक है कि संबंधित व्यक्ति अवश्य 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना चाहिए और 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होना चाहिए तथा ये दोनों पहलू पुलिस को की गई संस्वीकृति को एक सीमित सीमा तक ग्राह्य बनाने के लिए अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएं हैं और जहां पुलिस द्‌वारा ऐसे व्यक्तियों को पुलिस थाने ले जाया गया जिनका नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नहीं था और उनसे पूछताछ करने पर उन्होंने अपराध की संस्वीकृति की हो और बाद में उन्हें गिरफ्तार किया गया हो, वहां गिरफ्तार किए जाने से पूर्व उन्हें 'पुलिस अभिरक्षा' में और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना नहीं कहा जा सकता तथा गिरफ्तारी से पूर्व की गई संस्वीकृति और भले ही ऐसी संस्वीकृति से प्राप्त

जानकारी के आधार पर किसी तथ्य का पता चला हो, उसे उनके विरुद्ध साबित नहीं किया जा सकता ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 364/120ख और धारा 302/120ख – व्यपहरण और हत्या – अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा अभिकथित रूप से मृतक का व्यपहरण किया जाना, फिरौती की रकम की मांग किया जाना और फिर उसकी हत्या कर दिया जाना – पारिस्थितिक साक्ष्य – दोषसिद्धि – आजीवन कारावास और मृत्यु दंडादेश अधिरोपित किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि – संधार्यता – जहां पुलिस द्वारा साक्ष्य एकत्रित करने के लिए आवश्यक सन्नियमों के प्रति पूरी तरह उदासीनता बरती गई हो, पंचनामा और अभिग्रहण के साक्षियों ने केवल अपने हस्ताक्षर करके प्रमाणकर्ता के रूप में कार्य किया हो और उनके द्वारा स्वयं अपने शब्दों में यह प्रकटीकरण न किया गया हो कि वस्तुएं किसके बताने पर और कैसे बरामद की गई थीं, पुलिस द्वारा अभियुक्तों को गिरफ्तार करने के समय के बारे में विसंगति पाई गई हो, वहां ऐसी चूक अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक होने के कारण पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को युक्तियुक्त संदेह के परे दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में गंभीर खामियां और दरारें होने पर उन्हें संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त करना उचित होगा ।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि मृतक अजित पाल की माता (अभि. सा. 1) को उसके पिता द्वारा कुछ संपत्ति का विक्रय करने पर पर्याप्त धनराशि प्राप्त हुई थी । यह जानकारी एक पड़ोसी ओम प्रकाश यादव और उसके संपूर्ण परिवार को थी । अभि. सा. 1 का पुत्र अजित पाल 'होलिका' देखने के लिए रात्रि में 9.00 बजे घर से गया था और वापस नहीं आया । अजित की माता और उसके भाई को फिरौती के लिए कॉल प्राप्त हुई । इसके बारे में गोरखपुर पुलिस थाने में एक 'गुमशुदा व्यक्ति' रिपोर्ट दर्ज की गई । अन्वेषण अधिकारी द्वारा साइबर सैल से उस मोबाइल फोन का ब्यौरा और आईएमईआई डेटा अभिप्राप्त किया गया जिससे फिरौती के लिए कॉल आई थी । साइबर सैल द्वारा

अन्वेषण अधिकारी को सूचित किया गया कि जिस मोबाइल से फिरौती के लिए कॉल की गई थी और जो हैंड-सेट प्रयुक्त किया गया था वह ओम प्रकाश यादव को जारी किया गया था । अन्वेषण अधिकारी राजेश यादव को पुलिस थाने लाया और उससे पूछताछ की, जिसके उपरांत उसने राजा यादव के साथ मिलकर अजित पाल की हत्या करने की संस्वीकृति की । उसने राजेश यादव की संस्वीकृति का एक ज्ञापन लेखबद्ध किया, जिसमें उसने यह भी कथन किया कि वह अजित पाल के शव और हत्या करने के लिए प्रयुक्त आयुध को बरामद कराने में मदद करेगा । राजेश यादव अन्वेषण अधिकारी को साक्षियों के साथ उस स्थान पर लेकर गया जहां अजित पाल का शव एक कुंए में पाया गया । इसे एक सफेद प्लास्टिक की बोरी में लपेटा हुआ था । मौजूद साक्षियों द्वारा शव की शनाख्त अजित पाल का होने के रूप में की गई । अजित पाल का गला कटा हुआ था और उसके दाएं हाथ की अंगुलियों में बाल फंसे हुए थे । राजेश यादव के बताने पर एक नहर से एक चाकू अभिगृहीत किया गया । फिर राजेश यादव को गिरफ्तार किया गया । अन्वेषण अधिकारी पुन: राजेश यादव के मकान पर मोबाइल के सिम कार्ड की तलाश के लिए गया किंतु यह नहीं पाया गया । राजेश यादव से साक्षियों की मौजूदगी में गोरखपुर पुलिस थाने में पुन पूछताछ की गई और उसने कथन किया कि मोबाइल फोन जिससे फिरौती कॉल की गई थीं उसके भाई बृजेश यादव के पास है और वह इसको बरामद कराने में मदद करेगा । बृजेश यादव को गोरखपुर पुलिस थाने ले जाया गया और साक्षियों की मौजूदगी में पूछताछ की गई । उसने कथन किया कि उसने उसके भाई राजेश यादव द्वारा दिए गए मोबाइल फोनों को उसके कमरे में एक सूटकेस में छिपाया है और उन्हें अभिगृहीत किया गया । अन्वेषण अधिकारी द्वारा पुलिस थाने में साक्षियों की मौजूदगी में उससे पूछताछ की गई । उसने कथन किया कि उसने घटना के समय उसके द्वारा पहने हुए रक्तरंजित वस्त्रों को छिपाया है और उनको बरामद कराने में मदद करेगा । इस कथन के आधार पर राजा यादव पुलिस और साक्षियों को अपनी डेयरी में लेकर गया जहां रक्त जैसे धब्बों के साथ उसके वस्त्र अभिगृहीत किए गए । ओम प्रकाश यादव को गोरखपुर

पुलिस थाने लाया गया और साक्षियों की मौजूदगी में पूछताछ की गई । उसने कथन किया कि घटना के समय पर राजेश यादव द्वारा पहने हुए रक्तरंजित वस्त्रों को उसके द्वारा उसके मकान के एक कमरे में कुछ घास के नीचे एक प्लास्टिक के थैले में छिपाया गया है । इन वस्त्रों को अभिगृहीत किया गया । ओम प्रकाश यादव को गिरफ्तार किया गया । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, जबलपुर, मध्य प्रदेश द्वारा उन सभी तीनों को विभिन्न धाराओं के अधीन दोषसिद्ध किया गया । ओम प्रकाश यादव को भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 364क के अधीन दोषी ठहराया गया था जबकि राजा यादव और राजेश यादव को भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 302, भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 364क और भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अपराधों का दोषी ठहराया गया था । ओम प्रकाश यादव को जुर्माने सहित आजीवन कारावास, राजा यादव और राजेश यादव को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 364क के अधीन अपराधों के लिए मृत्यु दंडादेश दिया गया । इससे व्यथित होकर सभी तीनों दोषसिद्ध व्यक्तियों ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में अपील की । उनकी अपीलों को मृत्यु दंडादेशों को ध्यान में रखते हुए सेशन न्यायालय से प्राप्त निर्देश के साथ जोड़ दिया गया । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने ओम प्रकाश यादव द्वारा फाइल की गई दांडिक अपील और राजेश यादव और राजा यादव द्वारा फाइल की गई दांडिक अपील के साथ-साथ निर्देश में दिए गए निर्णय द्वारा उनकी दोषसिद्धि और दंडादेशों की पुष्टि की । इस निर्णय को चुनौती देते हुए तीनों दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या किसी व्यक्ति द्वारा अपराध कारित करने की पुलिस को की गई संस्वीकृति के परिणामस्वरूप पता चले तथ्य को उस व्यक्ति के विरुद्ध साबित किया जा सकता है यदि वह उस समय किसी अपराध का अभियुक्त नहीं था और संस्वीकृति करने के समय पुलिस की अभिरक्षा में नहीं था ? उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को मंजूर करते हुए

अभिनिर्धारित – भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 26 में उपबंधित है कि कोई भी संस्वीकृति, जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो, जब वह पुलिस अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित नहीं की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो । इसके पश्चात्, धारा 27 साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 के एक अपवाद की प्रकृति की है । इसमें यह कहा गया है कि जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी । अत: साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन यह आवश्यक है कि संबंधित व्यक्ति अवश्य 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना चाहिए और 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होते हुए उसने अवश्य ऐसी जानकारी दी हो जिससे किसी तथ्य का पता चला हो और उस जानकारी में से उतनी, चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी पता चले तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, उसके विरुद्ध साबित की जा सकेगी । वस्तुत:, दोनों पहलू अर्थात् 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होना और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभिगृहीत अपवाद को लागू करके एक सीमित सीमा तक पुलिस को की गई संस्वीकृति को ग्राहय बनाने के लिए अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएं हैं । प्रस्तुत मामले में, यद्यपि राजेश यादव को पुलिस थाने ले जाया गया था, चाहे वह तारीख 29 मार्च, 2013 हो या उससे पूर्व की, तो भी उसे तारीख 29 मार्च, 2013 को 6.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किए जाने तक 'पुलिस अभिरक्षा' में होना नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 'अभियुक्त' के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया था और उसकी गिरफ्तारी होने तक 'किसी अपराध का अभियुक्त' नहीं था । अत: उसकी गिरफ्तारी हो जाने के परिणामस्वरूप ही वह वास्तव में 'पुलिस अभिरक्षा' में आया था और ऐसी गिरफ्तारी से पूर्व और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होने से पूर्व उसके द्वारा की गई संस्वीकृति से प्रत्यक्ष रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 का अतिक्रमण होगा और ऐसी संस्वीकृति

के अनुक्रम में उसके द्वारा दी गई किसी जानकारी के लिए धारा 27 के अधीन अपवाद को लागू करने की कोई संभाव्यता नहीं है, भले ही इसके परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चला हो । परिणामत:, तात्पर्यित रूप से पता चले शव, हत्या करने में प्रयुक्त आयुध और अन्य तात्विक वस्तुओं को, भले ही इनका राजेश यादव के बताने पर पता चला था, उसके विरुद्ध साबित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह उस सुसंगत समय पर जब उसने अभिकथित रूप से संस्वीकृति की थी, वह 'किसी अपराध का अभियुक्त' नहीं था और 'पुलिस अभिरक्षा' में नहीं था । ऐसा ही मामला राजेश यादव और ओम प्रकाश का भी है, वे भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 'अभियुक्त' के रूप में नामित नहीं थे और वे उनकी संस्वीकृतियां अभिलिखित किए जाने और उनके आधार पर अभिकथित अभिग्रहण किए जाने के काफी बाद में गिरफ्तार किए जाने और 'पुलिस अभिरक्षा' में लिए जाने तक 'किसी अपराध के अभियुक्त' नहीं थे । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पुलिस की ओर से की गई यह चूक अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक है क्योंकि यह चूक तात्पर्यित रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन आवश्यक रूप से अपीलार्थी के बताने पर की गई 'बरामदगियों' पर उलटी पड़ती है । इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने जिस रीति में कार्यवाहियों को तैयार करने की कोशिश की थी, उससे स्वत: एक महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता है और यह समान रूप से अभियोजन के पक्षकथन को कमजोर करने वाला है । (पैरा 22, 27 और 28)

अभियोजन के पक्षकथन के सिंहावलोकन से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि यह पूर्ण रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है क्योंकि अजित पाल के व्यपहरण और हत्या का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था । पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में अभियोजन पक्ष को अवश्य घटनाओं की अटूट श्रृंखला को साबित करना चाहिए जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हो, न कि किसी अन्य को । इस न्यायालय का निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष अपने पक्षकथन को सिद्ध करने में पूरी तरह असफल रहा है । शुरुआत में ही, उस समय के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है जिस समय पर अजित पाल गुम हुआ था ।

राजवंत कौर द्वारा दर्ज की गई 'गुमशुदा व्यक्ति' रिपोर्ट, प्रदर्श पी-1 में यह अभिलिखित है कि अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को 9.00 बजे घर से निकला था और कहीं गया था तथा उसकी तलाश की गई थी किंतु वह नहीं पाया । महत्वपूर्ण रूप से, इसमें ऐसा कोई वर्णन नहीं है कि जब अजित पाल घर से गया था या वह 'होलिका' देखने के लिए गया था, वह समय 9.00 बजे पूर्वाह्न का था या 9.00 बजे अपराह्न का था । अभि. सा. 6 गोरखपुर पुलिस थाने में मुख्य कांस्टेबल है जिसने तारीख 27 मार्च, 2013 को प्रदर्श पी-1 अभिलिखित किया था । उसने कथन किया कि अभि. सा. 1 ने इत्तिला दी थी कि उसका पुत्र अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को 9.00 बजे किसी को बताए बिना घर से गया था और वह उनके द्वारा तलाश करने के बावजूद नहीं पाया । केवल 9.00 बजे के समय का उल्लेख है और इस बात को विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है कि यह सुबह के 9.00 बजे का समय था या रात्रि के 9.00 बजे का और इसके अतिरिक्त 'होलिका' का भी कोई उल्लेख नहीं है । तथापि, तारीख 28 मार्च, 2013 को 6.20 बजे अपराह्न में रजिस्ट्रीकृत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 273/13 (प्रदर्श पी-35) में यह अभिलिखित है कि अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को 'सवेरे 9.00 बजे' किसी को बताए बिना घर से गया था और उसकी हर जगह तलाश की गई किंतु वह नहीं पाया । पुनः, इसमें उसके द्वारा होलिका देखने के लिए जाने के बारे में कोई उल्लेख नहीं है किंतु यह स्पष्ट संदिग्धता है कि अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को सवेरे 9.00 बजे ही गुम हुआ था या रात्रि के 9.00 बजे । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष का कहना है कि व्यपहरणकर्ता भी फिरौती की उस रकम के बारे में निश्चित नहीं थे जो वे चाहते थे । अभियोजन के पक्षकथन में कई अलग-अलग राशियों का उल्लेख है । यदि अपराध का एकमात्र हेतु फिरौती वसूल करना था, तो यह संदेहास्पद है कि क्या व्यपहरणकर्ता अपनी मांग के बारे में इतने अनिश्चित होते । इस भ्रम को और बढ़ाते हुए राजवंत कौर (अभि. सा. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया कि जिस व्यक्ति ने फोन पर फिरौती की मांग की थी वह एक अजनबी था और इस साक्षी ने फिर यह कहा कि उसने आवाज

पहचान ली थी किंतु क्योंकि उसके बालक का जीवन खतरे में था इसलिए उसने पुलिस को नहीं बताया । उसने यह भी कथन किया कि वह यह नहीं कहती कि उसने आखिर तक आवाज को पहचाना था । उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने अपनी मुख्य परीक्षा में यह भी उल्लेख नहीं किया था कि उसने आवाज पहचान ली थी । सभी बातों का घाल-मेल करते हुए उसने कथन किया कि पुलिस ने तारीख 29 मार्च, 2013 को खोजी कुत्तों का प्रयोग किया था किंतु उसने इस सुझाव से इनकार किया कि कुत्तों को कुंए में शव का पता चला था । इस साक्षी के अनुसार, दोपहर बाद कुंए से शव को बाहर निकालने के पश्चात् सायंकाल में कुत्तों का उपयोग किया गया था । उसके पश्चात् उसने कहा कि खोजी कुत्ते 7-8 बजे कुंए और कपड़े धोने वाले क्षेत्र पर गए थे किंतु उसे स्मरण नहीं है कि किस तारीख को गए थे, किंतु यह सब शव पाए जाने के पश्चात् हुआ था । इसी प्रकार, अभि. सा. 1 के एक घनिष्ट नातेदार और अभियोजन पक्ष के अभिग्रहण ज्ञापनों के एक महत्वपूर्ण साक्षी जितेन्द्र सिंह (अभि. सा. 8) ने कथन किया कि उसने तारीख 28 मार्च, 2013 और 29 मार्च, 2013 के बीच खोजी कुत्तों (स्नीफर डॉग्स) का उपयोग किए जाने के बारे में सुना था किंतु यह उसकी मौजूदगी में नहीं किया गया था । यह समझ से परे है कि पुलिस द्वारा शव, हत्या में प्रयुक्त आयुध और अन्य तात्विक वस्तुओं को पाए जाने के पश्चात् स्नीफर/खोजी कुत्तों का उपयोग क्यों किया गया । महत्वपूर्ण रूप से, अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने अन्वेषण के दौरान स्नीफर/खोजी कुत्तों का उपयोग किए जाने के बारे में उल्लेख तक नहीं किया है । इस बात को छिपाना, चाहे यह किसी भी कारण से हो, अभियोजन पक्ष के लिए अच्छा नहीं है । मामले की बुनियाद में ही ये स्पष्ट असमानताएं होने के कारण चीजें उत्तरोत्तर बदतर हो जाती हैं । साईदत्त बोहरे (अभि. सा. 15), भारती एयरटेल लि. के नोडल अधिकारी, जिसने पुलिस को कॉल डेटा प्रस्तुत किया था, ने कहा कि उसने पुलिस अधीक्षक के कार्यालय को ई-मेल द्वारा वे ब्यौरे भेजे थे जब उसे ऐसा करने के लिए कहा गया था । उसने पुलिस अधीक्षक के कार्यालय को भेजे गए कॉल संबंधी ब्यौरे वाली ई-मेल की प्रति (प्रदर्श पी-31) प्रस्तुत की । उसने

कथन किया कि मोबाइल नंबर 9993135127 का ग्राहक ओम प्रकाश पुत्र बुलेटन यादव था और कॉल का ब्यौरा और आईएमईआई डेटा प्रस्तुत किया । कॉल डेटा विवरणी (प्रदर्श पी-31) से प्रकट होता है कि यह विवरणी पुलिस को तारीख 28 मार्च, 2013 को 6.05 बजे अपराह्न में उपलब्ध कराई गई थी । तथापि, यद्यपि फिरौती के लिए की गई कॉल से ओम प्रकाश यादव का संबंध स्थापित करने के लिए कॉल डेटा विवरणी पर्याप्त थी, तो भी पुलिस ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख किया कि अभियुक्त 'अज्ञात' है । इसके अतिरिक्त, यदि प्रदर्श पी-31 विवरणी से ओम प्रकाश यादव की अंतर्ग्रस्तता इंगित होती थी, जैसा कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) द्वारा दावा किया गया है, तो इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि पुलिस ने पहले राजेश यादव को क्यों उठाया था । इसके अतिरिक्त, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस बारे में कोई स्पष्टता नहीं है कि पुलिस द्वारा अपीलार्थियों को वास्तव में कब गिरफ्तार किया गया था । अभि. सा. 2 ने अपनी मुख्य परीक्षा में कथन किया कि पुलिस ने राजेश यादव को पकड़ा और उसे तारीख 28 मार्च, 2013 को ही दोपहर बाद गोरखपुर पुलिस थाने ले गई । अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान पुनः यह प्रकथन किया कि पुलिस तारीख 28 मार्च, 2013 को ओम प्रकाश यादव को नहीं ले गई थी अपितु वे राजेश यादव और राजा यादव को ले गई थी । अभि. सा. 2 ने स्पष्ट रूप से इस सुझाव से इनकार किया कि पुलिस तारीख 28 मार्च, 2013 को राजा यादव और राजेश यादव को नहीं ले गई थी और वे उन्हें तारीख 29 मार्च, 2013 को लेकर गई थी । शिव प्रकाश (अभि. सा. 4), अभियुक्तों के एक नातेदार, ने भी यह कथन किया कि गोरखपुर पुलिस उसे राजा यादव, बृजेश यादव, ओम प्रकाश यादव और राजेश यादव के साथ लेकर गई थी और उन्हें तारीख 28 मार्च, 2013 की रात्रि में पुलिस थाने में रखा था जहां उनकी पिटाई की गई थी । उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिपरीक्षा की गई । उसने पुनः दावा किया कि पुलिस उन्हें तारीख 28 मार्च, 2013 की रात्रि में लेकर गई थी । उसने कथन किया कि उसे गोरखपुर पुलिस थाने से 5 तारीख को छोड़ा गया था किंतु उसने डर के

कारण शिकायत नहीं की थी क्योंकि पुलिस ने उसकी बहुत पिटाई की थी । यदि अभि. सा. 2 के अभिसाक्ष्य पर विश्वास न भी किया जाए, तो भी अभियोजन पक्ष के अपने साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य पर विचार करने पर यह पता चलता है कि पुलिस द्वारा राजेश यादव और राजा यादव को तारीख 28 मार्च, 2013 को ही ले जाया गया था न कि तारीख 29 मार्च, 2013 को, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है । तथापि, उनकी गिरफ्तारियां बहुत बाद में की गई दर्शाई गई हैं । राजेश यादव को तारीख 29 मार्च, 2013 को ही 6.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार कर लिया गया था, जबकि राजा यादव को तारीख 31 मार्च, 2013 को 5.40 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया गया था । ओम प्रकाश यादव को बहुत बाद में तारीख 5 अप्रैल, 2013 को 3.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया गया था । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने तारीख 29 मार्च, 2013 को 1.45 बजे अपराह्न में राजेश यादव की परीक्षा की और उसकी गिरफ्तारी किए बिना ही उसकी संस्वीकृति को अभिलिखित किया, जिसके द्वारा वह 'अपराध का अभियुक्त' हो गया था । इस संस्वीकृति के आधार पर ही पुलिस और साक्षी अभिकथित रूप से राजेश यादव के साथ उस कुंए पर गए थे, जहां से अजित पाल के शव को निकाला गया था । वस्तुतः, राजेश यादव उस समय 'किसी अपराध का अभियुक्त' तक नहीं था जब उसने संस्वीकृति की थी और अभिकथित रूप से शव का पता लगाने में पुलिस की मदद की थी । इसी प्रकार, राजा यादव को उसकी संस्वीकृति अभिलिखित किए जाने के समय तक गिरफ्तार नहीं किया गया था और वह उस समय 'किसी अपराध का अभियुक्त' नहीं था जब उसने अभिकथित रूप से अपने रक्तरंजित वस्त्रों को अभिगृहीत कराने में पुलिस की मदद की थी । वस्तुतः, वे उस समय 'पुलिस की अभिरक्षा' में नहीं थे । इस स्थिति में, महत्वपूर्ण प्रश्न जो उद्भूत होता है वह पुलिस द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया की विधिक पवित्रता और परिणामतः उनके द्वारा ऐसी तथाकथित संस्वीकृतियों के आधार पर किए गए अभिग्रहणों से संबंधित महत्व के बारे में है । (पैरा 14, 15, 16, 17, 18, 19 और 21)

प्रस्तुत मामले में पंचनामा और ज्ञापन जिस रीति और पद्धति में तैयार किए गए थे उससे अभियोजन पक्ष निस्सहाय हो जाता है । उदाहरणार्थ, तारीख 29 मार्च, 2013 के नक्शा पंचनामा (प्रदर्श पी-3) में अभि. सा. 2 और अभि. सा. 8 सहित पांच साक्षियों के नाम अभिलिखित हैं और उल्लेख किया गया है कि साक्षियों ने मृतक अजित पाल **उर्फ** बोबी के शव का निरीक्षण किया था ; यह कि मृतक की गरदन की दायीं तरफ एक बड़ा घाव था ; यह कि पंच साक्षियों की राय में मृतक की हत्या राजेश यादव और राजा यादव द्वारा एक चाकू से उसका गला काटकर की गई थी ; यह कि उसका शव एक बोरी में लिपटा हुआ था ; और उस बोरी को एक कुंए में फेंक दिया था । फिर इसमें अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) की राय अभिलिखित की गई है जिसमें तथ्यात्मक पहलुओं का उल्लेख करने के पश्चात् उसने उल्लेख किया कि अजित पाल की हत्या राजेश यादव और राजा यादव द्वारा एक चाकू से उसका गला काटकर की गई थी । महत्वपूर्ण रूप से, यह आख्यान पंच साक्षियों का नहीं है अपितु अधिकांशत: स्वयं अभि. सा. 16 का है और पंच साक्षियों ने पंचनामा पर मात्र हस्ताक्षर किए हैं । इसके ही सदृश, अपराध ब्यौरा प्ररूप (प्रदर्श पी-13) में उल्लिखित है कि अपराध स्थल का तारीख 29 मार्च, 2013 को 3.15 बजे अपराह्न में दौरा किया गया था और इसमें अभिलिखित है कि खंडारी नहर से 15 मीटर एक पुराना कुंआ स्थित है ; कुंए के चारों ओर झाड़ियां उगी हुई हैं ; एक सफेद बोरी में शव था जो कुंए के पानी में तैर रहा था ; कुंए की चौड़ाई 2 मीटर 70 सें. मी. थी ; कुंआ 6 मीटर गहरा था ; और कुंए में एक मीटर पानी था और 5 मीटर खाली था । महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि अपराध ब्यौरा प्ररूप में उल्लिखित है कि दो पंच साक्षी मौजूद थे, तो भी उनके द्वारा किया गया कोई आख्यान नहीं है और उन्होंने मात्र उस प्ररूप पर हस्ताक्षर किए हैं । यही स्थिति कुंए के धोवन क्षेत्र और फर्श की दीवारों पर रक्त ; काली प्लास्टिक की चपलें ; और शराब की एक खाली बोतल पाए जाने से संबंधित अपराध ब्यौरा प्ररूप (प्रदर्श पी-14) की है । इस अपराध ब्यौरा प्ररूप में उन्हीं पंच साक्षियों का उल्लेख है और उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए हैं किंतु फिर से यह उनका आख्यान नहीं है और ऐसा कोई अभिलेखन नहीं किया गया है कि उन्हें कैसे इन वस्तुओं का

पता चला था । इसके अतिरिक्त, इस प्ररूप में सीधे-सीधे यह राय अभिलिखित है कि राजेश यादव और राजा यादव ने अजित पाल की हत्या की, उसका शव एक प्लास्टिक की बोरी में रखा और इसे कुंए में फेंक दिया । क्रमश: राजेश यादव और राजा यादव के रक्तरंजित वस्त्रों के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-18 और पी-23) इसी भांति लिखे गए हैं जिनमें साक्षी बमबम (अभि. सा. 9) और सुरजीत सिंह के नाम हैं किंतु उनकी ओर से ऐसा कोई आख्यान नहीं है कि इन वस्तुओं को ढूंढ़ने के लिए किसी व्यक्ति द्‌वारा उन्हें कैसे ले जाया गया था और सहायता की गई थी । इसी के अनुरूप, रक्तरंजित मिट्‌टी, सादी मिट्‌टी और प्लास्टिक की चप्पलों के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-9) ; शराब की बोतल के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-10) ; मृतक के शव और उसके वस्त्रों के साथ-साथ उसकी दायीं मुट्‌ठी में पाए गए बाल के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-12) ; हत्या करने में प्रयुक्त आयुध के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-11) ; दो मोबाइल फोन के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-19) में भी अभिलेखन की एक-जैसी शैली प्रतिबिंबित होती है । पंचनामाओं और अभिग्रहणों के साक्षियों ने दस्तावेजों के मात्र अनुप्रमाणितकर्ता के रूप में कार्य किया था और स्वयं अपने शब्दों में यह नहीं बताया था कि कैसे इन वस्तुओं का पता चला था अर्थात् किसके बताने पर और कैसे । परिणामत:, पुलिस द्‌वारा इस सभी साक्ष्य को एकत्रित करने के संदर्भ में अभिलिखित की गई इन कार्यवाहियों में कोई विधिपूर्ण विधिमान्यता नहीं है । अभियोजन पक्ष द्‌वारा डीएनए साक्ष्य का भी यह परिदृश्य प्रस्तुत करते हुए अवलंब लिया गया कि अजित पाल ने अपने हमलावर से हाथापाई की थी और उस हाथापाई के दौरान उसने अपने हमलावर के सिर से कुछ बाल उखेड़ लिए थे और वे उसके शव का पता चलने तक उसके हाथ में रहे थे । उस बाल के डीएनए विश्लेषण से साबित हुआ था कि वे राजेश यादव के थे । तथापि, इस कहानी को तर्कहीन पाया गया है । राजा यादव के गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-20) के अनुसार, उसका कद 5 फुट 8 इंच था और अभियोजन पक्ष का कहना है कि उसने अजित पाल, एक 15 वर्षीय

लड़के, जिसका कद 5 फुट 4 इंच था, को पीछे से पकड़ लिया था और राजेश यादव, जिसका कद उसके गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-36) के अनुसार 7 फुट 7 इंच था, ने उसका गला काट दिया था । अजित पाल को अत्यधिक लंबे राजा यादव द्वारा पकड़ लेने पर राजेश यादव, जो उससे बहुत अधिक लंबा था, के सिर पर अपने हाथ ले जाने की और तदद्वारा उसने कोई बाल उखेड़ लेने की संभाव्यता, अंतर्निहित रूप से अनधिसंभाव्य है । यह परिदृश्य स्वयमेव विश्वासोत्पादक नहीं है और गढ़ा गया प्रतीत होता है जिससे राजेश यादव के बाल को अभियोजन के पक्षकथन की संपुष्टि के लिए डीएनए विश्लेषण के लिए सुविधापूर्वक उपलब्ध हो सके । इसके अतिरिक्त, चूंकि इस बारे में संदेह है कि पुलिस द्वारा राजेश याद को तब ले जाया गया था और क्या पुलिस द्वारा उसके बाल निकाले जा सकते थे जब वह उनके नियंत्रण में था, ऐसे साक्ष्य को स्वयं पुलिस द्वारा पुरःस्थापित किए जाने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता । (पैरा 31, 32 और 33)

भारत के विधि आयोग ने मार्च, 2012 में अपनी रिपोर्ट सं. 239 में इसी प्रकार की भावना व्यक्त करते हुए मत व्यक्त किया कि हमारे देश में दोषसिद्धि की दर कम होने के मुख्य कारणों में, अन्य बातों के साथ-साथ, पुलिस द्वारा अकुशल, अवैज्ञानिक अन्वेषण और पुलिस तथा अभियोजन तंत्र के बीच उचित समन्वय की कमी होना सम्मिलित है । इस निराशाजनक अंतरदृष्टि को पर्याप्त समय बीत जाने के बावजूद इस न्यायालय को निराशा के साथ यह कहना पड़ रहा है कि वे आज के दिन तक भी पूरी तरह से सत्य है । यह एक समीचीन मामला है । एक युवा लड़के की युवावस्था में निर्दयतापूर्वक मृत्यु कारित कर दी गई थी और दोषियों को आवश्यक रूप से उसके और उसके परिवार के साथ किए गए अन्याय के लिए जवाब-तलब करने के लिए लाया जाना चाहिए था । तथापि, पुलिस ने जिस रीति में अभियुक्तों के विरुद्ध कार्यवाही करने और साक्ष्य इकट्ठा करने के लिए आवश्यक सन्नियमों के प्रति पूर्ण उदासीनता के साथ अपना अन्वेषण किया ; महत्वपूर्ण सुरागों की जांच न करके और उन अन्य सुरागों को कम महत्व देना जो उस कहानी के लिए उपयुक्त नहीं बैठते थे जिसकी उन्होंने कल्पना की थी ; और अंततोगत्वा एक ठोस, बोधगम्य और अपीलार्थियों की दोषिता को इंगित

करने वाली घटनाओं की विश्वसनीय श्रृंखला को किसी अन्य कल्पना की संभाव्यता के बिना प्रस्तुत करने में असफल रहने से हमारे पास अपीलार्थियों को संदेह का फायदा देने की बजाय कोई विकल्प नहीं रह जाता है । 'युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत के उच्चतर सिद्धांत और इतना ही नहीं पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में अभिभावी होंगे और पूर्विकता दी जाएगी । शायद यह सही समय है कि पुलिस के लिए अपने अन्वेषण के दौरान क्रियान्वित और पालन करने के लिए एक आज्ञापक और विस्तृत प्रक्रिया के साथ अन्वेषण की एक संगत और विश्वसनीय संहिता की खोज की जाए जिससे दोषी तकनीकी आधार पर छूट न जाएं क्योंकि वे हमारे देश में अधिकांश मामलों में ऐसा करते हैं । हमें और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है । यह वास्तव में जटिल है कि अभियोजन के पक्षकथन में असंख्य कमजोर कड़ियां और खामियां होने के बावजूद विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय इसे सकृत दर्शने न केवल स्वीकार करने के लिए तैयार थे अपितु राजेश यादव और राजा यादव पर मृत्यु दंड अधिरोपित और कायम रखने की सीमा तक चले गए । कोई विधिमान्य और स्वीकार्य कारण नहीं दिए गए कि क्यों यह मामला 'विरले से विरलतम मामले' की कोटि में आता है जिससे ऐसा कठोर दंड देने की आवश्यकता हो । इसके विपरीत, हम पाते हैं कि इस मामले में पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला में व्यापक कमियां और दरारें होने के कारण अपीलार्थियों को संदेह का फायदा देते हुए उन्हें दोषमुक्त किए जाने की आवश्यकता है । पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर युक्तियुक्त संदेह के परे उन्हें दोषी ठहराने के लिए अपेक्षित सबूत की मात्रा स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं होती है । उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, यह न्यायालय इन अपीलों को मंजूर करता है और सभी तीनों अपीलार्थियों की सभी आधारों पर दोषसिद्धि और दंडादेशों को अपास्त किया जाता है । (पैरा 38 और 39)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2023]	(2023) 2 एस. सी. सी. 353 : **मनोज और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	33

[2022]	2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1396 : **रामानंद** उर्फ **नंदलाल भारती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	29
[2019]	(2019) 3 एस. सी. सी. 770 : **आशीष जैन** बनाम **मकरंद सिंह और अन्य** ;	25
[2013]	(2013) 13 एस. सी. सी. 1 : **याकूब़ अब्दुल रज़ाक मेनन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** मार्फत **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, बंबई** ;	28
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 192 : **मजेन्द्रन लंगेश्वरन** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली) और एक अन्य** ;	14
[2009]	2009 की दांडिक अपील सं. 1439, तारीख 12 जनवरी, 2023 को विनिश्चित : **बोबी** बनाम **केरल राज्य** ;	26
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 172 **:** **रामरेड्डी खन्ना रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	14
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 728 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **डेविड रोजारियो और एक अन्य** ;	24
[2002]	(2002) 8 एस. सी. सी. 45 : **बोधराज** उर्फ **बोधा और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य** ;	23
[2002]	(2002) 4 एस. सी. सी. 380 : **खेत सिंह** बनाम **भारत संघ** ;	30
[1996]	(1996) 10 एस. सी. सी. 193 : **सी. चेंगारेड्डी और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	14

[1989]	(1989) 2 सप्ली एस. सी. सी. 706 : **पाडला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ;	15
[1985]	[1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116 : **शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	14
[1952]	(1952) 2 एस. सी. सी. 71 : **हनुमंत** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	14
[1947]	ए. आई. आर. 1947 प्रिवी कौंसिल 67 : **पुलुकुरी कोटय्या** बनाम **किंग एम्परर ।**	26

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2022 की दांडिक अपील सं. 793-794 और इसके साथ 2022 की दांडिक अपील सं. 795.

2017 के दांडिक निर्देश सं. 1 और 2017 की दांडिक अपील सं. 84 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, प्रधान न्यायपीठ जबलपुर द्वारा तारीख 10 अगस्त, 2017 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सिद्धार्थ लूथरा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) सुप्रिया जुनेजा, आदित्य सिंगला, भावेश सेठ, शक्ति सिंह, आयुष अग्रवाल और उद्भव सिन्हा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री श्रीयश उदय ललित, पशुपति नाथ राजदान, अभिनव अग्रवाल, कृष्ण गोपाल अभय, (सुश्री) रंझुन गर्ग, (सुश्री) मैत्रेयी जगत जोशी, आस्तिक गुप्ता, (सुश्री) आयुषी मित्तल, कुलदीप कुमार शुक्ला और विपुल अभिषेक

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति संजय कुमार ने दिया ।

न्या. कुमार – जुलाई, 2013 के अंतिम सप्ताह में एक पंद्रह वर्ष आयु के लड़के अजित पाल **उर्फ** बोबी की निर्दयतापूर्वक हत्या कर दी गई थी । अजित पाल की हत्या और संबद्ध अपराधों के लिए 2013 के सेशन मामला सं. 560 में एक पड़ोसी ओम प्रकाश यादव का उसके भाई राजा यादव और पुत्र राजेश **उर्फ** राकेश यादव के साथ विचारण किया गया था । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, जबलपुर, मध्य प्रदेश ने उसमें तारीख 29 दिसंबर, 2016 को पारित किए गए निर्णय द्वारा उन सभी तीनों को विभिन्न धाराओं के अधीन दोषसिद्ध किया । ओम प्रकाश यादव को भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 364क के अधीन दोषी ठहराया गया था जबकि राजा यादव और राजेश यादव को भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 302, भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख के साथ पठित धारा 364क और भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अपराधों का दोषी ठहराया गया था । उसी दिन उन तीनों के विरुद्ध दंडादेश पारित किए गए थे । ओम प्रकाश यादव को आजीवन कारावास और 2,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय करने में असफल रहने पर दो माह का कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । राजा यादव और राजेश यादव को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 364क के अधीन अपराधों के लिए मृत्यु दंडादेश और क्रमश: एक-एक हजार रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने का संदाय करने में व्यतिक्रम करने पर दो माह के कारावास का दंडादेश दिया गया था । उन दोनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अपराध के संबंध में पांच वर्ष के कठोर कारावास और प्रत्येक द्वारा 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यक्तिक्रम करने पर एक माह के कारावास का दंडादेश भी दिया गया था ।

2. इससे व्यथित होकर सभी तीनों दोषसिद्ध व्यक्तियों ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय में अपील की । उनकी अपीलों को मृत्यु दंडादेशों को ध्यान में रखते हुए सेशन न्यायालय से प्राप्त निर्देश (2017 का दांडिक निर्देश मामला सं. 1) के साथ जोड़ दिया गया । मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायापीठ ने ओम प्रकाश यादव द्वारा

फाइल की गई 2017 की दांडिक अपील सं. 83 और राजेश यादव और राजा यादव द्वारा फाइल की गई 2017 की दांडिक अपील सं. 84 के साथ-साथ निर्देश में (2017 का दांडिक निर्देश मामला सं. 1) तारीख 10 अगस्त, 2017 को दिए गए निर्णय द्वारा उनकी दोषसिद्धि और दंडादेशों की राजा यादव और राजेश यादव पर अधिरोपित मृत्यु की शास्ति सहित पुष्टि की ।

3. इस निर्णय को चुनौती देते हुए तीनों दोषसिद्ध व्यक्ति विशेष इजाजत द्वारा इन अपीलों के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष आए हैं । 2022 की दांडिक अपील सं. 793 राजेश यादव और राजा यादव द्वारा 2017 की दांडिक अपील सं. 84 के संदर्भ में फाइल की गई थी जबकि 2022 की दांडिक अपील सं. 794 उनके द्वारा निर्देश (2017 का दांडिक निर्देश मामला सं. 1) के संबंध में फाइल की गई थी । 2017 की दांडिक अपील सं. 795 ओम प्रकाश यादव द्वारा 2017 की दांडिक अपील सं. 83 की खारिजी के विरुद्ध खारिज की गई थी ।

4. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को सिद्ध करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष 17 साक्षियों की परीक्षा की थी और 45 प्रदर्श चिह्नित किए थे । प्रतिरक्षा पक्ष ने तीन साक्षियों की परीक्षा की और साक्ष्य में 14 प्रदर्श प्रस्तुत किए ।

5. संक्षेप में, अभियोजन का पक्षकथन इस प्रकार है – राजवंत कौर (अभि. सा. 1), अजित पाल की माता को उसके पिता द्वारा कुछ संपत्ति का विक्रय करने पर पर्याप्त धनराशि प्राप्त हुई थी । यह विक्रय तारीख 22 मार्च, 2013 को किया गया था किंतु उससे पूर्व उसके द्वारा दस लाख रुपए की राशि नकद प्राप्त की गई थी । विक्रय विलेख के रजिस्ट्रीकरण की तारीख को उसके पिता के नाम में चैक द्वारा 27.5 लाख रुपए की राशि प्राप्त की गई थी । अतिशेष रकम भी उसी दिन नकद प्राप्त हुई थी । अभि. सा. 1 ने उसके द्वारा प्राप्त दस लाख रुपए में से नौ लाख रुपए का सावधि निक्षेप किया था और एक लाख रुपए अपने खाते में रख लिए थे । यह जानकारी एक पड़ोसी ओम प्रकाश यादव और उसके संपूर्ण परिवार को थी । ऐसा होने पर, तारीख 26 मार्च, 2013 को अभि. सा. 1 का पुत्र अजित पाल 'होलिका' देखने के

लिए रात्रि में 9.00 बजे घर से गया था और वापस नहीं आया । अभि. सा. 1 ने तारीख 27 मार्च, 2013 को 4.15 बजे अपराह्न में गोरखपुर पुलिस थाने में एक 'गुमशुदा व्यक्ति' रिपोर्ट दर्ज की । तारीख 28 मार्च, 2013 को अभि. सा. 1 के भाई अमरजीत सिंह **उर्फ** मिट्टू (अभि. सा. 2) और ओम प्रकाश यादव लड़के की तलाश करने के लिए ग्वारीघाट स्थित गुरुद्वारा गए । उन्होंने वहां उसे नहीं पाया किंतु जब वे लौट रहे थे तब अभि. सा. 2 को मोबाइल सं. 8305620342 से उसके मोबाइल फोन पर एक कॉल आई । कॉल करने वाले ने कहा – "मैं खान बोल रहा हूं, बोबी मेरे साथ है । मुझे 50 लाख रुपए भेजो ।" अभि. सा. 2 इस बारे में बताने के लिए अभि. सा. 1 के पास गया और उस समय पर उसी नंबर से उसके मोबाइल पर एक और कॉल आई । अभि. सा. 2 ने फोन को अभि. सा. 1 को दिया और कॉल करने वाले ने कहा "मैं खान बोल रहा हूं । आपका बोबी मेरे साथ है । 50 लाख रुपए भेजो और यदि तुमने पुलिस या किसी अन्य व्यक्ति को बताया तो मैं बोबी का गला काट दूंगा और उसे जान से मार दूंगा ।" अभि. सा. 1 ने उससे ऐसा न करने के लिए कहा और अपने बालक से बात कराने के लिए कहा । उसने फिर एक आवाज यह कहते हुए सुनी : "मम्मी, मुझे बचाओ, मम्मी, मुझे बचाओ, मैं बोबी हूं" । अभि. सा. 1 ने कथन किया कि बोबी की आवाज सुनकर वह गिर गई और मोबाइल उसके हाथ से गिर गया । ओम प्रकाश यादव ने फोन उठाया और कॉल करने वाले से बात करने लगा । उसने कहा "हमें जल्दी बताओ धन कहां लेकर आना है और मैं दीदी के साथ धन ला रहा हूं" । फिर मोनू गुजराल (अभि. सा. 10), एक अन्य पड़ोसी ने फोन लिया किंतु वह कट गया । अभि. सा. 10 ने फिर व्यपहरणकर्ता से कॉल करने के लिए उसी नंबर पर स्वयं अपने फोन का प्रयोग किया और बोबी से बात कराने के लिए कहा । जब व्यपहरणकर्ता ने उससे ऐसा किया, तो अभि. सा. 10 ने अभि. सा. 1 से कहा कि यह बोबी की आवाज नहीं है । फिर कॉल करने वाले ने अभि. सा. 10 से कहा कि बोबी ने उसे बताया है कि उसकी माता के पास तीन लाख रुपए हैं ; इन्हें तुरंत भेजो और अतिशेष 20 लाख रुपए एक माह में दिए जा सकते हैं ।

6. ओम प्रकाश यादव ने अभि. सा. 1 पर एक लाख रुपए की व्यवस्था करने के लिए जोर दिया और शेष 20 लाख रुपए बैंक से निकालने के लिए कहा । तथापि, अभि. सा. 1 ने ओम प्रकाश यादव को एक लाख रुपए नहीं दिए क्योंकि उसके मकान में नातेदार थे । अभि. सा. 10 ने एक कागज के टुकड़े पर वह मोबाइल नंबर अर्थात् 8305620342 लिखा जिससे व्यपहरणकर्ता ने कॉल किया था । जब वह पुलिस थाने से वापस आई, तो ओम प्रकाश यादव उसके पास आया और उसे पुलिस को कुछ न बताने के लिए कहा और कहा कि बोबी को आधी रात छोड़ दिया जाएगा । बाद में, राजा यादव रात्रि में लगभग 11.00 बजे अभि. सा. 1 के मकान पर आया और उसे बताया कि उसके भाई अभि. सा. 2 और उसके अन्य भाई मनोज सिंह ने धन के लालच में उसके पुत्र का व्यपहरण किया है । राजा यादव के हाथ में एक तलवार थी और अभि. सा. 1 से कहा कि यदि वह कहे तो वह उसके भाइयों का गला काट देगा ।

7. फिरौती के लिए प्राप्त कॉल के आधार पर अभि. सा. 2 ने तारीख 28 मार्च, 2013 को गोरखपुर पुलिस थाने में एक रिपोर्ट फाइल की । उसके आधार पर अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 364क और 365 के अधीन 6.20 बजे अपराहन में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 273/13 (प्रदर्श पी-35) रजिस्ट्रीकृत की गई । अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) द्वारा मोबाइल नंबर 8305620342 जिससे फिरौती की कॉल की गई थीं, के लिए साइबर प्रकोष्ठ से कॉल का ब्यौरा और आईएमईआई डेटा अभिप्राप्त किए गए । साइबर प्रकोष्ठ द्वारा अभि. सा. 16 को सूचित किया गया कि फिरौती की कॉल करने के लिए आईएमईआई संख्या 358327028551270 का मोबाइल फोन हैंड-सेट प्रयुक्त किया गया था और इस आईएमईआई नंबर का हैंड-सेट मोबाइल नंबर 9993135127 के साथ भी प्रयुक्त किया गया था, जो ओम प्रकाश यादव को जारी किया गया था । यह जानकारी प्राप्त होने पर अभि. सा. 16 तारीख 29 मार्च, 2013 को नर्मदा नगर, ग्वारीघाट में ओम प्रकाश यादव के मकान पर गया । अभि. सा. 16 राजेश यादव को पुलिस थाने लाया और 1.45 बजे अपराहन में उससे पूछताछ की, जिसके उपरांत उसने राजा यादव के साथ मिलकर अजित पाल की हत्या करने की

संस्वीकृति की । अभि. सा. 16 ने राजेश यादव की संस्वीकृति का एक ज्ञापन (प्रदर्श पी-8) लेखबद्ध किया, जिसमें उसने यह भी कथन किया कि वह अजित पाल के शव और हत्या करने के लिए प्रयुक्त आयुध को बरामद कराने में मदद करेगा । राजेश यादव और अभि. सा. 16 साक्षियों के साथ फिर नर्मदा नगर गए । राजेश यादव उन्हें खंडारी नहर के निकट एक कुए पर लेकर गया । अजित पाल का शव कुए में पाया गया । इसे एक सफेद प्लास्टिक के कट्टे में लपेटा हुआ था । मौजूद साक्षियों द्वारा शव की शनाख्त अजित पाल का होने के रूप में की गई । अजित पाल का गला कटा हुआ था और उसके दाएं हाथ की अंगुलियों में बाल फंसे हुए थे । पुलिस ने एक पंचायतनामा (प्रदर्श पी-2) तैयार किया । इस पर अभि. सा. 2 के हस्ताक्षर हैं । अभि. सा. 2 द्वारा नक्शा पंचायतनामा (प्रदर्श पी-3) पर भी हस्ताक्षर किए गए थे । राजेश यादव ने कुछ दूरी पर एक खाली शराब की बोतल पड़ी होने का भी उल्लेख किया । इसे संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-10) के अधीन अभिगृहीत किया गया । राजेश यादव के बताने पर नहर से एक चाकू भी अभिगृहीत किया गया । चाकू पर रक्त जैसे धब्बे थे । साक्षियों की मौजूदगी में एक संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-11) के अधीन अभिग्रहण किया गया । राजेश यादव को फिर तारीख 29 मार्च, 2013 को 6.30 बजे अपराह्न में एक गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-36) के अधीन गिरफ्तार किया गया ।

8. अभि. सा. 16 पुनः तारीख 30 मार्च, 2013 को राजेश यादव के मकान पर मोबाइल नंबर 8305620342 के सिम कार्ड की तलाश के लिए गया किंतु यह नहीं पाया गया । इस संबंध में प्रदर्श पी-37 मकान की तलाश का पंचायतनामा है । तारीख 31 मार्च, 2013 को राजेश यादव से साक्षियों की मौजूदगी में गोरखपुर पुलिस थाने में पुन पूछताछ की गई और ज्ञापन (प्रदर्श पी-15) में उसका कथन अभिलिखित किया गया । उसने कथन किया कि जिस मोबाइल फोन से फिरौती के लिए कॉल की गई थीं वह उसके भाई बृजेश यादव के पास है और वह इसको बरामद कराने में मदद करेगा । तारीख 31 मार्च, 2013 बृजेश यादव को गोरखपुर पुलिस थाने ले जाया गया और साक्षियों की मौजूदगी में

पूछताछ की गई । उसने एक कथन किया, जो ज्ञापन (प्रदर्श पी-17) में अभिलिखित है, कि उसने उसके भाई राजेश यादव द्वारा दिए गए मोबाइल फोनों को उसके कमरे में एक सूटकेस में छिपाया है । बृजेश पुलिस और साक्षियों को मकान में लेकर आया और एक दोहरी सिम का मोबाइल फोन हैंड-सेट, जिनका आईएमईआई संख्या 358327028551278 और 358327028653272 था, अभिगृहीत किया गया । सिम संख्या 9993135127 और आईएमईआई संख्या 910549001346373 और 910549001754378 का माइक्रोमेक्स कंपनी का एक अन्य मोबाइल फोन भी अभिगृहीत किया गया । अभिग्रहण ज्ञापन प्रदर्श पी-19 है ।

9. अभि. सा. 16 ने तारीख 31 मार्च, 2015 को 3.00 बजे अपराह्न में पुलिस थाने में साक्षियों की मौजूदगी में पूछताछ की । उसने कथन किया कि उसने घटना के समय उसके द्वारा पहने हुए रक्तरंजित वस्त्रों को छिपाया है और उनको बरामद कराने में मदद करेगा । इस कथन के आधार पर, जो एक ज्ञापन (प्रदर्श पी-16) में अभिलिखित किया गया था, राजा यादव पुलिस और साक्षियों को नर्मदा नगर में अपनी डेयरी में लेकर गया जहां रक्त जैसे धब्बों के साथ उसके वस्त्र एक अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-18) के अधीन अभिगृहीत किए गए । राजा यादव को तारीख 31 मार्च, 2013 को 5.40 बजे अपराह्न में गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-20) के अधीन गिरफ्तार किया गया ।

10. ओम प्रकाश यादव को तारीख 5 अप्रैल, 2013 को गोरखपुर पुलिस थाने लाया गया और साक्षियों की मौजूदगी में पूछताछ की गई । उसने कथन किया कि घटना के समय पर राजेश यादव द्वारा पहने हुए रक्तरंजित वस्त्रों को उसके द्वारा उसके मकान के एक कमरे में कुछ घास के नीचे एक प्लास्टिक के थैले में छिपाया गया है । इस कथन को ज्ञापन (प्रदर्श पी-22) में अभिलिखित किया गया और उसके आधार पर उसके मकान के एक कमरे में घास के नीचे एक काली टी-शर्ट, एक काले रंग का पूरा पायजामा और एक हल्के हरे रंग का बेरमुडा पाए गए । इन वस्त्रों को तारीख 5 अप्रैल, 2013 को 3.15 बजे अपराह्न में अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-23) के अधीन अभिगृहीत किया गया । ओम प्रकाश

यादव को तारीख 5 अप्रैल, 2013 को 3.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-24) के अधीन गिरफ्तार किया गया ।

11. मृतक की दाईं मुट्ठी के अभिगृहीत किए गए बालों को डीएनए विश्लेषण और राजेश यादव और राजा यादव के रक्त के नमूनों के साथ मिलान कराने के लिए भेजा गया । डीएनए परीक्षण रिपोर्ट से प्रकट हुआ कि उक्त बाल राजेश यादव के हैं । डा. विवेक श्रीवास्तव (अभि. सा. 7) द्वारा शव की शव-परीक्षा की गई । उसकी मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-7) से उपदर्शित हुआ कि मृत्यु परीक्षण से 3 से 5 दिन पूर्व हुई थी और मृत्यु का कारण रक्तस्राव से पहुंचा सदमा था, जो मृत्यु से पूर्व गला काट देने के कारण हुआ था । उसके द्वारा मरणोत्तर परीक्षा तारीख 30 मार्च, 2013 को 10.15 बजे पूर्वाह्न में की गई थी ।

12. अभियोजन पक्ष के अनुसार, फिरौती के लिए कॉल राजा यादव द्वारा ओम प्रकाश यादव के मोबाइल फोन हैंड-सेट, जिसका आईएमईआई सं. 358327028551270 था, में सिम कार्ड डालकर मोबाइल नंबर 8305620342 से की गई थीं । उसके पश्चात् उक्त सिम कार्ड को नष्ट कर दिया गया था और ओम प्रकाश यादव के सिम कार्ड को मोबाइल नंबर 9993135127 वाले हैंड-सेट में डाला गया था । अभियोजन पक्ष के अनुसार, यद्यपि फिरौती के लिए कॉल तारीख 28 मार्च, 2013 को सुबह के समय की गई थीं, तो भी अजित पाल की हत्या राजेश यादव और राजा यादव द्वारा तारीख 26 मार्च, 2013 को ही कर दी गई थी । उन्होंने उसे शराब का लालच दिया, तदुपरांत राजा यादव और अजित पाल ने शराब पी । राजा यादव ने फिर अजित पाल को पकड़ लिया और राजेश यादव ने उसका गला काट दिया । राजेश यादव फिर एक सफेद प्लास्टिक की बोरी लाया और उन्होंने शव को कुए में छिपा दिया । संक्षेपत: और सारत:, यही अभियोजन का पक्षकथन था ।

13. तथ्यात्मक वर्णन से विलग होने से पूर्व, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि अभियोजन पक्ष ने पूर्ण सिंह (अभि. सा. 3) को 'अंतिम बार देखे जाने' की कहानी पर बल देने के लिए एक साक्षी के रूप में प्रायोजित करने की कोशिश की जिससे एक अधिक प्रबल मामला बनाया जा सके । इस साक्षी ने कथन किया कि उसकी पुत्री का विवाह अभि.

सा. 2 के साथ हुआ था । उसने कथन किया कि वह अभियुक्तों को भी जानता है । उसने दावा किया कि तारीख 26 मार्च, 2013 को 6.00 बजे अपराह्न में वह होली पर अपनी पुत्री को मिठाई का डिब्बा देने के लिए नर्मदा नगर गया था । उसने यह भी कथन किया कि उसके मकान से जाने के पश्चात् वह रेलवे क्रासिंग पर पहुंचा और राजा यादव, राजेश यादव और अजित पाल से मिला । अजित पाल ने उसका सत्कार किया और उसने अजित पाल से पूछा कि अपराह्न के 9.00 से ज्यादा बजे हैं, वह घर क्यों नहीं गया । अजित पाल ने उसे बताया कि वह 'होलिका' देखने जा रहा है और अन्य व्यक्तियों के साथ चला गया । अभि. सा. 3 ने कथन किया कि वह फिर घर गया और तारीख 28 मार्च, 2013 को उसकी पुत्री द्वारा सूचित किया गया कि अजित पाल का व्यपहरण कर लिया गया है और फिरौती के लिए कॉल की गई हैं । तारीख 29 मार्च, 2013 को उसकी पुत्री ने उसे सूचित किया कि अजित पाल का शव एक कुए के अंदर पाया गया है और राजा यादव, राजेश, बृजेश यादव और ओम प्रकाश यादव ने इसे बरामद कराने में मदद की थी । अभि. सा. 3 ने कथन किया कि वह तारीख 30 मार्च, 2013 को अजय पाल की अंत्येष्टि में गया और जब वह क्रॉसिंग पर नगर निरीक्षक से मिला, तो उसने उसे बताया कि वह तारीख 26 मार्च, 2013 को अजित पाल से राजा यादव और राजेश यादव के साथ मिला था । विचारण न्यायालय द्वारा अभि. सा. 3 के इस वृत्तांत को स्वीकार किया गया था किंतु उच्च न्यायालय द्वारा विश्वास नहीं किया गया था । अत: अभियोजन पक्ष द्वारा 'अंतिम बार देखे जाने' की कहानी को खड़ा करने की ईप्सा धरासायी हो गई थी ।

14. अभियोजन के पक्षकथन के सिंहावलोकन से स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि यह पूर्ण रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है क्योंकि अजित पाल के व्यपहरण और हत्या का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं था । पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में अभियोजन पक्ष को अवश्य घटनाओं की अटूट श्रृंखला को साबित करना चाहिए जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हो, न कि किसी अन्य को (**सी.**

चेंगारेड्डी और अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1], **रामरेड्डी खन्ना रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2], **मजेन्द्रन लंगेश्वरन** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली) और एक अन्य**[3] तथा **शरद बिरधीचंद सारदा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाला मामला देखें) । **हनुमंत** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[5] वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "यह स्मरण रखना उचित है कि ऐसे मामलों में, जहां साक्ष्य पारिस्थितिक प्रकृति का है, जिन परिस्थितियों से दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे पहली बार में पूरी तरह से सिद्ध की जानी चाहिएं, और इस प्रकार सभी तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की कल्पना के अनुरूप होने चाहिएं । पुनः, परिस्थितियां एक निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं और वे ऐसी होनी चाहिएं जिनसे साबित किए जाने के लिए प्रस्तावित कल्पना के सिवाय प्रत्येक उप-कल्पना अपवर्जित हो जाए । दूसरे शब्दों में, साक्ष्य की श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषिता के अनुरूप निष्कर्ष निकालने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार शेष न बचे और ये ऐसी होनी चाहिएं जिनसे दर्शित होता हो कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यता में कृत्य अवश्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा ।"

पुनः, **पाडला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[6] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिपुष्टि की कि जब कोई मामला एकमात्र रूप से पारिस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर करता हो, तो ऐसे साक्ष्य से अवश्य निम्नलिखित कसौटियों का समाधान होना चाहिए :–

---

[1] (1996) 10 एस. सी. सी. 193.

[2] (2006) 10 एस. सी. सी. 172.

[3] (2013) 7 एस. सी. सी. 192.

[4] [1985] 1 उम. नि. प. 995 = (1984) 4 एस. सी. सी. 116.

[5] (1952) 2 एस. सी. सी. 71 .

[6] (1989) 2 सप्ली एस. सी. सी. 706.

"1. वे परिस्थितियां, जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, अवश्य सटीक और निश्चित रूप से सिद्ध की जानी चाहिएं ;

2. वे परिस्थितियां एक निश्चित प्रवृत्ति की होनी चाहिएं जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हों ;

3. परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए कि इस निष्कर्ष के सिवाय कोई निष्कर्ष न निकले कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यता में अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था न कि किसी और के द्वारा ; और

4. दोषसिद्धि करने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य अवश्य पूर्ण होना चाहिए और अभियुक्त की दोषिता के सिवाय किसी अन्य कल्पना का पोषक न हो और ऐसा साक्ष्य न केवल अभियुक्त की दोषिता के अनुरूप होना चाहिए अपितु उसकी निर्दोषिता के अनुरूप भी होना चाहिए ।"

15. फिलहाल इन मानकों को लागू करते हुए हमारा निष्कर्ष है कि अभियोजन पक्ष अपने पक्षकथन को सिद्ध करने में पूरी तरह असफल रहा है । साक्ष्य में इतनी गहरी दरारें हैं कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थियों की दोषिता को अचूक इंगित करते हुए अटूट श्रृंखला प्रस्तुत कर सके । अभियोजन के पक्षकथन में प्रकटित विसंगतियां उसके तात्पर्यित वृत्तांत के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न कर देती हैं कि कैसे घटनाओं का प्रकटीकरण हुआ था । प्रायः, न्यायालय पाते हैं कि पुलिस द्वारा अंधाधुंध अति-उत्साहपूर्वक और अनियंत्रित जोश में तथा सम्यक् प्रक्रिया और परिपाटियों की अनदेखी करके ऐसे व्यक्तियों को उठा लिया जाता है जिनको वे दोषी पक्षकार मानकर चलते हैं और फिर उनके विरुद्ध मामला बना देते हैं और अंततोगत्वा जो साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है उसकी श्रृंखला में दरारें और कमजोर कड़ियां पूरी तरह से दिखाई पड़ने के कारण अपने उस अभिष्ट उद्देश्य के विपरीत कार्य करते हैं, जैसी स्थिति अब है ।

16. शुरूआत में ही, उस समय के बारे में कोई स्पष्टता नहीं है जिस समय पर अजित पाल गुम हुआ था । राजवंत कौर द्वारा दर्ज की

गई 'गुमशुदा व्यक्ति' रिपोर्ट, प्रदर्श पी-1 में यह अभिलिखित है कि अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को 9.00 बजे घर से निकला था और कहीं गया था तथा उसकी तलाश की गई थी किंतु वह नहीं पाया । महत्वपूर्ण रूप से, इसमें ऐसा कोई वर्णन नहीं है कि जब अजित पाल घर से गया था या वह 'होलिका' देखने के लिए गया था, वह समय 9.00 बजे पूर्वाह्न का था या 9.00 बजे अपराह्न का था । अभि. सा. 6 गोरखपुर पुलिस थाने में मुख्य कांस्टेबल है जिसने तारीख 27 मार्च, 2013 को प्रदर्श पी-1 अभिलिखित किया था । उसने कथन किया कि अभि. सा. 1 ने इत्तिला दी थी कि उसका पुत्र अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को 9.00 बजे किसी को बताए बिना घर से गया था और वह उनके द्वारा तलाश करने के बावजूद नहीं पाया । केवल 9.00 बजे के समय का उल्लेख है और इस बात को विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है कि यह सुबह के 9.00 बजे का समय था या रात्रि के 9.00 बजे का और इसके अतिरिक्त 'होलिका' का भी कोई उल्लेख नहीं है । तथापि, तारीख 28 मार्च, 2013 को 6.20 बजे अपराह्न में रजिस्ट्रीकृत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 273/13 (प्रदर्श पी-35) में यह अभिलिखित है कि अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को 'सवेरे 9.00 बजे' किसी को बताए बिना घर से गया था और उसकी हर जगह तलाश की गई किंतु वह नहीं पाया । पुनः, इसमें उसके द्वारा होलिका देखने के लिए जाने के बारे में कोई उल्लेख नहीं है किंतु यह स्पष्ट संदिग्धता है कि अजित पाल तारीख 26 मार्च, 2013 को सवेरे 9.00 बजे ही गुम हुआ था या रात्रि के 9.00 बजे । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष का कहना है कि व्यपहरणकर्ता भी फिरौती की उस रकम के बारे में निश्चित नहीं थे जो वे चाहते थे । अभियोजन के पक्षकथन में कई अलग-अलग राशियों का उल्लेख है । यदि अपराध का एकमात्र हेतु फिरौती वसूल करना था, तो यह संदेहास्पद है कि क्या व्यपहरणकर्ता अपनी मांग के बारे में इतने अनिश्चित होते ।

17. इस भ्रम को और बढ़ाते हुए राजवंत कौर (अभि. सा. 1) ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह कथन किया कि जिस व्यक्ति ने फोन पर फिरौती की मांग की थी वह एक अजनबी था और इस साक्षी ने फिर यह कहा कि उसने आवाज पहचान ली थी किंतु क्योंकि उसके बालक का

जीवन खतरे में था इसलिए उसने पुलिस को नहीं बताया । उसने यह भी कथन किया कि वह यह नहीं कहती कि उसने आखिर तक आवाज को पहचाना था । उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने अपनी मुख्य परीक्षा में यह भी उल्लेख नहीं किया था कि उसने आवाज पहचान ली थी । सभी बातों का घाल-मेल करते हुए उसने कथन किया कि पुलिस ने तारीख 29 मार्च, 2013 को खोजी कुत्तों का प्रयोग किया था किंतु उसने इस सुझाव से इनकार किया कि कुत्तों को कुंए में शव का पता चला था । इस साक्षी के अनुसार, दोपहर बाद कुंए से शव को बाहर निकालने के पश्चात् सायंकाल में कुत्तों का उपयोग किया गया था । उसके पश्चात् उसने कहा कि खोजी कुत्ते 7-8 बजे कुंए और कपड़े धोने वाले क्षेत्र पर गए थे किंतु उसे स्मरण नहीं है कि किस तारीख को गए थे, किंतु यह सब शव पाए जाने के पश्चात् हुआ था । इसी प्रकार, अभि. सा. 1 के एक घनिष्ट नातेदार और अभियोजन पक्ष के अभिग्रहण ज्ञापनों के एक महत्वपूर्ण साक्षी जितेन्द्र सिंह (अभि. सा. 8) ने कथन किया कि उसने तारीख 28 मार्च, 2013 और 29 मार्च, 2013 के बीच खोजी कुत्तों (स्नीफर डॉग्स) का उपयोग किए जाने के बारे में सुना था किंतु यह उसकी मौजूदगी में नहीं किया गया था । यह समझ से परे है कि पुलिस द्वारा शव, हत्या में प्रयुक्त आयुध और अन्य तात्विक वस्तुओं को पाए जाने के पश्चात् स्नीफर/खोजी कुत्तों का उपयोग क्यों किया गया । महत्वपूर्ण रूप से, अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने अन्वेषण के दौरान स्नीफर/खोजी कुत्तों का उपयोग किए जाने के बारे में उल्लेख तक नहीं किया है । इस बात को छिपाना, चाहे यह किसी भी कारण से हो, अभियोजन पक्ष के लिए अच्छा नहीं है ।

18. मामले की बुनियाद में ही ये स्पष्ट असमानताएं होने के कारण चीजें उत्तरोतर बदतर हो जाती हैं । साईदत्त बोहरे (अभि. सा. 15), भारती एयरटेल लि. के नोडल अधिकारी, जिसने पुलिस को कॉल डेटा प्रस्तुत किया था, ने कहा कि उसने पुलिस अधीक्षक के कार्यालय को ई-मेल द्वारा वे ब्यौरे भेजे थे जब उसे ऐसा करने के लिए कहा गया था । उसने पुलिस अधीक्षक के कार्यालय को भेजे गए कॉल संबंधी ब्यौरे वाली ई-मेल की प्रति (प्रदर्श पी-31) प्रस्तुत की । उसने कथन किया कि

मोबाइल नंबर 9993135127 का ग्राहक ओम प्रकाश पुत्र बुलेटन यादव था और कॉल का ब्यौरा और आईएमईआई डेटा प्रस्तुत किया । कॉल डेटा विवरणी (प्रदर्श पी-31) से प्रकट होता है कि यह विवरणी पुलिस को तारीख 28 मार्च, 2013 को 6.05 बजे अपराह्न में उपलब्ध कराई गई थी । तथापि, यद्‌यपि फिरौती के लिए की गई कॉल से ओम प्रकाश यादव का संबंध स्थापित करने के लिए कॉल डेटा विवरणी पर्याप्त थी, तो भी पुलिस ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख किया कि अभियुक्त 'अज्ञात' है । इसके अतिरिक्त, यदि प्रदर्श पी-31 विवरणी से ओम प्रकाश यादव की अंतर्ग्रस्तता इंगित होती थी, जैसा कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) द्‌वारा दावा किया गया है, तो इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि पुलिस ने पहले राजेश यादव को क्यों उठाया था ।

19. इसके अतिरिक्त, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस बारे में कोई स्पष्टता नहीं है कि पुलिस द्‌वारा अपीलार्थियों को वास्तव में कब गिरफ्तार किया गया था । अभि. सा. 2 ने अपनी मुख्य परीक्षा मे कथन किया कि पुलिस ने राजेश यादव को पकड़ा और उसे तारीख 28 मार्च, 2013 को ही दोपहर बाद गोरखपुर पुलिस थाने ले गई । अभि. सा. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान पुन: यह प्रकथन किया कि पुलिस तारीख 28 मार्च, 2013 को ओम प्रकाश यादव को नहीं ले गई थी अपितु वे राजेश यादव और राजा यादव को ले गई थी । अभि. सा. 2 ने स्पष्ट रूप से इस सुझाव से इनकार किया कि पुलिस तारीख 28 मार्च, 2013 को राजा यादव और राजेश यादव को नहीं ले गई थी और वे उन्हें तारीख 29 मार्च, 2013 को लेकर गई थी । शिव प्रकाश (अभि. सा. 4), अभियुक्तों के एक नातेदार, ने भी यह कथन किया कि गोरखपुर पुलिस उसे राजा यादव, बृजेश यादव, ओम प्रकाश यादव और राजेश यादव के साथ लेकर गई थी और उन्हें तारीख 28 मार्च, 2013 की रात्रि में पुलिस थाने में रखा था जहां उनकी पिटाई की गई थी । उसे पक्षद्रोही घोषित किया गया और अभियोजन पक्ष द्‌वारा प्रतिपरीक्षा की गई । उसने पुन: दावा किया कि पुलिस उन्हें तारीख 28 मार्च, 2013 की रात्रि में लेकर गई थी । उसने कथन किया कि उसे गोरखपुर पुलिस थाने से 5 तारीख

को छोड़ा गया था किंतु उसने डर के कारण शिकायत नहीं की थी क्योंकि पुलिस ने उसकी बहुत पिटाई की थी।

20. प्रिंसी ठाकुर (प्रति. सा. 2) ने कथन किया कि वह लंबे समय से ओम प्रकाश यादव के मकान पर जाती रहती थी क्योंकि उसकी माता उनके यहां काम करती रहती थी । उसने दावा किया कि गोरखपुर पुलिस ने राजा यादव और राजेश यादव को तारीख 27 मार्च, 2013 को ही 3.00-4.00 बजे अपराह्न में गिरफ्तार कर लिया था और उन्हें पूछताछ करने के लिए पुलिस थाने ले गई थी । उसने कथन किया कि उसी दिन लगभग 8.00-9.00 बजे अपराह्न में पुलिस उसे भी पूछताछ करने के लिए गोरखपुर पुलिस थाने ले गई थी । उसने अभिकथन किया कि पुलिस ने उनके सभी मोबाइल अभिगृहीत कर लिए थे । इस साक्षी के अनुसार, पुलिस ने राजा यादव और राजेश यादव की बहुत पिटाई की थी । उसने यह भी कथन किया कि पुलिस ने राजेश यादव के बाल खींचे और उन तीनों से पूरे दिन और रात पूछताछ की गई थी । उसने यह भी दावा किया कि तारीख 30 मार्च, 2013 को पुलिस ओम प्रकाश यादव को 2.00-3.00 बजे पुलिस थाने लाई । उसने प्रकथन किया कि पुलिस ने ओम प्रकाश यादव की बहुत पिटाई की और उसने इसे देखा था । ओम प्रकाश यादव कथित रूप से बेहोश हो गया था और दो पुलिस कर्मी राजेश नाग और जुगल किशोर उसे भंडारी अस्पताल लेकर गए । उसने कथन किया कि जब उसे तारीख 1 अप्रैल, 2013 को छोड़ा गया, तो वह ओम प्रकाश यादव को देखने के लिए भंडारी अस्पताल गई और वहां चार पुलिस कर्मी यह सुनिश्चित करने के लिए उसकी निगरानी कर रहे थे कि वह भाग न जाए । उसने कहा कि वह हर दिन ओम प्रकाश यादव को भोजन देने के लिए जाती थी और पुलिस दिन-रात वहां मौजूद रहती थी । उसने कहा कि पुलिस ने उसका मोबाइल अभिगृहीत कर लिया था और उसने इसे न्यायालय के माध्यम से एक रसीद सौंपने पर वापस लिया था । इस प्रतिरक्षा साक्षी का साक्ष्य उसकी प्रतिपरीक्षा के दौरान सैद्धांतिक रूप से अडिग रहा था । अभियोजन पक्ष ने सुविधापूर्वक इस साक्षी की पूरी तरह से अनदेखी की और उसके बारे में किसी प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया ।

21. यदि अभि. सा. 2 के अभिसाक्ष्य पर विश्वास न भी किया जाए, तो भी अभियोजन पक्ष के अपने साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 2 और अभि. सा. 4 के साक्ष्य पर विचार करने पर यह पता चलता है कि पुलिस द्वारा राजेश यादव और राजा यादव को तारीख 28 मार्च, 2013 को ही ले जाया गया था न कि तारीख 29 मार्च, 2013 को, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है । तथापि, उनकी गिरफ्तारियां बहुत बाद में की गई दर्शाई गई हैं । राजेश यादव को तारीख 29 मार्च, 2013 को ही 6.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार कर लिया गया था, जबकि राजा यादव को तारीख 31 मार्च, 2013 को 5.40 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया गया था । ओम प्रकाश यादव को बहुत बाद में तारीख 5 अप्रैल, 2013 को 3.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किया गया था । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने तारीख 29 मार्च, 2013 को 1.45 बजे अपराह्न में राजेश यादव की परीक्षा की और उसकी गिरफ्तारी किए बिना ही उसकी संस्वीकृति को अभिलिखित किया, जिसके द्वारा वह 'अपराध का अभियुक्त' हो गया था । इस संस्वीकृति के आधार पर ही पुलिस और साक्षी अभिकथित रूप से राजेश यादव के साथ उस कुंए पर गए थे, जहां से अजित पाल के शव को निकाला गया था । वस्तुतः, राजेश यादव उस समय 'किसी अपराध का अभियुक्त' तक नहीं था जब उसने संस्वीकृति की थी और अभिकथित रूप से शव का पता लगाने में पुलिस की मदद की थी । इसी प्रकार, राजा यादव को उसकी संस्वीकृति अभिलिखित किए जाने के समय तक गिरफ्तार नहीं किया गया था और वह उस समय 'किसी अपराध का अभियुक्त' नहीं था जब उसने अभिकथित रूप से अपने रक्तरंजित वस्त्रों को अभिगृहीत कराने में पुलिस की मदद की थी । वस्तुतः, वे उस समय 'पुलिस की अभिरक्षा' में नहीं थे । इस स्थिति में, महत्वपूर्ण प्रश्न जो उद्भूत होता है वह पुलिस द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया की विधिक पवित्रता और परिणामतः उनके द्वारा ऐसी तथाकथित संस्वीकृतियों के आधार पर किए गए अभिग्रहणों से संबंधित महत्व के बारे में है ।

22. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप के लिए 'साक्ष्य

अधिनियम') की धारा 26 में उपबंधित है कि कोई भी संस्वीकृति, जो किसी व्यक्ति ने उस समय की हो, जब वह पुलिस अभिरक्षा में हो, ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध साबित नहीं की जाएगी जब तक कि वह मजिस्ट्रेट की साक्षात् उपस्थिति में न की गई हो । इसके पश्चात्, धारा 27 साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 के एक अपवाद की प्रकृति की है । इसमें यह कहा गया है कि जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतनी चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी । अत: साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन यह आवश्यक है कि संबंधित व्यक्ति अवश्य 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना चाहिए और 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होते हुए उसने अवश्य ऐसी जानकारी दी हो जिससे किसी तथ्य का पता चला हो और उस जानकारी में से उतनी, चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी पता चले तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, उसके विरुद्ध साबित की जा सकेगी । वस्तुत:, दोनों पहलू अर्थात् 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में होना और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अभिगृहीत अपवाद को लागू करके एक सीमित सीमा तक पुलिस को की गई संस्वीकृति को ग्राह्य बनाने के लिए अपरिहार्य पूर्वापेक्षाएं हैं ।

23. इस संबंध में, **बोधराज** उर्फ **बोधा और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य**[1] वाले मामले के प्रति निर्देश किया जा सकता है, जिसमें इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि यह अपेक्षा कि 'पुलिस अभिरक्षा' में होना चाहिए, एक अत्यंत असामान्य परिणामों की उत्पादक है और इस कारण ऐसे मामलों में मूल्यवान साक्ष्य का अपवर्जन हो सकता है जहां कोई व्यक्ति कोई अपराध कारित करने के पश्चात् किसी पुलिस आफिसर से मिलता है और अपराध की परिस्थितियों का उल्लेख करता है और उससे इस प्रकार प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप शव,

---

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 45.

आयुध या किसी अन्य तात्विक तथ्य का पता चलता है, और उसे तत्पश्चात् अभिरक्षा में लिया जाता है और एक 'अभियुक्त' बन जाता है । इस न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि यह जानकारी, जो अन्यथा ग्राह्य होगी, साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 के अधीन अग्राह्य बन जाती है क्योंकि यह जानकारी 'किसी पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में व्यक्ति से नहीं आती है या बल्कि ऐसे व्यक्ति से आती है जो 'किसी पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में नहीं था । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त द्वारा 'अभिरक्षा में रहते हुए' दी गई सटीक जानकारी को साबित किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की बरामदगी की जाती है । यह उल्लेख किया गया कि यह सूत्र इस सिद्धांत पर आधारित है कि यदि किसी कैदी से अभिप्राप्त किसी जानकारी के आधार पर तलाशी के परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चलता है, तो ऐसा पता चलना इस बात की गारंटी है कि कैदी द्वारा दी गई जानकारी सही है ।

24. उसके पश्चात् **कर्नाटक राज्य** बनाम **डेविड रोजारियो और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जानकारी, जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अन्यथा ग्राह्य है, तब अग्राह्य बन जाएगी यदि यह 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में व्यक्ति से नहीं आती है या ऐसे व्यक्ति से आती है जो 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में नहीं' था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि जो ग्राह्य है वह जानकारी है न कि पुलिस आफिसर द्वारा इस पर बनाई गई राय और दूसरे शब्दों में, 'अभिरक्षा' में होते हुए अभियुक्त द्वारा दी गई सटीक जानकारी, जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की बरामदगी हुई थी, को साबित किया जाना होगा । इस न्यायालय के अनुसार, दो आवश्यक अपेक्षाएं हैं : (i) जानकारी देने वाला व्यक्ति 'किसी अपराध का अभियुक्त' होना चाहिए ; और (ii) वह अवश्य 'पुलिस की अभिरक्षा' में होना चाहिए ।

25. पुनः, **आशीष जैन** बनाम **मकरंद सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब तथ्यों के आधार पर

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 728.

[2] (2019) 3 एस. सी. सी. 770.

अभियुक्त का संस्वीकृति कथन अस्वैच्छिक होना पाया जाता है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अतिक्रमण में होगा और ऐसी संस्वीकृति अग्राह्य हो जाएगी । यह भी उल्लेख किया गया कि आत्म-अभिशंसी साक्ष्य को स्वीकार करने पर रोक है किंतु यदि इसके परिणामस्वरूप किसी अपराध के संबंध में तात्विक वस्तुओं की बरामदगी की जाती है, तो इसका अक्सर प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार साक्ष्यिक महत्व का ठहराने के लिए आश्रय लिया जाता है । इस न्यायालय ने आगे यह भी सचेत किया कि यदि ऐसा कथन अन्वेषण अधिकारी के असम्यक् दबाव और बाध्यता के अधीन किया जाता है, तो बरामदगी कराने वाले ऐसे कथन का साक्ष्यिक महत्व शून्य हो जाता है ।

26. अभी हाल ही में, **बोबी** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **पुलुकुरी कोटय्या** बनाम **किंग एम्परर**[2] वाले मामले में के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया, जिसमें साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 पर विस्तार से विचार किया गया था और यह उल्लेख किया गया था कि धारा 27 में पूर्ववर्ती उपबंधों द्वारा अधिरोपित प्रतिषेध का अपवाद उपबंधित है और 'अभियुक्त' द्वारा 'पुलिस अभिरक्षा' में किए गए कतिपय कथनों को साबित किए जाने के लिए समर्थ बनाती है । यह मत व्यक्त किया गया कि धारा 27 को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि 'पुलिस आफिसर की अभिरक्षा' में 'किसी अपराध के अभियुक्त' व्यक्ति से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप पता चले तथ्य का अभिसाक्ष्य दिया जाना चाहिए और तदुपरांत उस जानकारी में से उतनी को, जितनी तद्द्वारा पता चले तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, साबित किया जा सकता है । यह मत व्यक्त किया गया था कि सामान्य तौर पर धारा 27 तब कार्यान्वित की जाती है जब 'पुलिस अभिरक्षा' में कोई व्यक्ति छिपाए गए किसी स्थान से किसी वस्तु, जैसे कि शव, आयुध या आभूषणों को निकाल कर प्रस्तुत करता है जो कथित रूप से उस अपराध से संबंधित है जिसका जानकारी देने वाला व्यक्ति अभियुक्त है । तथापि, प्रिवी कौंसिल ने निष्कर्ष निकाला कि

[1] 2009 की दांडिक अपील सं. 1439, तारीख 12 जनवरी, 2023 को विनिश्चित ।

[2] ए. आई. आर. 1947 प्रिवी कौंसिल 67.

धारा 26 या धारा 27 द्वारा जोड़े गए अपवाद को इस उपबंध के महत्व को शून्य करने वाला अभिनिर्धारित नहीं किया जाना चाहिए और 'पता चले तथ्य' को निकाल कर प्रस्तुत की गई वस्तु के समतुल्य समझना भ्रांतिजनक होगा ; 'पता चले तथ्य' में वह स्थान सम्मिलित होता है जहां से वस्तु को निकाल कर प्रस्तुत किया जाता है और इसके बारे में अभियुक्त का ज्ञान और दी गई जानकारी का इस तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंध होना चाहिए । उदाहरण के द्वारा यह समझाया गया कि अभिरक्षा में व्यक्ति द्वारा दी गई इस जानकारी से कि "मैं मेरे मकान की छत में छिपाए गए चाकू को निकाल कर प्रस्तुत कर दूंगा" चाकू का पता नहीं चलता है क्योंकि चाकुओं का पता तो कई वर्ष पहले चल गया था किंतु यदि इसके परिणामस्वरूप इस तथ्य का पता चलता है कि जानकारी देने वाले के मकान में एक चाकू छिपाया गया है और उसे उसकी जानकारी है और यदि चाकू को अपराध कारित करने में प्रयुक्त किया जाना साबित कर दिया जाता है, तो पता चला तथ्य अति सुसंगत है । इस सिद्धांत करे ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में यह अपेक्षा की गई है कि 'पता चले तथ्य' में वह स्थान सम्मिलित है जिस स्थान से वस्तु को निकाल कर प्रस्तुत किया जाता है और इसके बारे में 'अभियुक्त' को ज्ञान होने और दी गई जानकारी का स्पष्ट रूप से उक्त तथ्य से संबंध होना चाहिए ।

27. प्रस्तुत मामले में, यद्यपि राजेश यादव को पुलिस थाने ले जाया गया था, चाहे वह तारीख 29 मार्च, 2013 हो या उससे पूर्व की, तो भी उसे तारीख 29 मार्च, 2013 को 6.30 बजे अपराह्न में गिरफ्तार किए जाने तक 'पुलिस अभिरक्षा' में होना नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 'अभियुक्त' के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया था और उसकी गिरफ्तारी होने तक 'किसी अपराध का अभियुक्त' नहीं था । अत: उसकी गिरफ्तारी हो जाने के परिणामस्वरूप ही वह वास्तव में 'पुलिस अभिरक्षा' में आया था और ऐसी गिरफ्तारी से पूर्व और 'किसी अपराध का अभियुक्त' होने से पूर्व उसके द्वारा की गई संस्वीकृति से प्रत्यक्ष रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 26 का

अतिक्रमण होगा और ऐसी संस्वीकृति के अनुक्रम में उसके द्वारा दी गई किसी जानकारी के लिए धारा 27 के अधीन अपवाद को लागू करने की कोई संभाव्यता नहीं है, भले ही इसके परिणामस्वरूप किसी तथ्य का पता चला हो । परिणामत:, तात्पर्यित रूप से पता चले शव, हत्या करने में प्रयुक्त आयुध और अन्य तात्विक वस्तुओं को, भले ही इनका राजेश यादव के बताने पर पता चला था, उसके विरुद्ध साबित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह उस सुसंगत समय पर जब उसने अभिकथित रूप से संस्वीकृति की थी, वह 'किसी अपराध का अभियुक्त' नहीं था और 'पुलिस अभिरक्षा' में नहीं था । ऐसा ही मामला राजेश यादव और ओम प्रकाश का भी है, वे भी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 'अभियुक्त' के रूप में नामित नहीं थे और वे उनकी संस्वीकृतियां अभिलिखित किए जाने और उनके आधार पर अभिकथित अभिग्रहण किए जाने के काफी बाद में गिरफ्तार किए जाने और 'पुलिस अभिरक्षा' में लिए जाने तक 'किसी अपराध के अभियुक्त' नहीं थे । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पुलिस की ओर से की गई यह चूक अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक है क्योंकि यह चूक तात्पर्यित रूप से साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन आवश्यक रूप से अपीलार्थी के बताने पर की गई 'बरामदगियों' पर उलटी पड़ती है ।

28. इसके अतिरिक्त, अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने जिस रीति में कार्यवाहियों को तैयार करने की कोशिश की थी, उससे स्वत: एक महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता है और यह समान रूप से अभियोजन के पक्षकथन को कमजोर करने वाला है । **याकूब़ अब्दुल रज़ाक मेनन** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** मार्फत **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, बंबई**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि 'पंचनामा' तैयार करने के पीछे का प्राथमिक आशय उन अधिकारियों की ओर से की जाने वाली संभावित चालाकी या अनुचित व्यवहारों से संरक्षा प्रदान करना है जिन्हें तलाशी का कार्य सौंपा जाता है और यह भी सुनिश्चित करना है कि अपराध में आलिप्त करने वाली ऐसी कोई चीज जिसके बारे में कहा जा सकता हो

[1] (2013) 13 एस. सी. सी. 1.

कि वह तलाशी लिए गए परिसरों से पाई गई है, वह वास्तव में वहां से पाई गई थी और उसे तलाशी लेने वाले दल के अधिकारियों द्‌वारा स्थापित या रखा नहीं गया था । यह भी उल्लेख किया गया कि विधायी आशय में किसी स्थान की तलाशी और किसी वस्तु के अभिग्रहण के लिए स्वतंत्र और सम्मानित व्यक्तियों की मौजूदगी को अनिवार्य बनाकर अधिकारियों के इन अनाचारों पर नियंत्रण और रोक लगाना था । यह उल्लेख किया गया कि किसी पंचनामा को न्यायालय में तब संपुष्टिकारी साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है जब ऐसे सम्मानित व्यक्ति द्‌वारा, जो उसका साक्षी है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 157 के अधीन न्यायालय में साक्ष्य दिया गया हो । इस न्यायालय ने उल्लेख किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100(4) से धारा 100(8) में अधिमानत: उसी इलाके के दो या अधिक सम्मानित और स्वतंत्र व्यक्तियों की मौजूदगी में तलाशी के संबंध में प्रक्रिया अनुबंधित की गई है जिससे जनता के बीच विश्वास और एक सुरक्षा और सरंक्षा की भावना पैदा हो सके । एक विधिमान्य पंचनामा के प्रयोजनों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 से निम्नलिखित आज्ञापक शर्तें निकलकर आती हैं :–

(क) न्यायालय के मस्तिष्क में यह विश्वास पैदा करने के लिए कि कुछ भी आरोपण नहीं किया गया है और सही तलाशी ली गई है तथा अभिगृहीत की गई वस्तुएं वास्तव में पायी गई थी, अधिकारी (निरीक्षण अधिकारी) की व्यक्तिगत तलाशी के लिए सभी आवश्यक उपाय किए जाने चाहिएं ।

(ख) तलाशी कार्यवाहियां अन्वेषण अधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्‌वारा पंच साक्षियों के पर्यवेक्षण में अभिलिखित की जानी चाहिएं ।

(ग) तलाशी की सभी कार्यवाहियों को तलाशी लिए जाने वाले स्थान की पहचान, उन सभी स्थानों, जिनकी तलाशी ली गई है और सभी अभिगृहीत वस्तुओं के विवरण का साथ-साथ उल्लेख करते हुए अभिलिखित किया जाना चाहिए और साथ ही यदि विश्लेषण के प्रयोजन के लिए कोई नमूना लिया गया

है तो उसका भी पंचनामा में साफ-साफ उल्लेख किया जाना चाहिए ।

(घ) अन्वेषण अधिकारी स्थानों की तलाशी के लिए अपने अधीनस्थों की सहायता ले सकता है । यदि कोई वरिष्ठ अधिकारी मौजूद है, तो उन्हें भी मुख्य अन्वेषण अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर करने के पश्चात् पंचनामा पर हस्ताक्षर करने चाहिएं ।

(ङ) पंचनामे में स्थान, पुलिस थाने का नाम, अधिकारी (अन्वेषण अधिकारी) का रैंक, पंच साक्षियों का पूरा विवरण और आरंभ और समाप्ति के समय का अवश्य उल्लेख किया जाना चाहिए ।

(च) पंचनामे को पंच साक्षियों तथा संबंधित अन्वेषण अधिकारी द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए ।

(छ) पंचनामें में किसी उपरिलेखन, सुधार और गलती को साक्षियों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए ।

(ज) यदि तलाशी न्यायालय के वारंट के बिना संहिता की धारा 165 के अधीन की गई है, तो अन्वेषण अधिकारी को अवश्य कारण अभिलिखित करने चाहिएं और एक तलाशी ज्ञापन जारी किया जाना चाहिए ।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि पंचनामा न्यायालय में अग्राह्य हो जाएगा यदि इसे अन्वेषण अधिकारी द्वारा ऐसी रीति में किया गया है जिससे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 का अतिक्रमण होता हो क्योंकि इसकी प्रक्रिया में अन्वेषण अधिकारी से तलाशी कार्यवाहियों को इस प्रकार अभिलिखित करने की अपेक्षा की गई है मानो वे स्वयं पंच साक्षियों द्वारा लिखी गई थी और इसे परीक्षा करने वाले साक्षियों के रूप में अभिलिखित नहीं किया जाना चाहिए, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 में अधिकथित किया गया है । इस न्यायालय ने यह कहते हुए समापन किया कि प्रक्रिया से विचलन की स्थिति में संपूर्ण पंचनामा त्यक्त किए जाने योग्य नहीं होगा और यदि विचलन किसी व्यावहारिक

असंभाव्यता के कारण किया गया है, तब इस असंभाव्यता को अन्वेषण अधिकारी द्‌वारा अभिलिखित किया जाना चाहिए जिससे वह न्यायालय में एक साक्षी के रूप में अपनी परीक्षा के समय उसका उत्तर देने में समर्थ हो सके ।

29. हाल ही में, **रामानंद** उर्फ **नंदलाल भारती** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायापीठ ने यह मत व्यक्त किया कि पता चले साक्ष्य को स्वीकार करने से पूर्व विधि की जिस अपेक्षा को पूरा किए जाने की आवश्यकयता है, वह है पंचनामा की अंतर्वस्तुओं को साबित करना और अन्वेषण अधिकारी अपने अभिसाक्ष्य में पंचनामा की अंतर्वस्तुओं को साबित करने के लिए विधि के अधीन आबद्‌ध है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि केवल तभी यदि अन्वेषण अधिकारी ने विधि के अनुसार पता चले साक्ष्य के पंचनामा की अंतर्वस्तुओं का सफलतापूर्वक साबित कर दिया है, तभी अभियोजन पक्ष ऐसे साक्ष्य का अवलंब लेना न्यायोचित होगा और विचारण न्यायालय भी इसे स्वीकार कर सकता है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अन्वेषण अधिकारी के साक्ष्य पर सुरक्षित रूप से अवलंब लेने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने हेतु यह आवश्यक है कि अभियुक्त द्‌वारा किए गए कथन के रूप में उसके द्‌वारा कहे गए हू-ब-हू शब्दों को अभिलेख पर लाया जाए और इस प्रयोजन के लिए अन्वेषण अधिकारी अपने साक्ष्य में उसके हू-ब-हू कथन का अभिसाक्ष्य देने के लिए आबद्‌ध है और मात्र यह नहीं कहा जाएगा कि आक्रामक आयुध का पता चलने का पंचनामा बनाया गया था क्योंकि अभियुक्त इसे एक विशिष्ट स्थान से निकाल कर देने का इच्छुक था ।

30. **खेत सिंह** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भले ही तलाशी और अभिग्रहण करने में प्रक्रियात्मक अवैधता हो, तद्‌द्‌वारा एकत्रित किया गया साक्ष्य अग्राह्य नहीं हो जाएगा और न्यायालय सभी परिस्थितियों पर यह पता लगाने के लिए विचार करेगा कि क्या अभियुक्त पर कोई गंभीर प्रतिकूल प्रभाव तो

---

[1] 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 1396.

[2] (2002) 4 एस. सी. सी. 380.

नहीं पड़ा था । तथापि, इस न्यायालय ने उल्लेख किया कि यदि तलाशी और अभिग्रहण विधि और प्रक्रिया की पूरी तरह से अवज्ञा करके किए गए थे और ऐसी तलाशी और अभिग्रहण के दौरान एकत्रित किए गए साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने या अंतर्वेशन करने की कोई संभाव्यता थी, तो उस साक्ष्य को ग्रहण नहीं किया जा सकता । यद्यपि ये मताभिव्यक्तियां स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के अधीन तलाशी और अभिग्रहण के संदर्भ में की गई थीं, तो भी उनकी साधारणतया सुसंगतता होगी ।

31. इस पृष्ठभूमि में जांच करने पर, प्रस्तुत मामले में पंचनामा और ज्ञापन जिस रीति और पद्धति में तैयार किए गए थे उससे अभियोजन पक्ष नि:सहाय हो जाता है । उदाहरणार्थ, तारीख 29 मार्च, 2013 के नक्शा पंचनामा (प्रदर्श पी-3) में अभि. सा. 2 और अभि. सा. 8 सहित पांच साक्षियों के नाम अभिलिखित हैं और उल्लेख किया गया है कि साक्षियों ने मृतक अजित पाल **उर्फ** बोबी के शव का निरीक्षण किया था ; यह कि मृतक की गरदन की दायीं तरफ एक बड़ा घाव था ; यह कि पंच साक्षियों की राय में मृतक की हत्या राजेश यादव और राजा यादव द्वारा एक चाकू से उसका गला काटकर की गई थी ; यह कि उसका शव एक बोरी में लिपटा हुआ था ; और उस बोरी को एक कुंए में फेंक दिया था । फिर इसमें अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) की राय अभिलिखित की गई है जिसमें तथ्यात्मक पहलुओं का उल्लेख करने के पश्चात् उसने उल्लेख किया कि अजित पाल की हत्या राजेश यादव और राजा यादव द्वारा एक चाकू से उसका गला काटकर की गई थी । महत्वपूर्ण रूप से, यह आख्यान पंच साक्षियों का नहीं है अपितु अधिकांशत: स्वयं अभि. सा. 16 का है और पंच साक्षियों ने पंचनामा पर मात्र हस्ताक्षर किए हैं । इसके ही सदृश, अपराध ब्यौरा प्ररूप (प्रदर्श पी-13) में उल्लिखित है कि अपराध स्थल का तारीख 29 मार्च, 2013 को 3.15 बजे अपराह्न में दौरा किया गया था और इसमें अभिलिखित है कि खंडारी नहर से 15 मीटर एक पुराना कुंआ स्थित है ; कुंए के चारों ओर झाड़ियां उगी हुई हैं ; एक सफेद बोरी में शव था जो कुंए के पानी में तैर रहा था ; कुंए की चौड़ाई 2 मीटर 70 सें. मी. थी ; कुंआ 6 मीटर

गहरा था ; और कुंए में एक मीटर पानी था और 5 मीटर खाली था। महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि अपराध ब्यौरा प्ररूप में उल्लिखित है कि दो पंच साक्षी मौजूद थे, तो भी उनके द्वारा किया गया कोई आख्यान नहीं है और उन्होंने मात्र उस प्ररूप पर हस्ताक्षर किए हैं। यही स्थिति कुंए के धोवन क्षेत्र और फर्श की दीवारों पर रक्त ; काली प्लास्टिक की चपलें ; और शराब की एक खाली बोतल पाए जाने से संबंधित अपराध ब्यौरा प्ररूप (प्रदर्श पी-14) की है। इस अपराध ब्यौरा प्ररूप में उन्हीं पंच साक्षियों का उल्लेख है और उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए हैं किंतु फिर से यह उनका आख्यान नहीं है और ऐसा कोई अभिलेखन नहीं किया गया है कि उन्हें कैसे इन वस्तुओं का पता चला था। इसके अतिरिक्त, इस प्ररूप में सीधे-सीधे यह राय अभिलिखित है कि राजेश यादव और राजा यादव ने अजित पाल की हत्या की, उसका शव एक प्लास्टिक की बोरी में रखा और इसे कुंए में फेंक दिया।

32. क्रमशः राजेश यादव और राजा यादव के रक्तरंजित वस्त्रों के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-18 और पी-23) इसी भांति लिखे गए हैं जिनमें साक्षी बमबम (अभि. सा. 9) और सुरजीत सिंह के नाम हैं किंतु उनकी ओर से ऐसा कोई आख्यान नहीं है कि इन वस्तुओं को ढूंढ़ने के लिए किसी व्यक्ति द्वारा उन्हें कैसे ले जाया गया था और सहायता की गई थी। इसी के अनुरूप, रक्तरंजित मिट्टी, सादी मिट्टी और प्लास्टिक की चप्पलों के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-9) ; शराब की बोतल के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-10) ; मृतक के शव और उसके वस्त्रों के साथ-साथ उसकी दायीं मुट्ठी में पाए गए बाल के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-12) ; हत्या करने में प्रयुक्त आयुध के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-11) ; दो मोबाइल फोन के अभिग्रहण से संबंधित संपत्ति अभिग्रहण ज्ञापन (प्रदर्श पी-19) में भी अभिलेखन की एक-जैसी शैली प्रतिबिंबित होती है। पंचनामाओं और अभिग्रहणों के साक्षियों ने दस्तावेजों के मात्र अनुप्रमाणितकर्ता के रूप में कार्य किया था और स्वयं अपने शब्दों में यह नहीं बताया था कि कैसे इन वस्तुओं का पता चला

था अर्थात् किसके बताने पर और कैसे । परिणामतः, पुलिस द्वारा इस सभी साक्ष्य को एकत्रित करने के संदर्भ में अभिलिखित की गई इन कार्यवाहियों में कोई विधिपूर्ण विधिमान्यता नहीं है ।

33. अभियोजन पक्ष द्वारा डीएनए साक्ष्य का भी यह परिदृश्य प्रस्तुत करते हुए अवलंब लिया गया कि अजित पाल ने अपने हमलावर से हाथापाई की थी और उस हाथापाई के दौरान उसने अपने हमलावर के सिर से कुछ बाल उखेड़ लिए थे और वे उसके शव का पता चलने तक उसके हाथ में रहे थे । उस बाल के डीएनए विश्लेषण से साबित हुआ था कि वे राजेश यादव के थे । तथापि, इस कहानी को तर्कहीन पाया गया है । राजा यादव के गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-20) के अनुसार, उसका कद 5 फुट 8 इंच था और अभियोजन पक्ष का कहना है कि उसने अजित पाल, एक 15 वर्षीय लड़के, जिसका कद 5 फुट 4 इंच था, को पीछे से पकड़ लिया था और राजेश यादव, जिसका कद उसके गिरफ्तारी ज्ञापन (प्रदर्श पी-36) के अनुसार 7 फुट 7 इंच था, ने उसका गला काट दिया था । अजित पाल को अत्यधिक लंबे राजा यादव द्वारा पकड़ लेने पर राजेश यादव, जो उससे बहुत अधिक लंबा था, के सिर पर अपने हाथ ले जाने की और तद्द्वारा उसने कोई बाल उखेड़ लेने की संभाव्यता, अंतर्निहित रूप से अनधिसंभाव्य है । यह परिदृश्य स्वयंमेव विश्वासोत्पादक नहीं है और गढ़ा गया प्रतीत होता है जिससे राजेश यादव के बाल को अभियोजन के पक्षकथन की संपुष्टि के लिए डीएनए विश्लेषण के लिए सुविधापूर्वक उपलब्ध हो सके । इसके अतिरिक्त, चूंकि इस बारे में संदेह है कि पुलिस द्वारा राजेश यादव को तब ले जाया गया था और क्या पुलिस द्वारा उसके बाल निकाले जा सकते थे जब वह उनके नियंत्रण में था, ऐसे साक्ष्य को स्वयं पुलिस द्वारा पुरःस्थापित किए जाने की संभाव्यता से इनकार नहीं किया जा सकता । **मनोज और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने डीएनए साक्ष्य पर, अन्य बातों के साथ-साथ, विश्वास करने से इनकार कर दिया था क्योंकि इसकी बरामदगी की असलियत संदेहास्पद थी । वर्तमान मामले में भी, चूंकि

[1] (2023) 2 एस. सी. सी. 353.

डीएनए साक्ष्य अर्थात् बाल के स्रोत और उत्पत्ति संदेहास्पद हो जाती है इसलिए उस डीएनए विश्लेषण के अंतिम परिणाम से अभियोजन के पक्षकथन को सिद्ध करने में किसी वास्तविक प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती है ।

34. यदि यह कहने की आवश्यकता हो, अभियोजन के पक्षकथन के ताबूत में अंतिम कील वाली कहावत पुलिस की ओर से की गई चौकाने वाली चूक और असावधानीपूर्वक किया गया अन्वेषण है । यह अभिलेख पर है कि जब अन्वेषण अधिकारी (अभि. सा. 16) ने ओम प्रकाश यादव के मकान की पहली बार प्रदर्श पी-27 पंचनामा के अधीन तलाशी ली थी तब कुछ नहीं पाया गया था । तथापि, बाद में बृजेश यादव की सहायता से की गई तलाशी के परिणामस्वरूप ओम प्रकाश यादव के मकान के कमरों में से एक कमरे में एक संदूक से दो मोबाइल फोनों को अभिग्रहण किया गया था । इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि क्यों यह फोन पहली तलाशी में नहीं पाए गए थे । इसके अतिरिक्त, फोनों के अभिग्रहण के एक साक्षी शाइवल **उर्फ** बमबम (अभि. सा. 9) ने दावा किया था कि मोबाइलों में सिम कार्ड नहीं थे किंतु साफ तौर पर स्वीकार किया कि उन्होंने मोबाइलों को नहीं खोला था और अंदर नहीं देखा था । उसने कहा कि उन्होंने मोबाइलों को चलाने या अंदर नंबरों को देखने की कोशिश नहीं की थी और दोनों फोन बंद थे । इस साक्षी के स्वतः-विरोधाभासी अभिसाक्ष्य से पुलिस द्वारा अपनाई गई संदिग्ध अन्वेषण संबंधी प्रक्रिया को कोई सहायता नहीं मिलती है । जहां तक कॉल डेटा फिरौती के लिए कॉलों का संबंध है, हम उल्लेख कर सकते हैं कि संतोष यादव, सहायक नोडल आफिसर, रिलायंस कम्यूनिकेशन की अभि. सा. 17 के रूप में परीक्षा की गई थी और उस मोबाइल नंबर 8305620342 के कॉल डेटा के बारे में बताया था जिससे फिरौती के लिए कॉल की गई थीं । उसके अनुसार, उक्त मोबाइल नंबर के साथ सिम कार्ड भूराजी पुत्र दीपू को दिया गया था, जिसका पता मकान सं. 433, संजय गांधी वार्ड, तहसील जबलपुर था । उसने भूराजी के 'ग्राहक आवेदन पत्र' को उसके साथ संलग्न निर्वाचन पहचान पत्र के साथ प्रस्तुत

किया । ये दस्तावेज प्रदर्श डी-6 के रूप में चिह्नित किए गए थे । तारीख 28 मार्च, 2013 के कॉल डेटा से दर्शित हुआ था कि इस सिम कार्ड को आईएमईआई सं. 358327028551270 वाले मोबाइल हैंड-सेट पर प्रयुक्त किया गया था । उसने इस संबंध में प्रदर्श पी-35 को साक्ष्य में चिह्नित किया । अत: जिस मोबाइल नंबर से फिरौती के लिए कॉल की गई थीं वह भूराजी पुत्र दीपू के नाम से था और उसका पता उपलब्ध था । तथापि, पुलिस ने भूराजी से संपर्क करने या उसकी परीक्षा करने का प्रयत्न तक नहीं किया जिससे यह पता लगाया जा सके कि उसके सिम कार्ड को कैसे और क्यों फिरौती के लिए कॉल करने के लिए प्रयुक्त किया गया था । अधिक चौकाने वाली बात यह है कि यद्यपि अभि. सा. 17 ने भूराजी को इस मोबाइल नंबर के आबंटन के वास्तविक सबूत (प्रदर्श डी-6) को अभिलेख पर प्रस्तुत किया था, तो भी पुलिस द्वारा ओम प्रकाश यादव और मोबाइल नं. 9993135127, जिसका उस पर आरोपण किया गया था, के बीच संबंध स्थापित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए थे । अभि. सा. 15 ने साफ-साफ कहा था कि उक्त मोबाइल नंबर ओम प्रकाश यादव को आबंटित किया गया था किंतु इसके सबूत में साक्ष्य में कोई दस्तावेज चिह्नित नहीं किया गया था । आश्चर्यजनक रूप से, उसने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया था कि वह उस आवेदन पत्र और प्रयुक्त पहचान पत्र की सत्यापित प्रति लाया था जब इस सिम कार्ड को ग्राहक, ओम प्रकाश यादव को आबंटित किया गया था किंतु इन्हें चिह्नित नहीं किया गया था । वस्तुत:, उक्त मोबाइल नंबर और ओम प्रकाश यादव के बीच कोई संभाव्य संबंध होना सिद्ध नहीं होता है । ऐसे किसी ठोस संबंध के अभाव में, कॉल डेटा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-31) और इसकी अंतर्वस्तुएं अभियोजन के इस पक्षकथन को सिद्ध करने में व्यावहारिक रूप से अनुपयोगी हैं कि फिरौती के लिए कॉल ओम प्रकाश यादव के मोबाइल फोन के हैंड-सेट से उसमें भूराजी का सिम कार्ड डालकर मोबाइल सं. 8305620342 से की गई थीं ।

35. एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि अभि. सा. 2 ने

अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान इस बारे में एक अलग ही कहानी बताई थी कि उन महत्वपूर्ण दिनों के दौरान क्या प्रकटित हुआ था । उसने कथन किया कि तारीख 28 मार्च, 2013 को जब ओम प्रकाश यादव और वह गुरुद्वारा गए थे और जब वह वहां था तो ओम प्रकाश यादव ने उसे एक मिस्ड कॉल दी थी । उसने दावा किया कि उसने लगभग 2.00 बजे अपराह्न में उसे वापस कॉल की और ओम प्रकाश यादव ने उसे बताया कि बोबी वहां था और गुटका लाया था और चला गया था । अभि. सा. 2 ने दावा किया कि उसने अपनी बहिन को कहा था कि चिंता न करें और बोबी ओम प्रकाश यादव के साथ है । तथापि, उसने यह भी कथन किया कि जब वे 3.30 बजे अपराह्न में पुलिस थाने पहुंचें तो उसने पुलिस को ओम प्रकाश यादव द्वारा कॉल करने और उससे बात करने के बारे में नहीं बताया था । उसने दावा किया कि तारीख 28 मार्च, 2013 को ओम प्रकाश यादव ने धमकी दी थी कि वह उसे जान से मार डालेगा और उसके मकान को जला देगा । अभि. सा. 2 के अनुसार, उसने उस कॉल करने वाले की आवाज नहीं पहचानी थी जिसने फिरौती के लिए मांग की थी । उसने आगे कथन किया कि पुलिस ने उस समय उसे या अभि. सा. 1 को नहीं बुलाया था जब वे राजेश यादव और राजा यादव को लेकर गए थे । अभि. सा. 2 ने यह भी कहा कि जब उन्होंने उससे अर्थात् अभि. सा. 2 से तारीख 28 मार्च, 2013 को लगभग 5.00 या 6.00 बजे सायंकाल में पूछताछ की थी तब उसने उनको वह सब कुछ बता दिया था जिसने कॉल आदि की थी । यहां फिर से अभियोजन पक्ष द्वारा कहानी में इस नए मोड़ को पूरी तरह से छिपाया गया है और यह कहानी कैसे संभवत: न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए उसके वृत्तांत में ठीक बैठ सकती थी ।

36. अंतत:, डा. विवेक श्रीवास्तव (अभि. सा. 7), जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने कथन किया था कि मृतक के उदर में अधपचा खाना पाया गया था और इसे मृत्यु से छह घंटे से पहले खाया गया होगा । उसके अनुसार, यह समय 30 मिनट या एक घंटा हो सकता है । उसने कथन किया कि यदि भोजन के साथ शराब पी जाती है और उसके

पश्चात् एक घंटे के भीतर मृत्यु हो जाती है, तब अधपचे खाने से शराब की गंध आना संभव है । उसने स्वीकार किया कि उसे शराब की ऐसी कोई गंध नहीं पाई थी । उसके परिसाक्ष्य से अभियोजन पक्ष का यह दावा कमजोर हो जाता है कि अजित पाल ने उसकी हत्या होने से ठीक पूर्व शराब पी थी ।

37. हमारे निर्णय के साथ इस मामले से विलग होने से पूर्व, हम पुलिस अन्वेषण के मानकों का, जो स्थिर सन्नियम होना प्रतीत होते हैं, निराशा और गहरी तथा गंभीर चिंता के साथ उल्लेख कर सकते हैं । बहुत पहले वर्ष 2003 में, डा. न्यायमूर्ति वी. एस. मालिमथ की 'दांडिक न्याय व्यवस्था के सुधारों पर समिति' की रिपोर्ट में यह अभिलिखित किया गया था :–

> "जिस रीति में पुलिस द्वारा अन्वेषण किए जाते हैं, उनका दांडिक न्याय व्यवस्था के संचालन में विशिष्ट महत्व है । यदि एकत्रित किया गया साक्ष्य गलती या कदाचार से दूषित है तो इसके परिणामस्वरूप न केवल न्याय की गंभीर हानि होगी अपितु दोषी का सफल अभियोजन सच्चाई की पूरी तरह और सावधानीपूर्वक खोज तथा साक्ष्य के संग्रह पर निर्भर करता है और दोनों ही ग्राह्य और प्रमाणक हैं । यह खोज करने में पुलिस का कर्तव्य है कि वह ऋजुतापूर्वक और पूरी तरह से अन्वेषण करे और सभी साक्ष्य, चाहे संदिग्ध व्यक्ति के पक्ष में हो या विपक्ष में, एकत्रित करे । समाज की संरक्षा सर्वोपरि विचारणा होने के कारण विधियां, प्रक्रियाएं और पुलिस परिपाटियां अवश्य ऐसी होनी चाहिएं जिससे सुनिश्चित हो सके कि दोषी को अत्यंत तीव्रता से गिरफ्तार और दंडित किए जा सके और इस प्रक्रिया में निर्दोष को तंग न किया जा सके । अन्वेषण और वास्तव में संपूर्ण दांडिक न्याय व्यवस्था का उद्देश्य सच्चाई की खोज करना है । ...... भारत में पुलिस अन्वेषण के मानक घटिया हैं और सुधार के लिए पर्याप्त गुंजाइश है । बिहार पुलिस आयोग (1961) ने निराशापूर्वक उल्लेख किया कि 'दौरों और

साक्षियों की परीक्षा करने के दौरान, पुलिस अन्वेषण की घटिया गुणवत्ता के संबंध में आयोग के समक्ष सार्वजनिक रूप से ऐसी कोई शिकायत नहीं की गई' । अकुशलता के अतिरिक्त, जनता ने अशिष्टता, अभित्रस्त करने, साक्ष्य को छिपाने, साक्ष्य को गढ़ने और विद्वेषपूर्ण मामलों के अनावश्यक ढेर के बारे में शिकायत की ......।"

38. भारत के विधि आयोग ने मार्च, 2012 में अपनी रिपोर्ट सं. 239 में इसी प्रकार की भावना व्यक्त करते हुए मत व्यक्त किया कि हमारे देश में दोषसिद्धि की दर कम होने के मुख्य कारणों में, अन्य बातों के साथ-साथ, पुलिस द्वारा अकुशल, अवैज्ञानिक अन्वेषण और पुलिस तथा अभियोजन तंत्र के बीच उचित समन्वय की कमी होना सम्मिलित है । इस निराशाजनक अंतरदृष्टि को पर्याप्त समय बीत जाने के बावजूद हमें निराशा के साथ यह कहना पड़ रहा है कि वे आज के दिन तक भी पूरी तरह से सत्य है । यह एक समीचीन मामला है । एक युवा लड़के की युवावस्था में निर्दयतापूर्वक मृत्यु कारित कर दी गई थी और दोषियों को आवश्यक रूप से उसके और उसके परिवार के साथ किए गए अन्याय के लिए जवाब-तलब करने के लिए लाया जाना चाहिए था । तथापि, पुलिस ने जिस रीति में अभियुक्तों के विरुद्ध कार्यवाही करने और साक्ष्य इकट्ठा करने के लिए आवश्यक सन्नियमों के प्रति पूर्ण उदासीनता के साथ अपना अन्वेषण किया ; महत्वपूर्ण सुरागों की जांच न करके और उन अन्य सुरागों को कम महत्व देना जो उस कहानी के लिए उपयुक्त नहीं बैठते थे जिसकी उन्होंने कल्पना की थी ; और अंततोगत्वा एक ठोस, बोधगम्य और अपीलार्थियों की दोषिता को इंगित करने वाली घटनाओं की विश्वसनीय श्रृंखला को किसी अन्य कल्पना की संभाव्यता के बिना प्रस्तुत करने में असफल रहने से हमारे पास अपीलार्थियों को संदेह का फायदा देने की बजाय कोई विकल्प नहीं रह जाता है । 'युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत के उच्चतर सिद्धांत और इतना ही नहीं पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित मामले में अभिभावी होंगे और पूर्विकता दी जाएगी । शायद यह सही समय है कि पुलिस के लिए अपने अन्वेषण के दौरान क्रियान्वित और पालन करने के लिए एक आज्ञापक और

विस्तृत प्रक्रिया के साथ अन्वेषण की एक संगत और विश्वसनीय संहिता की खोज की जाए जिससे दोषी तकनीकी आधार पर छूट न जाएं क्योंकि वे हमारे देश में अधिकांश मामलों में ऐसा करते हैं । हमें और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है ।

39. यह वास्तव में जटिल है कि अभियोजन के पक्षकथन में असंख्य कमजोर कड़ियां और खामियां होने के बावजूद विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय इसे सकृत दर्शने न केवल स्वीकार करने के लिए तैयार हुए अपितु राजेश यादव और राजा यादव पर मृत्यु दंड अधिरोपित और कायम रखने की सीमा तक चले गए । कोई विधिमान्य और स्वीकार्य कारण नहीं दिए गए कि क्यों यह मामला 'विरले से विरलतम मामले' की कोटि में आता है जिससे ऐसा कठोर दंड देने की आवश्यकता हो । इसके विपरीत, हम पाते हैं कि इस मामले में पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला में व्यापक कमियां और दरारें होने के कारण अपीलार्थियों को संदेह का फायदा देते हुए उन्हें दोषमुक्त किए जाने की आवश्यकता है । पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर युक्तियुक्त संदेह के परे उन्हें दोषी ठहराने के लिए अपेक्षित सबूत की मात्रा स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं होती है ।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर, हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं और सभी तीनों अपीलार्थियों की सभी आधारों पर दोषसिद्धि और दंडादेशों को अपास्त करते हैं । यदि उन्हें किसी अन्य मामला के संबंध में विधिमान्य रूप से कैद में रखने की आवश्यकता नहीं है, तो उन्हें तुरंत स्वतंत्र कर दिया जाएगा । उनके द्वारा यदि किसी जुर्माने की रकम का संदाय किया गया है, तो आज से आठ सप्ताह के भीतर वापस कर दिया जाएगा ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

गतांक से आगे.......

उपासनाकर्ता या हितबद्ध व्यक्ति द्वारा फाइल किया गया वाद

339. ऐसी भी परिस्थिति उद्भूत हो सकती है, जिसमें किसी शिबायत को अपने कर्तव्यों के निर्वहन में या तो कोई कार्रवाई न किए जाने या किसी बंदोबस्ती वाली संपत्ति के दोषपूर्ण अन्यसंक्रामण में संलिप्तता के कारण लापरवाह पाया जाए । ऐसी परिस्थिति, जिसमें देवता की संपत्ति की पुन:प्राप्ति (रिकवरी) के लिए वाद संस्थित कराया गया हो, तो कार्रवाई दोनों के विरुद्ध होगी अर्थात् शिबायत और वह व्यक्ति, जिसने संपत्ति पर ऐसी रीति में कब्जा कर लिया हो या संपत्ति का दावा कर रहा हो, जो देवता के हितों के विरोध में हो । शिबायत द्वारा प्रबंधतंत्र के विरुद्ध कार्रवाई के लिए ईप्सा योग्य अनुतोष 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 में उपबंधित है । तथापि, जहां न्यास को अपरिचित किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई कार्रवाई फाइल किए जाने पर विचार किया जाता है, तो ऐसी स्थिति में 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वाद फाइल किए जाने के द्वारा अनुतोष प्राप्त नहीं किया जा सकता बल्कि सामान्य विधि के अंतर्गत वाद फाइल किए जाने के द्वारा अनुतोष प्राप्त किया जा सकता है ।

340. **वेमारेड्डी रामराघव रेड्डी** बनाम **कोंडूरु सेशू रेड्डी**[1] वाले मामले में वादियों ने प्रतिवादियों, जो मंदिर और उसकी संपत्तियों के प्रबंधक थे, पर कुप्रबंधन का आरोप लगाया । तत्पश्चात् प्रतिवादियों और हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती बोर्ड के मध्य एक समझौता डिक्री पारित हो गई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह घोषणा भी की गई थी कि मंदिर की संपत्तियां प्रतिवादियों की व्यक्तिगत संपत्तियां हैं । तत्पश्चात्, वादियों ने 1963 के विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम की धारा 42 के अधीन इस बाबत घोषणा की ईप्सा की कि समझौता डिक्री, जिसमें यह अभिकथित किया गया है कि मंदिर की संपत्तियां संपूर्णत: प्रतिवादी की निजी संपत्तियां हैं, मंदिर पर बाध्यकारी नहीं है । प्रतिवादियों ने इस पक्षकथन का विरोध इस आधार पर किया कि वादियों का मंदिर या मंदिर की संपत्तियों पर कोई विधिक हित नहीं है और वे मात्र उपासनाकर्ता हैं,

---

[1] [1966] (सप्ली.) एस. सी. आर. 270.

जिनके द्वारा फाइल किया गया वाद मंदिर पर बाध्यकारी नहीं हो सकता । न्यायमूर्ति बी. रामास्वामी ने इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों वाली न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "13... विधित:, शिबायत ही एकमात्र व्यक्ति होता है, जो मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है या जो मूर्ति की तरफ से वाद फाइल कर सकता है और यद्यपि देवता विधिक व्यक्ति होते हैं, जो संपत्ति धारण करने के समर्थ होते हैं, फिर भी आदर्श भाव में संपत्ति का कब्जा शिबायत के पास ही रहता है । संपत्ति के संबंध में वाद फाइल करने के अधिकार के साथ उसके कब्जे और प्रबंधन सामान्य अनुक्रम में शिबायत में निहित होता है किंतु ऐसे मामलों में, जहां शिबायत लापरवाह होता है या वह स्वयं दोषी पक्ष होता है और जिसके विरुद्ध देवता अनुतोष की ईप्सा करते हैं, तो उपासनाकर्ताओं और धार्मिक बंदोबस्ती में हितबद्ध अन्य व्यक्तियों को यह अधिकार है कि वे न्यास की संपत्ति के संरक्षण के लिए वाद फाइल करें । ऐसे मामले में देवता को यह अधिकार है कि वे किसी अन्य व्यक्ति, जो उनका वादमित्र हो, के माध्यम से संपत्ति, जिसको अनुचित रूप से अन्यसंक्रामित कर दिया गया हो, के कब्जे की प्राप्ति के लिए या किसी अन्य अनुतोष के लिए वाद फाइल करें । ऐसा वादमित्र कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है, जो देवता का उपासनाकर्ता हो या भावी शिबायत के रूप में बंदोबस्ती में विधित: हितबद्ध हो । ऐसे मामले, जिसमें शिबायत ने समर्पित संपत्ति के संबंध में देवता के अधिकार से इनकार कर दिया है, यह निश्चित रूप से अपेक्षित है कि देवता न्यायालय द्वारा नामित किसी ऐसे वादमित्र के माध्यम से वाद फाइल करे, जो समर्पित संपत्तियों में हितबद्ध न हो ....।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

341. मंदिरों की संपत्तियों के प्रबंधन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सहायक इन संपत्तियों की पुनर्प्राप्ति (रिकवरी) के लिए वाद फाइल करने का अधिकार होता है । यह अधिकार सुविधाजनक होने और मूर्ति के

लिए तत्काल अनुक्रम उपलब्ध कराने के अलावा वाद संस्थित कराने वाले अपरिचितों के विरुद्ध एक मूल्यवान नियंत्रण भी उपबंधित करता है, जिसका परिणाम मूर्ति या शिबायत की जानकारी के बिना मूर्ति के हितों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है । किंतु ऐसे भी मामले हो सकते हैं, जिनमें शिबायत के आचरण पर प्रश्नचिह्न लगा हो । कतिपय मामलों, जिनमें शिबायत स्वयमेव उपेक्षावान रहा हो या मूर्ति के हितों के विरुद्ध दावा स्थापित कर रहा हो, उपासनाकर्ता या मूर्ति की संपत्तियों के संरक्षण में हितबद्ध वादमित्र को यह अधिकार है कि वह परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित अनुतोष प्राप्त करने के लिए वाद फाइल करे । प्रतिवादियों ने उपरोक्त मामलों में समझौता डिक्री में प्रविष्ट होने, जिसके द्वारा मंदिर की संपत्तियों को प्रतिवादी शिबायतों की निजी संपत्तियां घोषित कर दिया गया था, स्वयमेव मूर्ति के स्वत्व के विपरीत अपना स्वत्व स्थापित कर दिया । ऐसे मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादियों, जो उपासनाकर्ता थे, के लिए यह अनुज्ञेय था कि वे समझौता डिक्री को अविधिमान्य कराने के लिए वाद फाइल करते ।

342. तथापि, **वेमारेड्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में देवता की तरफ से वाद संस्थित नहीं कराया गया था । वाद उपासनाकर्ता द्वारा इस घोषणा की उपासना करते हुए व्यक्तिगत हैसियत में संस्थित कराया गया था कि प्रश्नगत संपत्ति प्रथम बार समर्पित की गई संपत्ति थी । इस संदर्भ में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "11. ...यदि किसी शिबायत ने किसी न्यस्त संपत्ति को अनुचित ढंग से अन्यसंक्रामित कर दिया है, तो किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा वाद फाइल किया जा सकता है, जो इस बाबत घोषणा के लिए हितबद्ध हो कि इस प्रकार से किया गया अन्यसंक्रामण देवता के ऊपर बाध्यकारी नहीं है और ऐसे वाद में कब्जे की पुनर्प्राप्ति (रिकवरी) के लिए कोई डिक्री पारित नहीं की जा सकती, जब तक कि वाद के वादी को संपत्ति पर कब्जे का अधिकार वर्तमान में न हो । आध्यात्मिक भाव में मंदिर के उपासनाकर्ताओं की स्थिति न्यास लाभार्थियों (Cestuui que trustent) या लाभार्थियों की होती है ।... चूंकि उपासनाकर्ता देवता

द्वारा अपने स्वयं के हितों के संरक्षण के लिए वाद फाइल करने की शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकते, वे शिबायत द्वारा अनुचित रूप से अन्यसंक्रामित संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने के हकदार नहीं होते, किंतु उनको इस बाबत घोषणात्मक डिक्री प्रदान की जा सकती है कि अन्यसंक्रामण देवता पर बाध्यकारी नहीं है ... ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

देवता की तरफ से वाद संस्थित कराए जाने और देवता के लाभार्थ व्यक्तिगत हैसियत में वाद संस्थित कराए जाने के मध्य महत्वपूर्ण अंतर होता है, जिसका उल्लेख संक्षेप में किया जाएगा ।

343. **विश्वनाथ** बनाम **श्री ठाकुर राधा बल्लभजी**[1] वाले मामले में मूर्ति के वादमित्र ने प्रतिवादी शिबायत द्वारा देवता की संपत्तियों के अन्य संक्रामण को चुनौती दी थी । शिबायत द्वारा अनेक प्रतिरक्षाओं में से जिस एक प्रतिरक्षा का अवलंब लिया गया, वह देवता की तरफ से फाइल किए गए वाद को पोषणीय ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं थी । न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए इस सिद्धांत की पुष्टि की कि शिबायत मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने के अनन्य अधिकार रखता है :–

"9. तीन विधिक संकल्पनाएं सुस्थापित हैं – (1) किसी हिंदू मंदिर में स्थापित मूर्ति विधिक व्यक्ति होती है ;

(2) जब कोई शिबायत मौजूद होता है, तो सामान्यत: मूर्ति का प्रतिनिधित्व शिबायत के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता ; और

(3) किसी मूर्ति के उपासनाकर्ता ही उसके लाभार्थी होते हैं, यद्यपि मात्र आध्यात्मिक भाव में ।

यह अभिनिर्धारित किया गया है कि वे व्यक्ति, जो मंदिर के भीतर मात्र भक्ति के प्रयोजनार्थ जाते हैं, वे हिंदू विधि और धर्म के अनुसार मंदिरों में उन लोगों के मुकाबले, जो मात्र मंदिर के सेवक

[1] [1967] 2 एस. सी. आर. 618.

होते हैं और धनीय लाभ के लिए वहां पर सेवा करते हैं, बृहत्तर और गहन हित रखते हैं .....।"

तत्पश्चात् विद्वान् न्यायाधीश ने इस बात का मूल्यांकन किया कि शिबायत के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति कब देवता की तरफ से वाद चलाने के हकदार होते हैं :–

"10. अब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि जब शिबायत मूर्ति के हित के प्रतिकूल कार्य करता है और उनके हित की रक्षा के प्रयोजनार्थ कोई कार्रवाई करने में विफल रहता है, तो क्या कोई व्यक्ति मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है । सिद्धांततः हम उपासनाकर्ता को ऐसे किसी अधिकार से इनकार करने का कोई न्यायोचित्य नहीं पाते । मूर्ति अवयस्क की स्थिति में होती है, जब उनका प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति उनको बेसहारा छोड़ देता है, ऐसी परिस्थिति में निश्चित रूप से मूर्ति के हित के संरक्षण के लिए उनकी उपासना में हितबद्ध व्यक्ति को मूर्ति के प्रतिनिधित्व की तदर्थ शक्ति प्रदान की जा सकती है । यही व्यावहारिक है और साथ ही कठिन स्थिति का विधिक समाधान भी है । क्या यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि कोई शिबायत, जिसने संपत्ति का अंतरण कर दिया, केवल संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल कर सकता है । अधिकांश मामलों में यह शिबायत के कर्तव्य पथ से भटकने का अप्रत्यक्ष रूप से अनुमोदन होगा, क्योंकि ऐसे अधिकांश मामलों में शिबायत अपनी चूक को स्वीकार नहीं करेगा और वाद में अनेक ऐसे अन्य तकनीकी अभिवाकों का अवलंब लेने के अतिरिक्त, जिनका अवलंब अंतरिती द्वारा लिया जाना है, संपत्ति की पुनर्प्राप्ति (रिकवरी) के लिए कार्रवाई करेगा । क्या यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई उपासनाकर्ता स्वयं को संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए कार्रवाई करने के समर्थ बनाने हेतु शिबायत को हटाए जाने और किसी अन्य शिबायत की नियुक्ति के लिए वाद फाइल कर सकता है । ऐसी कोई भी प्रक्रिया अत्यधिक दीर्घकालिक होगी और जटिलताओं से परिपूर्ण होगी और ऐसी स्थिति में मूर्ति को अपूर्णीय हानि बर्दाश्त करनी होगी । इसी कारणवश ऐसी परिस्थितियों में विनिश्चयों द्वारा उपासनाकर्ता को

> मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने और मूर्ति की संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए कार्रवाई करने की अनुज्ञा प्रदान की गई है । अनेक विनिश्चयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उपासनाकर्ता किसी बंदोबस्ती की तरफ से संपत्ति के कब्जे की प्रार्थना करते हुए वाद फाइल कर सकता है ....।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

344. इस विनिश्चय में **वेमारेड्डी रेड्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित सिद्धांत को दोहराया गया है कि जहां शिबायत मूर्ति के लाभार्थ कार्य करने से इनकार कर देता है या जहां शिबायत की कार्यवाहियां मूर्ति के हितों के प्रतिकूल होती है, तो मूर्ति के हितों के संरक्षण के लिए कोई अनुकल्पिक तरीका उपबंधित किया जाना चाहिए । ऐसे मामलों में बंदोबस्ती वाली संपत्तियों के संरक्षण में हितबद्ध वादमित्र में वाद संस्थित कराने का अधिकार निहित होता है । जहां शिबायत द्वारा मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कोई कार्रवाई की जाती है, तो इस बात की भी पूर्ण संभाव्यता होती है कि शिबायत अपनी स्वयं की कार्रवाइयों को चुनौती देते हुए वाद संस्थित कराएगा । इसलिए, यह आवश्यक हो जाता है कि वादमित्र को शिबायत और अपरिचित, जो मूर्ति के हितों को नुकसान पहुंचाते हैं के विरुद्ध विधिपूर्ण कार्रवाई करने का अधिकार प्रदान किया जाए ।

345. यह उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा कि जैसेकि **वेमारेड्डी रेड्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । इस न्यायालय ने **विश्वनाथ** (उपरोक्त) वाले मामले में उपासनाकर्ताओं को मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान की थी । **विश्वनाथ** (उपरोक्त) वाले मामले में फाइल किया गया वाद उपासनाकर्ता द्वारा उसकी व्यक्तिगत हैसियत में संस्थित नहीं कराया गया था बल्कि शिबायत के अपवर्जन में मूर्ति के प्रतिनिधि की हैसियत में संस्थित कराया गया था । वादमित्र ने मुकदमेबाजी के सीमित प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए शिबायत के साथ समझौता कर लिया था ।

346. विधि की दृष्टि में यह स्थिरीकृत स्थिति है कि कब कोई उपासनाकर्ता वाद संस्थित करा सकता है । कोई उपासनाकर्ता मूर्ति के हितों के संरक्षण के प्रयोजनार्थ किसी अपरिचित के विरुद्ध वाद ऐसी

स्थिति में संस्थित करा सकता है, जहां शिबायत अपने कर्तव्यों के प्रति उपेक्षावान हो या ऐसे कार्य कर रहा हो, जो देवता के हितों के प्रतिकूल हों । यह प्रश्न कि क्या उपासनाकर्ता द्वारा व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किए गए किसी वाद या (वादमित्र के रूप में) मूर्ति की तरफ से फाइल किए गए वाद में ईप्सित अनुतोष ऐसा अनुतोष है, जो उसको प्राप्त होना चाहिए । **वेमारेड्डी रेड्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में फाइल किया गया वाद ऐसा वाद था, जो उपासनाकर्ताओं द्वारा उनकी व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किया गया था और न्यायालय के समक्ष यह विनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं था कि क्या स्वयमेव मूर्ति की तरफ से किसी वादमित्र द्वारा फाइल किया गया वाद पोषणीय होगा । तथापि, इस मामले पर अभिव्यक्त मताभिव्यक्तियों को दृष्टि में रखते हुए विचार किया जाना चाहिए कि उपासनाकर्ता मूर्ति के वाद फाइल करने के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता ।

347. इस संबंध में डा. धवन ने हमारा ध्यान कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के सदस्य के रूप में न्यायमूर्ति पाल द्वारा **तरित भूषण राय** बनाम **श्री श्री ईश्वर श्रीधर शालिग्राम शिला ठाकुर**[1] वाले मामले में व्यक्त की गई पृथक् राय की ओर आकर्षित किया । यह मामला विलक्षण तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से उद्भूत हुआ था । वाद अनुपमा द्वारा, जो शिबायत नहीं थी बल्कि तत्कालीन शिबायत की पुत्री थी, द्वारा फाइल किया गया था । अनुपमा ने कतिपय संपत्तियों के विक्रय के विरुद्ध इस आधार पर स्थगनादेश की ईप्सा की कि संपत्ति प्रथम बार समर्पित की गई आत्यंतिक संपत्ति थी । बाद में अनुपमा का वाद खारिज कर दिया गया और उचित शिबायतों द्वारा नई कार्यवाहियां संस्थित कराई गईं । न्यायमूर्ति नसीम अली और न्यायमूर्ति पाल, दोनों ने अभिनिर्धारित किया कि अनुपमा शिबायत नहीं थी और इसलिए उसके वाद को खारिज किया जाना नए वाद को निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ असुसंगत था । तथापि, न्यायमूर्ति पाल ने आगे मताभिव्यक्ति की :–

> "वे लोग, जिनके ऐसी बंदोबस्ती के अंतर्गत व्यक्तिगत अधिकार होते हैं, <u>मूर्ति के नाम में वाद संस्थित कराने के लिए</u>

---

[1] ए. आई. आर. 1942 कलकत्ता 99.

बाध्य हुए बिना अपने स्वयं के नाम में मामूली वाद संस्थित कराए जाने के द्वारा व्यक्तिगत अधिकारों को प्रवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ वाद संस्थित करा सकते हैं । उपासनाकर्ताओं के लिए आरक्षित अधिकार पर्याप्त रूप से उपासनाकर्ताओं या अन्य व्यक्तियों, जो प्रथम बार समर्पित की गई संपत्ति में हितबद्ध होते हैं, के हितों की रक्षा करते हैं । तत्समय, यह व्यक्तियों, जिनकी अनुकूलता के बाबत कभी जांच नहीं की गई और जिस पर कभी न्यायनिर्णयन नहीं किया गया, के हस्तक्षेप के द्वारा प्रभावित होने की अनुज्ञा प्रदान करते हुए मूर्ति के हितों को खतरे में डालने के जोखिम को दूर करते हैं ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

न्यायमूर्ति पाल ने मत व्यक्त किया कि ऐसी परिस्थितियों में भी, जहां शिबायत मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य करता है, उपासनाकर्ता मूर्ति के तरफ से वाद फाइल नहीं कर सकता, किंतु व्यक्तिगत हैसियत में वाद फाइल कर सकता है । यह परिस्थिति इस समस्या से उद्भूत होती है कि कोई व्यक्ति जिसकी अनुकूलता या सद्भाविकता के बाबत न्यायालय द्वारा जांच या न्यायनिर्णयन नहीं किया गया है, मूर्ति और उसकी संपत्तियों को प्रतिकूल रूप से बाध्य करने के योग्य हो सकता है । इस दृष्टि से उपासनाकर्ता देवता की तरफ से वाद फाइल नहीं करता बल्कि अधिक से अधिक शिबायत की कार्रवाई को यह चुनौती देते हुए घोषणात्मक डिक्री अभिप्राप्त कर सकता है कि शिबायत द्वारा की गई कार्रवाई देवता पर बाध्यकारी नहीं है ।

348. जहां कोई शिबायत देवता के हितों के प्रतिकूल कार्य करता है, तो ऐसी स्थिति में हितबद्ध उपासनाकर्ता के मस्तिष्क में उपलब्ध अनुतोषों के संबंध में दो विचार उद्भूत होते हैं । **विश्वनाथ** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा जिस स्थिति पर विचार किया गया, वह यह है कि उपासनाकर्ता देवता की तरफ से वादमित्र की हैसियत में वाद फाइल कर सकता है । उपासनाकर्ता वादमित्र के रूप में प्रत्यक्षत: देवता के वाद फाइल करने के अधिकार का प्रयोग करता है । न्यायमूर्ति पाल द्वारा **तरित भूषण राय** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किया

गया अनुकल्पिक विचार और जैसाकि इस न्यायालय द्वारा **वेमारेड्डी** (उपरोक्त) वाले मामले में मताभिव्यक्ति की गई, यह है कि कोई उपासनाकर्ता देवता के हितों के संरक्षण के प्रयोजनार्थ व्यक्तिगत हैसियत में वाद फाइल कर सकता है, किंतु वह प्रत्यक्षत: देवता की तरफ से वाद फाइल नहीं कर सकता, यद्यपि, वाद देवता के लाभ के लिए ही क्यों न हो । इस विचार को दृष्टि में रखते हुए देवता उपासनाकर्ताओं के वाद द्वारा तब तक बाध्य नहीं होते, जब तक कि उपलब्ध अनुतोष सार्वजनिक प्रकृति के न हों । इस मामले में दो प्रश्न उद्भूत हुए – प्रथम प्रश्न यह है कि क्या निजी हैसियत में किसी उपासनाकर्ता द्वारा फाइल किया गया वाद देवता के हितों को संरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त और समीचीन तरीका है ? द्वितीय प्रश्न यह है कि क्या वादमित्र के सद्भाविक आशयों और अर्हताओं को साबित किए बिना देवता की तरफ से वाद फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ वादमित्र को अनुज्ञा प्रदान किए जाने से देवता के हित जोखिम में आ गए ?

349. कतिपय मामलों में उपासनाकर्ता द्वारा अपनी व्यक्तिगत हैसियत में वाद फाइल किया जाना समुचित अनुतोष हो सकता है । उदाहरण के लिए जहां कोई शिबायत उपासनकर्ताओं की मूर्ति तक पहुंच से इनकार करता है, तो उपासनाकर्ता द्वारा मूर्ति तक पहुंच पाने के प्रयोजनार्थ उसकी व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किया गया वाद शिबायत के विरुद्ध समुचित उपचार गठित कर सकता है । उपासनाकर्ताओं के वादों को उनकी व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किए गए वादों तक सीमित रखे जाने का एक अन्य लाभ यह है कि संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के संबंध में फाइल किए गए मामलों में उपासनाकर्ता द्वारा व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किए गए वाद में यह प्रश्न उद्भूत नहीं होगा कि भूमि का कब्जा किसको दिया जाएगा । तथापि, जहां स्वयमेव देवता की तरफ से वादमित्र द्वारा कोई वाद फाइल किया जाता है, तो यह समस्या उद्भूत होती है – न्यायालय मूर्ति की तरफ से संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए फाइल किए गए वाद में वादमित्र को संपत्ति का कब्जा नहीं दे सकता । वादमित्र व्यक्तिगत रूप से मुकदमेबाजी के सीमित प्रयोजन के लिए मूर्ति का मात्र अस्थाई प्रतिनिधि होता है । जिन मामलों में उपासनाकर्ता केवल

अपनी व्यक्तिगत हैसियत में वाद फाइल करता है, तो कब्जा देने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता ।

350. तथापि, किसी उपासनाकर्ता द्वारा व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किया गया वाद खतरों की उस श्रेणी का समर्थन नहीं करता, जिनका सामना मूर्ति द्वारा उपेक्षावान शिबायत के द्वारा किया जाता है और न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि वह वादमित्र को मूर्ति के हितों के पर्याप्त संरक्षण के प्रयोजनार्थ स्वयमेव मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करे । उदाहरण के लिए जहां कोई शिबायत देवता की तरफ से कब्जे के लिए वाद फाइल करने में विफल रहता है, तो उपासनाकर्ता द्वारा अपनी व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किया गया वाद अपर्याप्त होगा । फिर भी जो अपेक्षित है, वह वादमित्र द्वारा मूर्ति की तरफ से संपत्ति के कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए फाइल किया जाने वाला वाद है । यह सत्य है कि कब्जा वादमित्र को नहीं दिया जाएगा । तथापि, न्यायालय महाधिवक्ता या दो व्यक्तियों द्वारा 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92* के अधीन प्रस्तुत किए गए

---

* 92. **लोक पूर्त कार्य** – (1) पूर्त या धार्मिक प्रकृति के लोक प्रयोजनों के लिए सृष्ट किसी अभिव्यक्त या आन्वयिक न्यास के किसी अभिकथित भंग के मामले में, या जहां ऐसे किसी न्यास के प्रशासन के लिए न्यायालय का निदेश आवश्यक समझा जाता है वहां महाधिवक्ता या न्यास में हित रखने वाले ऐसे दो या अधिक व्यक्ति, जिन्होंने न्यायालय की इजाजत अभिप्राप्त कर ली है, ऐसा वाद, चाहे वह प्रतिविरोधात्मक हो या नहीं, आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किए गए किसी अन्य न्यायालय में जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर न्यास की संपूर्ण विषयवस्तु या उसका कोई भाग स्थित है, निम्नलिखित डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए संस्थित कर सकेंगे –

(क) किसी न्यासी को हटाने की डिक्री ;

(ख) नए न्यासी को नियुक्त करने की डिक्री ;

(ग) ऐसे न्यासी को जो हटाया जा चुका है या ऐसे व्यक्ति को जो न्यासी नहीं रह गया है, अपने कब्जे में की किसी न्यास-संपत्ति का कब्जा उस व्यक्ति को जो उस संपत्ति के कब्जे का हकदार है, परिदत्त करने का निदेश देने की डिक्री ;

(घ) लेखाओं और जांचों को निर्दिष्ट करने की डिक्री ;

(ङ) यह घोषणा करने की डिक्री कि न्यास – संपत्ति का या उसमें के हित का कौन सा अनुपात न्यास के किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए आबंटित होगा ;

(च) संपूर्ण न्यास-संपत्ति या उसके किसी भाग का पट्टे पर उठाया जाना, विक्रय किया जाना, बंधक किया जाना या विनिमय किया जाना प्राधिकृत करने की डिक्री ;

(छ) स्कीम स्थिर करने की डिक्री; अथवा

(ज) ऐसा अतिरिक्त या अन्य अनुतोष अनुदत्त करने की डिक्री जो मामले की प्रकृति से अपेक्षित हो ।

आवेदन पर विरचित की गई योजना को सम्मिलित करते हुए कितने भी अनुतोष निर्मित कर सकता है, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि संपत्ति देवता को वापस लौटा दी गई है । ऐसे मामलों में, जिनमें शिबायत द्वारा बरती गई अकर्मण्यता या की गई असद्भावपूर्ण कार्रवाई को पहले ही साबित किया जा चुका है, ऐसी योजना समुचित उपचार हो सकती है, यद्यपि यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगा ।

351. इन मताभिव्यक्तियों को दृष्टि में रखते हुए यह स्पष्ट है कि उन मामलों, जिनमें मूर्ति के हितों को संरक्षण प्रदान किए जाने की आवश्यकता है, मात्र हितबद्ध उपासनाकर्ताओं को उनकी व्यक्तिगत हैसियत में अनुज्ञा प्रदान किए जाने से देवता को विधि की दृष्टि में पर्याप्त संरक्षण प्राप्त नहीं होता । कतिपय मामलों में वादमित्र को मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्राप्त होनी चाहिए – ताकि वह देवता के वाद फाइल करने के अधिकार का प्रयोग प्रत्यक्षत: कर सके । अनुतोष का प्रश्न मूल रूप से संदर्भात्मक होता है और न्यायालय द्वारा उसके समक्ष उपस्थित पक्षों के अभिवाकों और प्रत्येक मामलों की परिस्थितियों के प्रकाश में विरचित किया जाना चाहिए ।

352. तथापि, हमारे समक्ष एक द्वितीय प्रश्न भी उद्भूत होता है कि क्या मूर्ति की तरफ से वादमित्र को वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के कारण मूर्ति के समक्ष जोखिम उत्पन्न हो जाएगा । मूर्ति और उनकी संपत्तियां किसी हठी 'वादमित्र' के खतरे से संरक्षित होनी चाहिए । जिन मामलों में शिबायत असद्भावपूर्ण तरीके में कार्य करता है, तो वादमित्र होने का दावा करने वाला कोई अन्य व्यक्ति वाद फाइल कर सकता है । वास्तव में ऐसे व्यक्ति का आशय देवता के विरोध में होता है और वह असत्य आधारों पर वाद फाइल कर सकता है । यहां तक कि कोई उचित आशय वाला उपासनाकर्ता भी वादमित्र की भांति वाद फाइल कर सकता है और वह शुद्धत: वित्तीय या उपेक्षा के कारणों से वाद में पराजय का सामना भी कर सकता है, जिस कारण देवता के हितों पर प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकते हैं । **तरित भूषण राय** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति पाल द्वारा जो समाधान प्रस्तावित किया गया, और जिसका अवलंब डा. धवन द्वारा वर्तमान कार्यवाहियों में

लिया गया, यह है कि केवल न्यायालय द्वारा नियुक्त वादमित्र ही मूर्ति की तरफ से वाद फाइल कर सकता है । इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे न्यायालय संतुष्ट हो जाएगा कि वादमित्र द्वारा की गई कार्रवाई सद्भावपूर्ण है और वह देवता का प्रतिनिधित्व संतोषप्रद तरीके से कर सकता है ।

353. यह सत्य है कि जब तक कि वादमित्र की अनुकूलता का किसी भी प्रकार से परीक्षण नहीं हो जाता, तब तक कोई व्यक्ति, जिसकी सद्भाविकता का विनिर्धारण नहीं किया गया है, किसी कार्रवाई में मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर सकता है और वह उसकी तरफ से विरोध के लिए भी बाध्य होगा । तथापि, इस बात की अपेक्षा प्रत्येक वादमित्र से किया जाना अनावश्यक और कष्टदायक होगा कि वह पहले न्यायालय द्वारा नियुक्त हो या देवता के प्रतिनिधित्व के लिए किसी अहितबद्ध व्यक्ति की खोज करे । ऐसे मामलों में, जिनमें वादमित्र की सद्भाविकता का विरोध किसी अन्य पक्ष द्वारा किया जा रहा है और न्यायालय सारभूत रूप से इस तथ्य का परीक्षण करता है कि क्या वादमित्र मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने के लिए उपयुक्त है, तो देवता के हितों का पर्याप्त रूप से संरक्षण सुनिश्चित होगा । न्यायालय किसी समुचित मामले, जिसमें वह देवता के हितों का संरक्षण करना आवश्यक समझता है, अपने विवेक का प्रयोग करके ऐसा कर सकता है । किसी आक्षेप की अनुपस्थिति में और ऐसे मामलों में, जिनमें न्यायालय वादमित्र की कार्रवाई में कोई कमी नहीं पाता है, तो इसका कोई कारण उद्भूत नहीं होता कि किसी उपासनाकर्ता को देवता की तरफ से वाद फाइल करने का अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए, विशेष रूप से ऐसे मामलों में जिनमें शिबायत अपने पुनीत और विधिक कर्तव्यों का पालन करने से इनकार कर देता है । बहुधा उपासनाकर्ता शिबायत द्वारा किसी कुप्रबंधन का संज्ञान लेने और उसके विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति होते हैं । इसलिए, ऐसे मामलों में जिनमें शिबायत देवता के हितों के प्रतिकूल कार्य करता है, तो उपासनाकर्ता देवता के वादमित्र की हैसियत में उनकी तरफ से वाद फाइल कर सकते हैं, परंतु यह तब जबकि वादमित्र की सद्भाविकता का विरोध न किया जाए, ऐसे मामलों में न्यायालय को देवता के पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व के लिए वादमित्र के

आशयों और क्षमताओं की संवीक्षा करनी चाहिए । न्यायालय स्वप्रेरणा से न्यायानुसार (ex debito justitae) ऐसा कर सकता है ।

तृतीय वादी की सक्षमता

354. वर्तमान कार्यवाहियों में श्री एस. के. जैन और डा. धवन, दोनों ने दलील दी कि वाद संख्या 5 में तृतीय वादी प्रथम और द्‌वितीय वादियों का प्रतिनिधित्व करने की स्थिति में नहीं था । वाद संख्या 5 एक वैष्णव देवकी नंदन अग्रवाल द्‌वारा वर्ष 1989 में संस्थित कराया गया था । वैष्णवों के प्रधान देवता भगवान विष्णु हैं । वैष्णव संप्रदाय भगवान विष्णु के अनेक अवतारों में से एक अवतार के रूप में भगवान राम की उपासना करता है । देवकी नंदन अग्रवाल को सिविल न्यायाधीश के तारीख 1 जुलाई, 1989 के आदेश द्‌वारा प्रथम और द्‌वितीय वादियों के वादमित्र के रूप में नियुक्त किया गया था ।

355. मोहम्मद हाशिम ने श्री देवकी नंदन अग्रवाल की नियुक्ति को चुनौती देते हुए एक सिविल प्रकीर्ण आवेदन (1989 के नियमित वाद संख्या 296 में 1989 का सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या 10) फाइल किया था । इस संबंध में सुसंगत जांच इस बाबत की जानी है कि क्या प्रथम और द्‌वितीय वादी के प्रतिनिधित्व के प्रयोजनार्थ तृतीय वादी की सद्‌भाविकता के संबंध में कोई सारभूत प्रतिवाद किया गया था । इस आवेदन में यह अभिकथित किया गया :–

> "5. वादपत्र के अभिकथनों में किए गए कथनों को वेदवाक्य मानते हुए अभिकथित वादी संख्या 1 और 2 विधिक व्यक्ति नहीं हैं और इसलिए वाद विधिक व्यक्ति द्‌वारा फाइल न किए जाने के कारण और प्रथमदृष्ट्या इस बाबत समाधान हुए बिना कि वाद एक विधिक व्यक्ति द्‌वारा फाइल किया गया है, वादमित्र के नियुक्ति के प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता ।
>
> 8. वादमित्र की नियुक्ति के लिए ऐसा प्रकथन किया जाना चाहिए कि अभिकथित वादमित्र उस वादमित्र के हित के प्रतिकूल कोई हित नहीं रखता, जिसके स्थान पर उसको नियुक्त किया जा रहा है और इस प्रकथन के बाबत किसी प्रकथन और न्यायालय के प्रतिकूल हित की अनुपस्थिति के बाबत संतुष्ट हुए बिना वादमित्र

के रूप में वादी संख्या 3 की नियुक्ति का आदेश दूषित और अवैध है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

आवेदक ने आवेदन के पैरा 5 में प्रथम और द्वितीय वादी के विधिक व्यक्तित्व को चुनौती दी है । उसने यह प्रकथन किया है कि सुस्थित विधिक व्यक्ति की अनुपस्थिति में वादमित्र की नियुक्ति का प्रश्न उद्भूत नहीं होता । चाहे कुछ भी हो, इस प्रकथन को तृतीय वादी की सद्भाविकता को चुनौती देते हुए नहीं पढ़ा जा सकता । आवेदक ने पैरा 8 में अभिकथित किया कि वादमित्र की नियुक्ति के लिए फाइल किया गया किसी भी आवेदन के साथ इस बाबत विनिर्दिष्ट प्रकथन संलग्न होना चाहिए कि वह व्यक्ति, जो देवता का प्रतिनिधित्व करना चाहता है, उसका देवता के प्रतिकूल कोई हित नहीं है । पुनः, आवेदक द्वारा न्यायालय का प्रतिकूल हित के बाबत समाधान किया जाना चाहिए । यह सत्य है कि जिस मामले में वादमित्र की उपयुक्तता विवादित है, न्यायालय को वादमित्र की सद्भाविकता की संवीक्षा करनी चाहिए । तथापि, मात्र वह अभिकथन, जिसके द्वारा किसी साक्ष्य की पुष्टि की गई है, वादमित्र की सद्भाविकता को चुनौती नहीं दी जा सकती । आवेदन के पैरा 8 में समाविष्ट एकमात्र कथन के अतिरिक्त तृतीय वादी की सद्भाविकता को चुनौती नहीं दी गई या उसका प्रतिवाद नहीं किया गया ।

356. श्री देवकी नंदन अग्रवाल की तारीख 8 अप्रैल, 2002 को मृत्यु हो गई और तत्पश्चात् न्यायालय के समक्ष एक आवेदन डा. टी. पी. वर्मा को प्रथम और द्वितीय वादियों के वादमित्र के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया । डा. ठाकुर प्रसाद वर्मा को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 25 अप्रैल, 2002 के आदेश द्वारा वादमित्र नियुक्त किया गया । तत्पश्चात्, एक अन्य आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसके द्वारा प्रथम और द्वितीय वादियों के वादमित्र के रूप में डा. ठाकुर प्रसाद वर्मा के स्थान पर श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय की नियुक्ति किए जाने की ईप्सा की गई । इस आवेदन को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया । अपील फाइल

किए जाने पर इस न्यायालय ने तारीख 8 फरवरी, 2010 के आदेश द्वारा अभिनिर्धारित किया :–

> "3. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. एन. भट्ट ने अत्यंत आग्रहपूर्वक दलील दी कि डा. ठाकुर प्रसाद वर्मा के बजाय श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32, नियम 8 के उपबंधों के अधीन अपीलार्थी – वादी संख्या 1 और 2 का वादमित्र नियुक्त किया जाए, चूंकि डा. वर्मा गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का सामना कर रहे हैं । उन्होंने आगे निवेदन किया कि जहां तक उपगत किए जा चुके खर्चों का संबंध है, वर्तमान वादमित्र डा. वर्मा उच्च न्यायालय के समक्ष एक वचनबंध यह उपदर्शित करते हुए प्रस्तुत करेंगे कि वे उपगत्त किए जा चुके खर्चों के लिए उत्तरदायी होंगे ।
>
> 4. इस इंतजाम के संबंध में दूसरे पक्ष को कोई आपत्ति नहीं है । इस बात को दृष्टि में रखते हुए हमारे लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश की शुद्धता या अन्य बातों का परीक्षण करना आवश्यक नहीं है । यदि पूर्वोक्त वचनबंध उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय की सहमति उपदर्शित की जाती है, तो उस स्थिति में श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय डा. वर्मा द्वारा प्रस्तुत किए गए वचनबंध के अध्यधीन रहते हुए अपीलार्थी-वादी संख्या 1 और 2 के वादमित्र के रूप में कार्य करेंगे ।"

त्रिलोकी नाथ पांडेय को इस न्यायालय के आदेशानुसार प्रथम और द्वितीय वादियों के वादमित्र के रूप में कार्य करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई । इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों में त्रिलोकी नाथ पांडेय की नियुक्ति के बाबत कोई आक्षेप नहीं किया गया । अत: इस न्यायालय के समक्ष ऐसा कोई कारण उत्पन्न नहीं हुआ कि वह श्री ठाकुर प्रसाद वर्मा को वादमित्र के रूप में कार्य करने से सेवानिवृत्त होने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किए गए आवेदन को खारिज करने वाले उच्च न्यायालय के आदेश की शुद्धता का परीक्षण करता । तत्पश्चात् इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने तारीख 18 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय को वादमित्र नियुक्त कर दिया ।

357. ऐसे मामलों, जिनमें वादमित्र की उपयुक्तता विवादित होती है, न्यायालय को वादमित्र की सद्भाविकता की संवीक्षा करनी चाहिए । तथापि, वर्तमान मामले में इस बाबत जांच किया जाना आवश्यक नहीं है, चूंकि वाद संख्या 5 में तृतीय वादी को न्यायालय के आदेश द्वारा प्रथम और द्वितीय वादियों का वादमित्र नियुक्त किया जा चुका है । इस न्यायालय ने श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय की नियुक्ति के साथ ही इस प्रश्न पर भी ध्यान दिया और श्री त्रिलोकी नाथ पांडेय को प्रथम और द्वितीय वादियों के वादमित्र के रूप में कार्य करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी । इस बाबत संवीक्षा किए जाने पर कि वादमित्र की नियुक्ति वर्तमान कार्यवाहियों के अध्यधीन है, इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि वाद संख्या 5 में तृतीय वादी प्रथम और द्वितीय वादियों के वादमित्र के रूप में वाद फाइल करने के लिए सक्षम नहीं है ।

निर्मोही अखाड़ा और शिबायती अधिकार

358. ऐसे मामलों, जिनमें शिबायत की पहचान के प्रयोजनार्थ अभिव्यक्त समर्पण विलेख विद्यमान है, विधि की दृष्टि में इस बाबत स्थिति कि मूर्ति की तरफ से वाद कौन फाइल कर सकता है, निम्नलिखित है :–

> (i) वाद फाइल करने का अधिकार अनन्य रूप से विधिपूर्वक नियुक्त शिबायत में निहित होता है; तथापि, (ii) ऐसे मामलों, जिनमें शिबायत अभिव्यक्त कार्रवाई या अक्रमण्यता के द्वारा मूर्ति के हितों के प्रति उपेक्षावान रहता है और उनके हितों के विपरीत कार्य करता है, कोई व्यक्ति, जो बंदोबस्ती में हितबद्ध है, मूर्ति की तरफ से वाद संस्थित करा सकता है; और (iii) वादमित्र द्वारा धारित हित की निश्चित प्रकृति क्या है और क्या वादमित्र सद्भावी है, सारभूत विधि के मामले हैं । यदि प्रतिवाद किया जाए तो इस न्यायनिर्णयन न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए ।

वाद संख्या 5 की पोषणीयता इस प्रश्न पर आधारित है कि क्या निर्मोही अखाड़ा शिबायत था और क्या उन्होंने मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य किया । यह वह विवाद्यक है, जिस पर अब हम विचार करेंगे । इस न्यायालय के समक्ष मौखिक दलीलों के दौरान श्री जैन के समक्ष यह

प्रश्न उद्भूत हुआ कि क्या निर्मोही अखाड़ा ने मूर्तियों के वाद की पोषणीयता को चुनौती दिए जाने के द्वारा मूर्ति के हितों के प्रतिकूल दावा विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया है । इसके उत्तर में श्री एस. के. जैन ने इस न्यायालय के समक्ष एक कथन प्रस्तुत किया, जिसके द्वारा उन्होंने वाद संख्या 5 की पोषणीयता के संबंध में निर्मोही अखाड़ा की स्थिति को सशर्त यह अभिकथित करते हुए उपांतरित कर दिया कि निर्मोही अखाड़ा वाद संख्या 5 की पोषणीयता के विवाद्यक पर बल नहीं देगा । परंतु यह तब जबकि वाद संख्या 3 के वादी निर्मोही अखाड़ा के शिबायती अधिकारों को चुनौती नहीं देंगे । उन्होंने निवेदन किया कि निर्मोही अखाड़ा शिबायतों के रूप में अपने वादों की पैरवी स्वतंत्र रूप से कर सकता है ।

359. निर्मोही अखाड़े द्वारा दिया गया कथन उनके इस दावे को परिवर्तित नहीं करता कि वे भगवान राम की मूर्तियों के शिबायत हैं । इस कथन के द्वारा मात्र यह अनुध्यात किया गया है कि उस स्थिति, जिसमें वाद संख्या 5 के वादी निर्मोही अखाड़ा को मूर्तियों के शिबायत के रूप में मान्यता प्रदान करने का निर्णय लेते हैं, तो इससे वाद संख्या 5 की पोषणीयता को चुनौती नहीं मिलती । ऐसी स्थिति विधि न्यायालय के समक्ष टिकने योग्य नहीं है । निर्मोही अखाड़ा ने निरंतर रूप से यह पक्षकथन लिया है कि वे भगवान राम की मूर्तियों के शिबायत हैं । यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वे मूर्तियों के शिबायत हैं तो वे अकेले ही मूर्तियों की तरफ से वाद फाइल कर सकते हैं और वादमित्र द्वारा संस्थित कराया गया वाद संख्या 5 इस न्यायालय द्वारा इस बाबत न्यायनिर्णयन न किए जाने की स्थिति में कि निर्मोहियों ने मूर्ति के हितों के विपरीत कार्य किया है, पोषणीय नहीं होगा ।

360. वर्तमान मामला शिबायत की पहचान करते हुए अभिव्यक्त रूप से निष्पादित समर्पण अभिलेख से संबद्ध नहीं है । फिर भी निर्मोही अखाड़े का यह निवेदन है कि वे विवादित स्थल पर उनकी लंबी अवधि तक उपस्थिति और मूर्तियों के संबंध में उनकी कतिपय कार्रवाइयों को दृष्टि में रखते हुए वस्तुत शिबायत हैं । पुनः, वर्तमान कार्यवाहियों की विलक्षण स्थिति यह है कि निर्मोही अखाड़ा द्वारा संस्थित कराए गए वाद के 33 वर्षों के पश्चात् वादमित्र द्वारा संस्थित कराए गए वाद का न्यायनिर्णयन अभिकथित शिबायत निर्मोही अखाड़ा द्वारा फाइल किए

गए वाद के साथ किया जा रहा है । इसका परिणाम यह होगा कि वर्ष 1989 में वादमित्र द्वारा वाद संस्थित कराया गया था, किंतु उस वाद में इस बाबत कोई विनिर्धारण नहीं किया गया था कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत था ।

361. वर्तमान कार्यवाहियां मिश्रित प्रकृति की कार्यवाहियां हैं, इसलिए वाद संख्या 5 की पोषणीयता के प्रश्न का उत्तर भी मिश्रित तरीके में ही दिया जाना चाहिए । प्रथम प्रश्न यह है कि क्या निर्मोही अखाड़ा भगवान राम की मूर्तियों के वस्तुत: शिबायत हैं । यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक में दिया जाता है, तो जो द्वितीय प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है, यह है कि क्या निर्मोही अखाड़ा ने ऐसे तरीके में कार्य किया, जो मूर्ति के हितों के प्रतिकूल था । यदि निर्मोही अखाड़ा को वस्तुत: शिबायत पाया जाता है और यह भी पाया जाता है कि उन्होंने मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य किया, तो वाद संख्या 5 पोषणीय नहीं होगा, चूंकि यह शिबायत ही देवता की तरफ से वाद फाइल करने के अनन्य अधिकार रखता है । अनुकल्प में, यदि निर्मोही अखाड़ा मूर्तियों का वस्तुत: शिबायत पाया जाता है या यह पाया जाता है कि उन्होंने मूर्तियों के संबंध में उनके हितों के विपरीत कार्य किया, तो वादमित्र द्वारा फाइल किया गया वाद पोषणीय होगा । इसी के साथ हम इस प्रश्न पर विचार आरंभ करते हैं कि क्या निर्मोही अखाड़ा वस्तुत: शिबायत है ।

वाद फाइल करने के प्रयोजनार्थ वस्तुत: शिबायत के अधिकार

362. देवता की तरफ से वाद संस्थित कराने के प्रयोजनार्थ वस्तुत: शिबायत के अधिकार **महंत रामचरण दास** बनाम **नौरंगी लाल**[1] और **महादेव प्रसाद सिंह** बनाम **करिया भारती**[2] वाले मामलों में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए पूर्ववर्ती विनिश्चयों में पाए जाते हैं । **महंत रामचरण दास** (उपरोक्त) वाले मामले में पालीगंज मठ के महंत ने मठ की भूमि में से 70 एकड़ भूमि का पट्टा निष्पादित किया और तत्पश्चात् पट्टे के अंतर्गत आने वाली भूमि के बाबत एक विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया । उनकी मृत्यु के पश्चात् एक अन्य व्यक्ति ने महंत होने का दावा

---

[1] ए. आई. आर. 1933 प्रिवी कौंसिल 75.

[2] ए. आई. आर 1935 प्रिवी कौंसिल 44.

करते हुए इस भूमि का कब्जा ले लिया और तत्पश्चात् उसने इस भूमि के समस्त अधिकारों को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से वादी, जो एक अन्य मठ (जिसके अधीन पालीगंज मठ था) का महंत था, को अभ्यर्पित कर दिया । वादी ने यह दावा करते हुए वाद संस्थित कराया कि पट्टा विलेख और तत्पश्चात् विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी । प्रिवी कौंसिल की तरफ से वादी द्वारा फाइल किए गए वाद की पोषणीयता के प्रश्न पर लॉर्ड रसेल ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "... तथापि, माननीय न्यायाधीश वर्तमान में स्वत्व के किसी प्रश्न से संबद्ध नहीं हैं क्योंकि दोनों ही निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी ही वह व्यक्ति है, जो पालीगंज मठ के वास्तविक कब्जे में है और इस प्रकार वह अपने लाभार्थ नहीं बल्कि मठ के लाभार्थ संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद चलाने के हकदार हैं ।"

363. **महादेव प्रसाद सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में एक ग्राम, जो मठ के साथ संलग्न संपदा का भाग था, वर्ष 1914 में महंत द्वारा बेच दिया गया था । वर्ष 1916 में महंत की मृत्यु के पश्चात् वर्ष 1926 में एक अन्य व्यक्ति द्वारा यह अभिकथित करते हुए कि मठ के महंत ने संपत्ति का अन्यसंक्रामण किया है, वाद संस्थित कराया । इस वाद में यह आक्षेप उठाया गया कि प्रत्यर्थी वाद चलाने का हकदार नहीं है, चूंकि वह न तो पूर्ववर्ती महंत का चेला है और न ही किसी भी हैसियत में महंत के पद का हकदार है । प्रिवी कौंसिल की तरफ से इस दलील को स्वीकृत करते हुए सर शादीलाल ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "इसमें कोई संदेह नहीं कि करिया वर्ष 1964 से संस्था के मामलों का प्रबंधन कर रहा है और उसको राजवंश की मृत्यु के पश्चात् संस्था में हितबद्ध समस्त व्यक्तियों द्वारा महंत माना जाने लगा है । राजवंश का नाम संपत्ति के राजस्व अभिलेखों में प्रविष्ट था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके नाम के स्थान पर करिया का नाम नामांतरित कर दिया गया और यह कहीं पर भी नहीं कहा गया कि ऐसा कोई भी व्यक्ति है, जिसने महंत के पद

पर उसके नाम पर विवाद किया हो । इन परिस्थितियों में माननीय न्यायाधीश उच्च न्यायालय से इस बाबत सहमत हैं कि करिया मठ के लाभार्थ उन संपत्तियों की पुनर्प्राप्ति का हकदार था, जो मठ से संबंधित थीं और जिन पर अपीलार्थियों द्वारा दोषपूर्ण ढंग से कब्जा कर लिया गया । उनकी स्थिति अतिक्रमणकर्ताओं की है । जैसीकि मताभिव्यक्ति इस न्यायालय द्वारा 1933 प्रि. कौं. 75 (1) में की गई है, मठ का कोई व्यक्ति, जो वास्तविक कब्जे में है, अपने लाभार्थ नहीं बल्कि मठ के लाभार्थ मठ के साथ संलग्न संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद चलाने का हकदार है ।"

प्रिवी कौंसिल ने निम्नलिखित बातों का उल्लेख किया :–

(i) करिया को ग्रामीणों द्वारा महंत के रूप में मान्यता प्रदान की गई थी;

(ii) राजस्व अभिलेखों में करिया का नाम दर्शित है; और

(iii) इस बाबत कुछ भी नहीं कहा गया है कि महंत के पद पर उसके स्वत्व के बाबत कोई विवाद है । इन्हीं विचारणाओं के आधार पर प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि वे अधिकार जिनका प्रयोग करिया द्वारा किया गया, महंत द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अधिकारों की प्रकृति के थे । प्रिवी कौंसिल द्वारा अपने विश्लेषण में उन विचारणाओं पर विचार किया गया, जिनको ऊपर रेखांकित किया गया है कि क्या प्रयोग किए गए अधिकार उन अधिकारों के सदृश्य थे, जिनका प्रयोग महंत द्वारा किया जाता था ।

364. यद्यपि प्रिवी कौंसिल द्वारा पारित दोनों ही विनिश्चय, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, मठ की तरफ से कार्रवाई किए जाने के बाबत महंत के अधिकारों के संदर्भ में हैं । विधि की दृष्टि में स्थिति यह है कि वस्तुत: महंत मठ की तरफ से उसके लाभार्थ वाद संस्थित कराने का हकदार होता है और यही सिद्धांत समान रूप से मूर्ति और उसकी संपत्तियों के बाबत वस्तुत: शिबायत पर भी लागू होता है । **पंचकरी राय** बनाम **अमोदे लाल वर्मन**[1] वाले मामले में रामदास मंहत ने

---

[1] (1937) 41 सी. डब्ल्यू. एन. 1349.

वसीयत के माध्यम से अपनी संपत्ति कतिपय मूर्तियों को समर्पित कर दी थी और उन संपत्तियों का प्रबंधक अपनी विधवा को तब तक के लिए नियुक्त कर दिया था जब तक उसकी पुत्री वयस्कता की आयु प्राप्त नहीं कर लेती और वयस्कता प्राप्त कर लेने पर उसकी पुत्री शिबायत का पदधारण कर लेगी । रामदास महंत की विधवा ने इस संपत्ति को एकमात्र संपत्ति के रूप में बेच दिया और वयस्कता प्राप्त करने पर उसकी पुत्री ने अभिकथित किया कि यद्यपि संपत्ति एकमात्र थी, किंतु यह संपत्ति वसीयत को दृष्टि में रखते हुए उसमें निहित थी । उसने (पुत्री) ने इस संपत्ति को एक अन्य पक्ष को बेच दिया । वादी ने रामदास महंत के धार्मिक उपदेशक (गुरु) होने का दावा करते हुए यह अभिकथित करते हुए वाद संस्थित कराया कि मूर्तियां उनको हस्तगत की गई थीं । न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ कि क्या वादी, जो परिवार का सदस्य नहीं है या जिसको वसीयत में नामित भी नहीं किया गया, किसी निजी बंदोबस्ती में विधिमान्य रूप से वाद संस्थित करा सकता है । कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष सुसंगत प्रश्न यह उद्भूत हुआ कि क्या वादी वस्तुत: शिबायत था । न्यायमूर्ति बी. के. मुखर्जी (जो उस समय माननीय न्यायाधीश थे) ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "न्यायिक समिति ने रामचंद्र **बनाम** नौरंगी लाल (4) वाले मामले और पुन: महादेव प्रसाद सिंह **बनाम** करिया भारती (5) वाले मामले में अधिकथित किया है कि कोई व्यक्ति, जो मठ के वास्तविक कब्जे में है, अपने लाभार्थ नहीं बल्कि मठ के लाभार्थ मठ से संलग्न संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद को चलाने का हकदार है ।... किसी मठ और मूर्ति के मध्य अंतर हो सकता है और वास्तव में है, किंतु मैं इसका कोई कारण नहीं पाता कि किसी वस्तुत: शिबायत को पारिवारिक बंदोबस्ती या प्रथम बार समर्पित निजी संपत्ति के मामले में वाद फाइल करने की अनुज्ञा क्यों नहीं प्रदान की जा सकती... किसी व्यक्ति को वस्तुत: शिबायत बनाए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है, तथापि, उसको कार्यालय और प्रथम बार समर्पित संपदा के वास्तविक कब्जे में होना चाहिए ...मेरे विचार में वस्तुत: शिबायत ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो शिबायत के समस्त कार्यों का निर्वहन करे और प्रथम बार समर्पित संपत्ति के

कब्जे में हो, यद्यपि उस संपत्ति का विधिक स्वत्व उसके पक्ष में नहीं भी हो सकता है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

365. ऐसे मामलों, जिसमें कोई व्यक्ति विधिक स्वत्व न होते हुए भी शिबायत होने का दावा करता है, तो न्यायालय के समक्ष विचारार्थ सुसंगत विषय यह होगा कि क्या वह व्यक्ति प्रथम बार समर्पित की गई संपत्ति के वास्तविक कब्जे में था और शिबायत के समस्त अधिकारों का प्रयोग कर रहा था । प्रथम बार समर्पित संपत्ति के संरक्षण में सर्वोपरि हित का वस्तुत: शिबायत की मान्यता को रेखांकित करता है । जहां विधित: शिबायत नहीं होता, तो न्यायालय किसी ऐसी स्थिति का समर्थन नहीं करेगा, जिसमें कोई सद्भावी मुकदमेबाज, जिसने प्रथम बार समर्पित संपत्ति के संबंध में समस्त प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग किया है, को संपत्ति के संरक्षक के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जा सकती । यह केवल संस्था के सर्वोपरि हित के लिए होता है कि वाद फाइल करने का अधिकार ऐसे व्यक्तियों को प्रदान किया जाए, जो प्रबंधक के रूप में विधिक स्वत्व न होते हुए भी प्रबंधकों के रूप में कार्य करते हैं ।

366. **सुब्रह्मणिया गुरुक्कल** बनाम **पूर्णप्रिया ए. श्रीनिवास राव साहेब**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने इस विनिश्चयानुपात को रेखांकित किया । इस मामले में प्रतिपाल्य न्यायालय ने मंदिर से संबंधित भूमि के कब्जे में 'अर्चक' को सेवा से इस आधार पर बर्खास्त कर दिया था कि वह सेवाएं प्रदान करने और संपत्ति के बाबत किए गए कतिपय प्रभारों का हिसाब रखने में विफल रहा था । इस मामले में जागीरदार, जिसका प्रतिनिधित्व वादमित्र, जो प्रतिपाल्य न्यायालय के अधीन संपदा प्रबंधक था, द्वारा मंदिर के न्यासी की हैसियत में एक वाद कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए फाइल किया गया था । इस वाद को खारिज किए जाने का आदेश पूर्ववर्ती जागीरदार की मृत्यु के पश्चात् पारित किया गया । एक अधिसूचना वाद संस्थित कराए जाने के पश्चात् और विनिश्चय के पूर्व जारी की गई, जिसके द्वारा नए जागीरदार को अधिनियम के अंतर्गत प्रतिपाल्य नियुक्त कर दिया गया । इस मामले

---

[1] ए. आई. आर. 1940 मद्रास 617.

में यह प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुआ कि क्या वाद खारिज किए जाने का आदेश विधिमान्यत: पारित किया गया था । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामले, जिनमें जागीदार के उत्तराधिकारी ने नियंत्रण ग्रहण करने के लिए कार्रवाई नहीं की, तो प्रतिपाल्य न्यायालय वस्तुत: न्यासी की स्थिति ग्रहण कर लेगा । इस मामले में न्यायमूर्ति वुड्सवर्थ ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह न्यास संपत्ति को ऐसे विषयों में दुर्विनियोजन और परिवर्तन से संरक्षण प्रदान करे, जिनके लिए उसको समर्पित किया गया था । जब न्यासी की नियुक्ति के लिए निर्धारित तंत्र में कमी के कारण या विधिक न्यासी की अधीक्षा के कारण न्यास संपत्ति का कोई विधिक संरक्षक नहीं होता, तो यह भयावह होगा यदि उन कार्यवाहियों, जो न्यास के उद्देश्यों की रक्षा के लिए आवश्यक हैं, करने के लिए उत्तम स्वत्व रखने वाले किसी व्यक्ति की अनुपस्थिति में किसी ईमानदार व्यक्ति, जिसको संस्था के भारसाधक के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गई हो और जो न्यास के हित में उसके मामलों को सक्रियता के साथ नियंत्रित कर रहा हो, को हकदार न माना जाए ।"

367. मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति पर दो कारणोंवश गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है – प्रथम, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी न्यास के हित के संरक्षण के लिए कार्रवाई करने का अधिकार ऐसे व्यक्ति में निहित होता है, जिसको 'संस्था के प्रभारी के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है और जो सक्रिय रूप से संस्था के मामलों को नियंत्रित करता है' । किसी व्यक्ति द्वारा प्रबंधन के बाबत किया गया एकल या एकमात्र कार्य उस व्यक्ति को वस्तुत: शिबायत के रूप में मान्यता प्राप्ति का हकदार नहीं बनाता । इस मताभिव्यक्ति की सुसंगता पर कुछ समय पश्चात् विचार किया जाएगा । द्वितीय, वस्तुत: शिबायत में कार्रवाई संस्थिति कराने का अधिकार केवल किसी उत्तम स्वत्व वाले व्यक्ति अर्थात् विधित: शिबायत की अनुपस्थिति में ही निहित होता है । न्यायालय ने उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया :–

"... इसके अतिरिक्त मैं इन कानूनी उपबंधों के अतिरिक्त इस बात पर भी विचार करने के लिए आनत हूं कि किसी हिंदू मंदिर का वस्तुत: न्यासी, जो उस मंदिर के वास्तविक प्रबंध में है और संस्था के हित में सद्भावी रूप से कार्यरत है, मंदिर के सेवक या अधिकारी की सेवा से बर्खास्तगी का विधिमान्य रूप से आदेश पारित कर सकता है, परंतु यह तब जबकि सेवा से बर्खास्तगी का आदेश उचित आधारों पर पारित किया गया हो और ऐसी प्रक्रिया का पालन किया गया हो, जिसके बाबत कोई आक्षेप नहीं उठाया जा सकता हो ...। इसके अतिरिक्त मंदिर की भूमि की पुनर्प्राप्ति के बाबत वाद फाइल करने के लिए मंदिर का कब्जा और प्रबंधन धारण करने वाले वस्तुत: न्यासी की हैसियत के बाबत कोई संदेह नहीं किया जा सकता ।"

इस दृष्टि से वह व्यक्ति, जो वास्वतिक कब्जे में है और संस्था के हित के लिए सद्भावी रूप से कार्यरत है, वस्तुत: शिबायत की हैसियत में मंदिर की संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल कर सकता है ।

368. यहां पर **शंकरनारायणन अय्यर** बनाम **श्री पूवानानाथस्वामी मंदिर**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय के कतिपय विवरण का उल्लेख किया जाना सुसंगत होगा । इस मामले में विधित: न्यासी ने मंदिर की संपत्तियों का अन्यसंक्रामण कर दिया था और उसका पता ठिकाना अज्ञात था । उस न्यासी का स्थान लेने वाले न्यासी, जिसकी नियुक्ति न्यायालय द्वारा पारित समझौता डिक्री के अधीन की गई, ने मंदिर की संपत्ति, जो वादग्रस्त संपत्ति थी, की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद संस्थित कराया । इस मामले में यह दलील दी गई कि नवनियुक्त न्यासी में समझौता डिक्री से स्वतंत्र रहते हुए वस्तुत प्रबंधक की हैसियत से प्रथम बार समर्पित संपत्तियों के संरक्षण के लिए वाद संस्थित कराने का अधिकार निहित था । इस मामले में मुख्य न्यायमूर्ति पी. वी. राजामन्नेर ने यह अभिनिर्धारित किया :–

"इन बंदोबस्तियों के मामलों में तथाकथित न्यासी, जिसमें

[1] ए. आई. आर. 1949 मद्रास 721.

संपत्ति निहित होती है, वास्तव में पारिभाषिक भाव में न्यासी नहीं होता । वह वास्तव में (ऐसे मामलों में भी जिनमें उसका किसी भोगाधिकार में लाभकारी हित होता है) प्रबंधक होता है और स्वत्व सदैव मूर्ति या संस्था में निहित होता है । ऐसे प्रत्येक मामले में सादृश्यता किसी ऐसे व्यक्ति के मामले से ली जा सकती है, जो अपने और संपत्तियों के मामलों की देख-रेख के लिए प्रबंधक नियुक्त करता है । इस दृष्टि से विचार करते हुए इस प्रकार की स्थिति पर विचार किया जा सकता है । कतिपय मामलों में प्रबंधक इस पद पर यथोचित दावा रखता है, अन्य मामलों में उसका एकमात्र दावा यह होता है कि वह इस पद के वास्तविक कब्जे में है । 'वस्तुत:' का आशय है 'कब्जे के स्वत्व द्वारा', <u>'विधित:' के विलोम में अर्थात् 'अधिकार के स्वत्व द्वारा'</u> । जहां तक वास्तविक स्वामी के हित के लिए कार्रवाई का प्रश्न है, अर्थात् मठ या मूर्ति के हित के लिए और <u>वह व्यक्ति जो कार्रवाई कर रहा है, एकमात्र व्यक्ति है, जो तत्समय मूर्ति या मठ के मामलों के प्रबंधन में है</u>, तो इस बाबत कोई कारण नहीं होगा कि ऐसे व्यक्ति को मूर्ति या मठ की तरफ से कार्रवाई चलाने की अनुज्ञा क्यों नहीं प्रदान की जानी चाहिए ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

उपरोक्त मताभिव्यक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि कोई व्यक्ति, जो वस्तुत: शिबायत होने का दावा कर रहा है, को प्रथम बार समर्पित संपत्ति के अनन्य कब्जे में होना चाहिए और उसको संपत्ति के प्रबंधन में एकमात्र व्यक्ति होना चाहिए ।

369. न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने पृथक् रूप से राय व्यक्त करते हुए वस्तुत शिबायत द्वारा प्रबंधन की शक्तियों के प्रयोग को चुनौती दिए जाने के आधारों को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया :–

"...यदि कोई वस्तुत: न्यासी किसी न्यास के भंग का दोषी होता है, तो उसको विधित: न्यासी की भांति अपने पद से हटाया जा सकता है । विधि उस पर न्यास के उचित प्रबंधन के लिए उत्तरदायित्व अधिरोपित करता है और उसको न्यास की तरफ से

और उसके हित में कार्य करने के लिए शक्तियां भी प्रदान करता है, जब तक कि कोई न्यायसम्मत न्यासी कार्यभार नहीं संभालता ...कोई व्यक्ति, जो किसी धार्मिक बंदोबस्ती से संबंधित संपत्ति पर स्वयं के स्वत्व का दृढ़तापूर्वक दावा करता है और जो बंदोबस्ती के न्यासी या प्रबंधक के रूप में वाद फाइल नहीं करता और जो न्यास के लिए नहीं बल्कि स्वयं के लिए संपत्ति की पुनर्प्राप्ति का दावा करता है, तो उसको वस्तुत: न्यासी के रूप में वाद फाइल करने की अनुज्ञा कदापि नहीं दी जा सकती । जहां तक न्यास का संबंध है, वह सदैव अतिचारी की स्थिति में ही रहेगा और उस पर ऐसे किसी व्यक्ति के रूप में विचार नहीं किया जा सकता, जिसने स्वयं के बारे में किसी न्यास के कर्तव्यों और बाध्यताओं को वहन करने का दावा किया है (सपना कोटेश्वर गोदत गोवा इनडाउमेंट (ट्रस्ट) **बनाम** राम चंद्र वासुदेव किट्टूर, ए. आई. आर. 1956 बाम्बे 615 में अवलंब लिया गया) ।"

वस्तुत: शिबायत बंदोबस्ती की संपत्तियों के संबंध में शिबायत के अधिकारों पर न्यायशास्त्र के साथ संगत मूर्ति और उसकी संपत्तियों के संबंध में प्रथम बार समर्पित संपत्ति के प्रयोजनों को आगे बढ़ाने के लिए शक्ति और कर्तव्य से संपन्न होता है । यद्यपि शिबायत प्रथम बार समर्पित संपत्ति के भोगाधिकार में हितबद्ध हो सकता है, फिर भी वस्तुत: शिबायत में प्रथम बार समर्पित संपत्ति पर स्वत्व का स्वतंत्र अधिकार निहित नहीं होता । अत:, ऐसे मामलों, जिनमें कोई वस्तुत: शिबायत किसी मूर्ति को प्रथम बार समर्पित संपत्ति के बाबत स्वतंत्र दावा करता है, तो वह अतिचारी की स्थिति धारण कर लेता है और उसकी तरफ से की गई कोई भी कार्रवाई पोषणीय नहीं होगी । शिबायत द्वारा मूर्ति के हितों के प्रतिकूल किया गया कोई भी दावा उस प्रयोजन को विफल कर देता है, जिसके लिए शिबायत में मूर्ति और उसकी संपत्ति को प्रबंधित करने के अधिकार निहित होते हैं ।

370. विद्वान् न्यायाधीशों द्वारा उनके अलग-अलग विचारों में इस बाबत अधिकथित मापदंडों कि किसी व्यक्ति को कब वस्तुत: शिबायत माना जा सकता, का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा । इस संबंध में न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने यह अभिनिर्धारित किया :–

"धार्मिक बंदोबस्ती की संपत्ति के संबंध में किसी व्यक्ति के पलयानवादी या अलग-थलग कार्य उसको वस्तुतः न्यासी नहीं बनाते । इसका अर्थ यह है कि किसी एकमात्र या एकल कार्य के आधार पर कोई वस्तुतः न्यासी होने का दावा नहीं कर सकता । इसके लिए आचरण के निरंतर रूप से चलने वाले क्रम का विद्यमान होना चाहिए, जिसकी अवधि तथ्यों और मामले की परिस्थितियों पर आधारित होनी चाहिए । न्यास का उद्देश्य संस्था के पद या संस्था पर कब्जा होता है और पद से संबंधित अधिकारों का प्रयोग वस्तुतः न्यासी के पद के लिए महत्वपूर्ण होता है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

समान रूप से न्यायमूर्ति राघव राव ने यह अभिनिर्धारित किया :–

"तथापि, मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि मुझे विवाद के बिंदु के विनिर्धारण में बृहत्तर कठिनाई का अनुभव करना चाहिए था ... वस्तुतः प्रबंधक के वाद फाइल करने के अधिकार का प्रश्न कब उद्भूत होता है ? तत्पश्चात् पुनः, हमको किसी विशिष्ट अवसर पर अलग-थलग कार्य करते हुए वस्तुत प्रबंधक और तदर्थ प्रबंधक के मध्य अंतर को कब और कैसे परिभाषित करना चाहिए ? मैं ससम्मान अपने विद्वान् बंधु न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री द्वारा की गई चित्रमय मताभिव्यक्ति से सहमत हूं कि किसी एकमात्र या एकल कार्य के आधार पर कोई वस्तुतः न्यासी होने का दावा नहीं कर सकता; किंतु फिर भी व्यवहारिक प्रश्न शेष रह जाते हैं, कितने प्रश्नों का उत्तर दिया जाए ? ... इस बात को सुनिश्चित करना कितना उत्तम होगा कि संस्था की तरफ से वाद फाइल करने वाला व्यक्ति डिक्री पारित होने के पूर्व और पश्चात् अनुचित करारों या समझौतों में प्रविष्ट नहीं होता । या वह संस्था की तरफ से अभिप्राप्त किसी विशिष्ट डिक्री के परिणाम का प्रतिनिधित्व करने वाले धन के साथ पलायन कर जाता है ? यदि यह संभव नहीं है, तो क्या यह किसी प्रकार की सांत्वना है कि किसी विधितः प्रबंधक द्वारा भी संस्था कुछ समय तक निरंतर हानि बर्दाश्त करने के बाद भी चालू रह सकती है ?"

371. उपरोक्त सभी मताभिव्यक्तियां महत्वपूर्ण हैं । **शंकरनारायणन अय्यर** (उपरोक्त) वाले मामले और तत्पश्चात् हमारे न्यायालयों द्वारा निरंतर रूप से पालन किए जा रहे न्यायशास्त्र में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रबंधन द्वारा किए जा रहे अलग-थलग कार्य या आंतरायिक कार्य वस्तुतः किसी व्यक्ति में शिबायत के अधिकारों के साथ निहित नहीं होते । निर्मोही अखाड़ा द्वारा यह दलील दी गई कि वे समर्पण विलेख की अनुपस्थिति में विवादित संपत्ति के प्रबंधन और प्रभार में थे, जो वस्तुतः शिबायतों के रूप में प्रबंधन के अधिकार के लिए विधि के अंतर्गत किया गया दावा है । न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री और न्यायमूर्ति राघव राव, दोनों ने **शंकरनारायणन अय्यर** (उपरोक्त) वाले मामले में असंदिग्ध रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि अलग-थलग कार्य वस्तुतः शिबायत के अधिकारों के साथ किसी व्यक्ति में निहित नहीं होते । प्रश्नगत आचरण निरंतर प्रकृति का होना चाहिए, जिससे यह दर्शित किया जा सके कि आचरणकर्ता ने लंबी अवधि तक शिबायत के समस्त अधिकारों का प्रयोग किया है । समयावधि, जो इस अपेक्षा को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त होगी, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर आधारित होगी । न्यायमूर्ति राघव राव ने न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री के विचारों का समर्थन किया, किंतु उन्होंने उस स्तरमान, जिसके विरुद्ध वस्तुतः शिबायत होने का दावा करने वाले व्यक्ति के कार्यों का परीक्षण किया जाना चाहिए, को अधिकथित करने में आने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों को भी रेखांकित किया । किसी व्यक्ति, जो मात्र प्रथम बार समर्पित संपत्ति के कब्जे में है और आंतरायिक प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग करता है, को वस्तुतः न्यासी की स्थिति प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ निम्न स्तर के कानूनी ज्ञान के विरुद्ध सावधानी भली-भांति ज्ञात होती है ।

372. वस्तुतः शिबायत में प्रथम बार समर्पित संपत्ति को प्रबंधित करने और मूर्ति की तरफ से कार्रवाई फाइल करने का अधिकार निहित होता है । उस पर और उसकी संपत्तियों पर मूर्ति के लाभार्थ सद्भावी कार्रवाई बाध्यकारी होती है । विधितः शिबायत, जिसके अधिकारों को विधितः बंदोबस्ती विलेख में रेखांकित किया जा सकता है, के साथ तुलना किए जाने पर वस्तुतः शिबायत में मात्र कब्जे और प्रबंधकीय

अधिकारों के प्रयोग के आधार पर अधिकार निहित होते हैं । मूर्ति की संपत्तियों का संरक्षण अधिकारों के इस असाधारण प्रदाय का मर्म होता है । यदि न्यायालयों को किसी स्तरमान, जिसका सरलता से पालन किया जा सकता है, को अंगीकृत करना है, तो समर्पित संपत्ति का बड़ा हिस्सा उन व्यक्तियों की दया पर छोड़ा जाना होगा, जो उसके कब्जे में होने का दावा करते हैं और उन संपत्तियों का प्रबंधन करते हैं । प्रत्येक मामले में न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात का मूल्यांकन करे कि क्या किसी का संपत्ति पर अनन्य रूप से कब्जा नहीं है बल्कि वह उस संपत्ति पर उन समस्त प्रबंधकीय अधिकारों का निरंतर और अबाधित रूप से प्रयोग कर रहा है, जिनको किसी ऐसे व्यक्ति को अधिकार प्रदान करने के पूर्व, जिसको उस संपत्ति पर कोई विधिक स्वत्व प्राप्त नहीं है, न्यास संपत्ति के लाभार्थियों द्वारा मान्यता प्रदान की गई है ।

373. वे कर्तव्य, जो विधित: शिबायत की शक्तियों के प्रयोग को बाध्यकारी बनाते हैं, वस्तुत: शिबायत पर भी समान रूप से लागू होते हैं । अत:, वस्तुत: शिबायत द्वारा कोई ऐसी कार्रवाई, जो मूर्ति या उसकी संपत्तियों के लाभकारी हित में न हो, फाइल नहीं की जा सकती । तथापि, वस्तुत: शिबायत और विधित: शिबायत की स्थिति समस्त परिस्थितियों में समान नहीं होती । **शंकरनारायणन अय्यर** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायमूर्ति विश्वनाथ शास्त्री ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि वस्तुत: न्यासी के अधिकार समस्त मामलों में विधित: न्यासी के अधिकारों के समान नहीं होते । किसी लोक धार्मिक बंदोबस्ती के विधित: न्यासी को केवल अवचार के लिए और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 या 1927 के मद्रास अधिनियम II की धारा 73 द्वारा विहित मंजूरी के साथ संस्थित वाद में पद से हटाया जा सकता है । तथापि, ऐसे मामलों जिनमें केवल एक वस्तुत: शिबायत नियुक्त है और कार्य कर रहा है, तो न्यास में हितबद्ध लोगों को यह अधिकार है कि वे उपरोक्त उपबंधों के अंतर्गत पद की रिक्ति का अभिकथन करते हुए और यह अपेक्षा करते हुए कि इस पद को न्यायालय द्वारा न्यासी की नियुक्ति द्वारा भरा जाए, वाद फाइल करे । इससे वस्तुत: न्यासी को उसके द्वारा बिना किसी अवचार के उसके पद से हटाए

जाने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा ... जब तक वस्तुतः न्यासी इस प्रकार से स्थिति की आवश्यकताओं को देखते हुए कार्य कर रहा है, न्यास को अपने हित में और अतिचारियों द्वारा न्यास के हितों के प्रतिकूल कार्य करने का दावा करते हुए निष्काषित किए जाने के प्रयोजनार्थ वाद फाइल करने का अधिकार है । इस संबंध में और इस प्रयोजनार्थ उसके अधिकार और शक्तियां विधितः न्यासी के अधिकारों और शक्तियों के समान है ... ।"

विधितः शिबायत को उसके पद से केवल कुप्रबंधन के आधारों पर या उसके द्वारा किसी ऐसे हित का दावा किए जाने पर, जो मूर्ति के हितों के प्रतिकूल है, हटाया जा सकता है । जब तक कि वस्तुतः शिबायत का अधिकार प्रतिकूल कब्जे द्वारा पक्का नहीं हो जाता, विधितः शिबायत वस्तुतः शिबायत को उसके पद से हटा सकता है और किसी भी समय-बिंदु पर मूर्ति का प्रबंधन अपने हाथों में ले सकता है । पुनः, ऐसे मामलों, जिनमें वस्तुतः शिबायत कार्यरत है, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92 के अधीन न्यायालय से यह अपेक्षा करते हुए वाद संस्थित कराया जा सकता है कि वह किसी योजना के कार्यान्वयन द्वारा रिक्ति को भरे जाने का आदेश पारित करे । यह मूर्ति के संरक्षण के लिए कार्रवाई संस्थित कराए जाने के सीमित प्रयोजनों के लिए होता है कि वस्तुतः शिबायत के अधिकार और शक्तियां वही होती है, जो विधितः शिबायत की होती है ।

374. विधि की स्थिति यह है कि कोई व्यक्ति, जो प्रथम बार समर्पित संपत्ति के निरंतर और अनन्य कब्जे में है और मूर्ति के हितों में अपने प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग करता है, कार्रवाई संस्थित करा सकता है और इस सिद्धांत को **विक्रमा दास महंत** बनाम **दौलत राम अस्थाना**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा मान्यता प्रदान की गई है । अपीलार्थी की पुष्टि प्रिवी कौंसिल द्वारा (इस आधार पर कि पूर्ववर्ती महंत ने उसके पक्ष में संपत्ति अंतरित कर दी थी) पारित एक निर्णय को दृष्टि में रखते हुए प्रबंधक के रूप में की गई थी । प्रिवी कौंसिल द्वारा पारित निर्णय की तारीख के पूर्व तत्कालीन महंत द्वारा कतिपय

---

[1] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 382.

व्यक्तियों, जिन्होंने उनको (महंत को) पद से हटाए जाने के लिए कार्रवाई संस्थित कराई थी, के साथ एक अन्य समझौता डिक्री प्राप्त की गई थी । जबकि कुछ व्यक्ति, जिन्होंने महंत के विरुद्ध कार्रवाई संस्थित कराई थी, समझौता डिक्री के निबंधनों के अधीन ट्रस्टी बना दिए गए, किंतु उनमें एक ने महंत का पद धारण कर लिया और संपत्ति पर कब्जा कर लिया । तीन न्यासियों और पूर्ववर्ती महंत के उत्तराधिकारी ने अपीलार्थी के विरुद्ध एक वाद फाइल किया । दोनों ही निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि समझौता डिक्री अपास्त की जा चुकी है, फिर भी वादी वस्तुत: न्यासी, जिनका कब्जा निष्कलंक और अविवादित है, होने के नाते वाद को चलाने के हकदार हैं । दोनों ही निचले न्यायालयों ने अभिलिखित किया कि वादी और नवनियुक्त महंत ने समझौता डिक्री के मतावलंबन में कब्जे में आ गए और संपत्तियों का नामांतरण महंत के नाम में हो गया और यह संपत्ति तब से उनके कब्जे में है । इस मामले में न्यायमूर्ति बी. जगन्नाथदास ने इस न्यायालय की संविधान पीठ की ओर से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "33. ... हमारे समक्ष यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या कोई व्यक्ति, जो वर्ष 1934 से 1941 तक (और तत्पश्चात् आज तक) स्थान और उसकी संपत्तियों के वस्तुत: कब्जे और प्रबंधन में है और न्यायालय की डिक्री, विधिमान्य या अविधिमान्य, के अधीन न्यासी होने का दावा कर रहा है, स्थान के हितों के विरुद्ध प्रतिवादी की कार्यवाहियों से प्रतिरक्षा के लिए कोई कार्रवाई चलाने में पर्याप्त हित नहीं रखता .....।
>
> 34. ... जहां तक लोक न्यासों का संबंध है, न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात पर विचार करे कि उनके (लोक न्यासों के) हित और उन लोगों के हित जिनके लिए वे (लोक न्यास) विद्यमान हैं, की रक्षा हो । ... हम इस बात पर विचार करते हैं कि महंत के रूप में रामस्वरूप दास के लंबी अवधि तक प्रबंधन और कब्जे को दृष्टि में रखते हुए और इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए कि वह न्यास की तरफ से और उसके हित में कार्य करने के

लिए तात्पर्यित हैं, यह उचित होगा कि जब तक कि उनके स्वत्व का समुचित कार्यवाहियों के द्वारा अन्वेषण नहीं हो जाता और यह न्यायालय इन कार्यवाहियों में न्यास के हित में उनके पक्ष में डिक्री प्रदान नहीं कर देती, उनको न्यास की तरफ से कार्य जारी रखने की अनुज्ञा प्रदान की जाए ।"

न्यायालय ने इस बात की पुष्टि की कि यह केवल संस्था के सर्वोपरि हित में है कि वाद फाइल करने का अधिकार उन लोगों को प्रदान किया जा रहा है, जो प्रबंधक की भांति कार्य कर रहे हैं, यद्यपि प्रबंधक के रूप में विधिक स्वत्व नहीं रखते । इस मामले के दावाकर्ता द्वारा लंबे समय तक प्रबंधन और कब्जे के कारण उनमें देवता की तरफ से कार्य करने और उनके हितों को संरक्षित करने का अधिकार निहित हो गया है ।

375. **श्री श्री कालीमाता ठकुरानी ऑफ कालीघाट** बनाम **जिबंधन मुखर्जी**[1] वाले मामले में 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन श्री श्री कालीमाता ठकुरानी और उनके साथ सहबद्ध देवताओं की सेवा पूजा के उचित प्रबंधन और उनमें निहित संपत्तियों के उचित प्रबंधन के लिए योजना विरचित किए जाने के प्रयोजनार्थ वाद संस्थित कराया गया था । तत्पश्चात् एक योजना विरचित की गई और योजना विरचित किए जाने के पश्चात् उसको इस आधार पर चुनौती दी गई कि इस योजना में प्रबंधन समिति में वस्तुतः शिबायतों को सम्मिलित किया जाना अननुज्ञेय है । इस न्यायालय की संविधान पीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति जे आर. मुधोलकर ने इस दलील को अस्वीकृत कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया :–

"चाहे कुछ भी हो, हम इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकते कि वर्तमान शिबायतों के पूर्ववर्ती शिबायतों के रूप में लंबी अवधि तक कार्यरत थे और इस संबंध में उनके अधिकारों को कभी भी चुनौती नहीं दी गई । हम इन परिस्थितियों में विद्वान् काउंसेल की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते कि उनको मंदिर के प्रबंधन से पूर्णतया अपवर्जित कर देना चाहिए ।"

---

[1] ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 1329.

यह न्यायालय अनुतोष पर विचार करते हुए उन लोगों, जो शिबायतों के रूप में कार्यरत थे, द्वारा लंबी अवधि तक अपने अधिकारों का प्रयोग किए जाने के प्रति सावधान था । उच्च न्यायालय द्वारा प्रबंधन बोर्ड के लिए विरचित आरंभिक योजना में 18 सदस्य समाविष्ट थे, जिनमें से 12 शिबायत थे । न्यायालय ने इस बोर्ड को 11 सदस्यों के बोर्ड के रूप में उपांतरित कर दिया, जिनमें से पांच सदस्य शिबायत थे और बहुसंख्यक सदस्य, जो शिबायत नहीं थे, हिंदू थे ।

376. न्यास संपत्ति का संरक्षण सर्वोपरि महत्व का मामला होता है । इसी कारणवश कार्यवाहियां संस्थित कराने का अधिकार उनको प्रदान किया जाता है, जो प्रबंधकों के रूप में कार्यरत होते हैं, यद्यपि उनको प्रबंधक का विधिक पद प्राप्त नहीं होता । कोई व्यक्ति, जो वस्तुतः शिबायत होने का दावा करता है, मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कोई भी दावा और प्रथम बार समर्पित संपत्ति में किसी सांपत्तिक हित का कोई भी दावा नहीं कर सकता । ऐसे मामलों, जिनमें कोई व्यक्ति वस्तुतः शिबायत होने का दावा करता है, तो उसको इस प्रकार दावा करने का अधिकार उस व्यक्ति की अनुपस्थिति में होगा, जिसको बेहतर पद अर्थात्, विधितः प्रबंधक का पद प्राप्त है । यहां पर यह दर्शित किया जाना चाहिए कि वस्तुतः प्रबंधक न्यास संपत्ति के अनन्य कब्जे में होता है और वह समाज के किसी भी भाग द्वारा बिना किसी प्रतिरोध के उन संपत्तियों के प्रबंधन पर संपूर्ण नियंत्रण रखता है । उस व्यक्ति को समस्त व्यवहारिक प्रयोजना के लिए न्यास संपत्तियों के भारसाधक के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है । लोक अभिलेखों में प्रबंधक के रूप में मान्यता को मान्यता प्राप्ति के साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है ।

377. महत्वपूर्ण रूप से प्रबंधन का कोई एकल या अलग-थलग कार्य किसी व्यक्ति में वस्तुतः शिबायत के अधिकार निहित नहीं करता । उस व्यक्ति को यह प्रदर्शित करना होगा कि वह संपत्ति पर लंबी अवधि तक अबाधित और अनन्य कब्जे में रहा है । कौन सी अवधि पर्याप्त अवधि गठित करेगी, का विनिर्धारण प्रत्येक मामले के आधार पर किया जाता है । पुजारी के रूप में धार्मिक उपासना के निर्वहन के अधिकार का प्रयोग वह नहीं होता जैसाकि प्रबंधन के अधिकार का प्रयोग होता है । अंततः विश्लेषण किए जाने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि न्यास

संपत्तियों के कब्जे के लिए वाद संस्थित कराए जाने के प्रयोजनार्थ विधित: न्यासी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार का निर्णय संक्षेप में नहीं किया जा सकता और यह निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है । वे कार्य, जो उन अधिकारों का आधार, जिनका दावा शिबायत के रूप में किया जाता है, सृजित करते हैं, वही होने चाहिए जिनका प्रयोग विधित: शिबायत द्वारा किया जाता है । विधित: शिबायत में देवता की तरफ से वाद संस्थित कराने का अधिकार निहित होता है और यह अधिकार देवता की संपदा पर भी बाध्यकारी होता है, परंतु यह तब जबकि इस अधिकार का प्रयोग सद्भावी तरीके में किया जाए । इस कारणवश न्यायालय को सावधानीपूर्वक इस पर विचार करना चाहिए कि क्या प्रबंधन के कार्य किसी पर्याप्त समयावधि के दौरान अनन्य, अबाधित और निरंतर प्रकृति के कार्य हैं ।

समयावधि

378. अंतिम प्रश्न, जो हमारे समक्ष लंबित वर्तमान कार्रवाई के प्रयोजनार्थ सुसंगत है, यह है कि क्या कोई वस्तुत: शिबायत अनिश्चितकाल तक पद पर बने रहने के अधिकार का दावा कर सकता है । जैसाकि विचार पहले भी व्यक्त किया गया है, विधित: शिबायत और वस्तुत: शिबायत मूर्ति के लाभार्थ कार्य करने के सीमित अर्थ में समान अधिकारों का प्रयोग करते हैं । यहां तक कि कोई व्यक्ति शिबायत द्वारा कुप्रबंधन के प्रकथन की अनुपस्थिति में भी 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन वस्तुत: शिबायत के विरुद्ध किसी योजना के विरचित किए जाने हेतु कार्यवाहियां संस्थित करा सकता है । इस विचार को दृष्टि में रखते हुए विधिक निश्चितता और देवता के निरंतर हित की पूर्ति वस्तुत: शिबायत के दावे को चिरस्थायी अधिकार के रूप में मान्य ठहराए जाने के द्वारा होगी ।

379. **गोपाल कृष्णजी केतकर** बनाम **मोहम्मद जफर मोहम्मद हुसैन**[1] वाले मामले में वादियों ने इस बाबत घोषणा की प्रार्थना करते हुए वाद संस्थित कराया कि द्वितीय वादी मां दूर्गा का संरक्षक 'वाहीवतदार' है । प्रतिवादी ने यथोचित प्रबंधक और मुतवल्ली होने का दावा किया ।

---

[1] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 5.

वादियों के परिवार वर्ष 1817 से प्रबंधक थे । प्रतिवादी को वर्ष 1902-03 से मंदिर में प्रत्येक वर्ष एक निश्चित अवधि के दौरान प्रार्थनाओं का प्रबंध करने और उसके रखरखाव के लिए चढ़ावा एकत्रित करने का अधिकार प्रदान किया गया था । अभिकथित रूप से मंदिर का प्रबंधन करने और चढ़ावा एकत्रित करने के वादी के अधिकार में मध्यक्षेप किए जाने पर वाद संस्थित कराया गया । न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि वादी और उनके परिवार वर्ष 1886 से मंदिर के प्रबंधन का कार्य देख रहे थे । न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि चूंकि प्रतिवादी द्वारा याचित अधिकार वंशानुगत याची का अधिकार नहीं था, इसलिए यह अधिकार उनकी मृत्यु के साथ समाप्त हो गया और अब मात्र यह प्रश्न विचारार्थ शेष रह गया था कि क्या वादी मंदिर के प्रबंधन और चढ़ावे के हकदार थे या नहीं । न्यायमूर्ति विवान बोस ने इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से निर्णय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "30. अब वस्तुतः प्रबंधक या अपने अपकृत्य से न्यासी (trusty de son tort) के कतिपय अधिकार हैं । वे सामान्य अनुक्रम में न्यास की तरफ से और उसके लाभार्थ प्रबंधन के लिए और संपत्तियों और धन की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल कर सकते हैं । तथापि, यहां पर एक बात अवश्य कहनी होगी कि क्योंकि कोई व्यक्ति 'वस्तुतः' प्रबंधक है, इसलिए वह प्रबंधन के सामान्य अनुक्रम में किसी विशिष्ट संपत्ति या किसी विशिष्ट राशि, जो न्यास को अन्यथा रूप से प्राप्त न होती, की पुनर्प्राप्ति के लिए न्यास की तरफ से और उसके लाभार्थ वाद फाइल करने का हकदार है; <u>यह कहना बिल्कुल एक अन्य बात है कि उसको 'वस्तुतः' बिना किसी पदवी के प्रबंधन में अनिश्चित काल तक बने रहने का अधिकार है और यही इस प्रकार की घोषणा का अर्थ होगा । हम इस प्रकार की कोई भी व्यापक घोषणा करने से संकोच करते हैं । ... हम ऐसा करने से संकोच इसलिए करते हैं क्योंकि हम इस बात को अवांछनीय समझते हैं कि मामले को इस प्रकार अनिश्चित तरीके से लंबित बने रहने देना चाहिए जिससे कि किसी को भी इस बात का पता न चल सके कि प्रबंधन के विधिक अधिकार किसके</u>

पास है और उन अधिकारों में क्या समाविष्ट है; किसी को यह ज्ञात न हो सके कि अधिकार किस प्रकार से न्यागत हो गए या किस प्रकार से बड़ी संख्या में एकत्रित किए गए धर्मार्थ चढ़ावों का वितरण किया जाना है और उनका प्रयोग किया जाना है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

380. न्यायालय ने देवताओं की तरफ से विधि की दृष्टि में वस्तुत: शिबायत में कार्रवाई फाइल किए जाने के अधिकार के निहित होने और अनिश्चित काल तक वस्तुत: शिबायत बने रहने के दावों के मध्य विभेद किया, जिसका आशय समस्त प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए वस्तुत शिबायत को विधित: शिबायत के समकक्ष लाना होगा और उन मामलों में, जहां विधिक पद अविद्यमान है, पूर्ववर्ती (वस्तुत: शिबायत) को विधिक पद प्रदान किया जाना होगा । 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन न्यास संपत्तियों को विधिक निश्चितता और आधारी संरक्षण प्रदान किए जाने को रेखांकित किया गया है । न्यायालय में इस उपबंध के अधीन महाधिवक्ता या दो या दो से अधिक व्यक्तियों, जिनका न्यास में हित है, द्वारा आवेदन प्रस्तुत किए जाने और न्यायालय द्वारा अनुज्ञा प्रदान किए जाने पर न्यासियों को प्रतिस्थापित करने और न्यास संपत्ति के संबंध में योजना स्थिरीकृत करने की व्यापक शक्तियां निहित हो जाती हैं । न्यायालय ने इन बातों को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त मताभिव्यक्तियों के अनुसार निर्देश विरचित किए :–

"32. हमें विद्वान् महासालिसीटर द्वारा बताया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन फाइल किया गया वाद चिंतन-मनन के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया वाद होता है । मामले पर किसी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव, जो उद्भूत हो सकते हैं, डाले बिना हम निम्नलिखित आदेश पारित करते हैं । हम यह निर्देशित करते हैं कि –

1. चढ़ावे के एकत्रण और निस्तारण से संबंधित वर्तमान व्यवस्था इस निर्णय की तारीख से छह माह की अवधि तक जारी रहेगी ।

2. इस दौरान वह द्वितीय पक्ष को एकत्रित किए गए

> चढ़ावे और साथ ही वह चढ़ावा, जो पहले से जमा है, हस्तगत नहीं करेगा, सिवाय खर्चे पूर्ण किए जाने के । प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों का इस चढ़ावे पर कोई अधिकार नहीं होगा ।
>
> 3. यदि इस प्रकार का कोई वाद उक्त अवधि के भीतर संस्थित कराया जाता है, तो उक्त चढ़ावे और एकत्रण का निस्तारण ऐसी योजना के अनुसार किया जाएगा, जिसको विरचित किया जाए और उन निर्देशों के अनुसार किया जाएगा, जो वाद में दिए जाएं ।
>
> 4. यदि ऐसा कोई वाद उक्त छह माह की अवधि के भीतर संस्थित नहीं कराया जाता, तो द्वितीय वादी तारीख 13 नवंबर, 1938 अर्थात् वह तारीख जब उसको प्रबंधतंत्र में सम्मिलित किया गया, से वाद की तारीख अर्थात् 7 अक्तूबर, 1946 तक दरगाह के 'वस्तुत:' प्रबंधन में संबद्ध व्यक्ति होगा और चढ़ावा, जो वर्तमान में दरगाह की तरफ से राजकोष में जमा है, को प्राप्त करने का अधिकारी होगा और भविष्य में भी संपूर्ण वर्ष दरगाह की तरफ से और उसके लाभार्थ समस्त चढ़ावा एकत्रित करेगा, जब तक कि उसको न्यायालय से अभिप्राप्त किसी अन्य उत्तम पदवी या प्राधिकार के अंतर्गत किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्रतिस्थापित न किया जाए ।"

381. **विक्रमा दास महंत** बनाम **दौलत राम अस्थाना** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय द्वारा समझौता डिक्री पारित की गई थी, जिसके आधार पर महंत ने अधिकार का दावा किया और कब्जे में प्रविष्ट हो गया, यद्यपि समझौता डिक्री को प्रभावी नहीं किया गया । विचारण न्यायालय द्वारा समझौता डिक्री को प्रभावी किए जाने के लिए पारित अंतिम डिक्री को अपास्त कर दिया गया । यद्यपि न्यायालय ने वस्तुत: प्रबंधक के रूप में पद पर बने रहने के महंत के अधिकार को मान्य ठहराया, किंतु साथ ही यह अभिनिर्धारित किया :–

> "किंतु यह केवल अंत:कालीन अत्यावश्यकता है । हम इस तथ्य के प्रति अनभिज्ञ नहीं बने रह सकते कि हमारे समक्ष एक

लोक न्यास का मामला विचाराधीन है, जिसमें उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अभिकथित रूप से एक बिचौलिया कब्जे और प्रबंधन में होने का दावा एक ऐसी डिक्री के अंतर्गत कर रहा है, जो अभिकथित रूप से व्यर्थ है । यह हो सकता है कि जब मामले के विनिर्धारण के लिए उचित कार्यवाहियां संस्थित की जाएं, तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उसको कोई विधिक प्राधिकार प्राप्त नहीं है या यह भी संभव है कि उसको प्राधिकार प्रदान किया जाना उचित पाया जाए, यदि उसको कब्जा प्राप्त नहीं हुआ है या यह भी संभव है कि किसी अन्य व्यक्ति या निकाय के अधिकार पर विचार किया जाए ।

किंतु ये वे मामले नहीं हैं, जिनको इन कार्यवाहियों में हमारे द्वारा निर्णीत किए जाने की आवश्यकता है । हमारे द्वारा जो किया जाना आवश्यक है, यह है कि वर्तमान तथ्यात्मक की स्थिति को उत्तर प्रदेश के महाधिवक्ता के संज्ञान में लाया जाए और उनको इस बाबत विचार करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए कि क्या उनको स्वप्रेरणा से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन कार्यवाही संस्थित नहीं करानी चाहिए या अन्य समुचित कार्रवाई नहीं करनी चाहिए । इस निर्णय की एक प्रति उनको भेज दी जाए ।"

382. **गोपाल कृष्णजी केतकर** (उपरोक्त) और **विक्रमा दास** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों से इस बात की पुष्टि होती है कि न्यास संपत्तियों को संरक्षित किए जाने में हित, जो मूर्ति की तरफ से सद्भाविक वादों को संस्थित कराए जाने का सीमित अधिकार होता है, वस्तुत: शिबायत की पुष्टि किए जाने का आधार था । ऐसे मामलों, जिनमें विधित: शिबायत नियुक्त नहीं किया, विधि उन व्यक्तियों को मान्यता प्रदान करता है, जो शिबायत के रूप में मूर्ति और उसकी संपत्तियों का प्रबंधन उसको संरक्षित किए जाने की सीमा तक करते हैं ।

निर्मोही अखाड़ा का दावा

383. उस विधिक स्तरमान का उल्लेख करते हुए, जिसके बाबत न्यायालय का समाधान वस्तुत: शिबायत को मान्यता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ होना चाहिए, अब वह प्रक्रम आ गया है, जिस पर निर्मोही

अखाड़ा द्वारा दी गई इस दलील का न्यायनिर्णयन होना चाहिए कि वे ही विवादित स्थल पर स्थित मूर्तियों के शिबायत हैं । निर्मोही अखाड़ा बंजरंगियों के रामानंदी संप्रदाय का पंचायती मठ है, जो एक धार्मिक संप्रदाय है । निर्मोही अखाड़ा के रीति-रिवाजों तारीख 19 मार्च, 1949 के रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा लेखबद्ध किया गया है । उनके द्वारा यह दलील दी गई कि विवादित ढांचा एक मंदिर का भवन है, जो उनके कब्जे में रहा है और केवल हिंदुओं को ही इस मंदिर में प्रवेश करने और चढ़ावा चढ़ाने की अनुज्ञा प्राप्त है । निर्मोही अखाड़ा का दावा है कि वे पुजारियों के माध्यम से चढ़ावा प्राप्त करते रहे हैं । वादपत्र में समाविष्ट प्रकथनों और साथ ही निर्मोही अखाड़ा द्वारा याचित अनुतोषों से यह उपदर्शित होता है कि उनका दावा मंदिर का प्रबंध करने और उसका प्रभार अपने पास रखने के अधिकार के बाबत है । निर्मोही अखाड़ा ने दलील दी कि वे इस संपत्ति के कब्जे में रहे हैं और उन्होंने इस संपत्ति के संबंध में प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग किया है । इसका अर्थ यह हुआ कि उनको वस्तुत: शिबायत की हैसियत प्राप्त हो गई ।

384. आरंभ में निर्मोही अखाड़ा की तरफ से यह दलील दी गई कि वाद संख्या 5 के वादपत्र में भगवान राम की मूर्तियों के शिबायत के रूप में उनकी हैसियत को विवादित किए जाने के प्रकथन की अनुपस्थिति में शिबायतों के रूप में उनकी हैसियत को विवादित नहीं किया जा सकता । उन्होंने आगे दलील दी कि शिबायत के अधिकारों के परस्पर विरोधी दावे से संबंधित अभिवचन किसी भी वाद के वादपत्र में समाविष्ट नहीं हैं । इसके परिणामस्वरूप उन्होंने दलील दी कि माननीय न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि निर्मोही भगवान राम के मूर्तियों के शिबायत हैं । इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता । यदि निर्मोही अखाड़ा को वस्तुत: शिबायत के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है, तो इससे उनको विधि की दृष्टि में अन्य सभी लोगों के अपवर्जन में मूर्ति की तरफ से कार्रवाई संस्थित कराने का सारभूत अधिकार प्राप्त होगा । शिबायत की कार्रवाई मूर्ति और उसकी संपत्तियों पर बाध्यकारी होती है । किसी अभिव्यक्त समर्पण विलेख, जिसके द्वारा निर्मोही अखाड़ा को शिबायती अधिकार प्रदान किए गए, की अनुपस्थिति में उनके ऊपर यह प्रदर्शित करने का निश्चायक भार है कि वास्तव में वे ही

मूर्तियों के शिबायत थे । इस कारणवश निर्मोही अखाड़ा को मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर यह साबित करना चाहिए कि उन्होंने उन सभी अधिकारों का प्रयोग किया, जिनका प्रयोग वस्तुत: शिबायतों के रूप में किया जाना अपेक्षित होता है ।

385. निर्मोही अखाड़ा ने तारीख 22/23 दिसंबर, 1949, जिसके दौरान मूर्तियों को विवादित ढांचे के भीतरी गर्भगृह में चुपचाप रख दिया गया था, की घटना से इनकार किया है । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के आधार इस दावे को पहले ही अस्वीकृत किया जा चुका है कि निर्मोही अखाड़ा भीतरी बरामदे के कब्जे में था । निर्मोही अखाड़ा इस बात को साबित कर पाने में विफल रहा है कि विवादित ढांचा किसी भी तात्विक समय-बिंदु पर मंदिर था, जो उनके कब्जे में था और तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को कोई घटना घटित नहीं हुई थी । भीतरी बरामदे के अनन्य कब्जे की अनुपस्थिति में यह दावा उद्भूत नहीं होता कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत के रूप में भीतरी बरामदे का प्रबंधन कर रहा था । इस संदर्भ में न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "2994. अब हम विवाद्यक संख्या 3 (वाद संख्या 3) पर विचार करते हैं, इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यह वाद भी भीतरी बरामदे के भीतर स्थित परिसर तक सीमित है और न कि संपूर्ण परिसर तक अर्थात् भवन को सम्मिलित करते हुए बाहरी और भीतरी बरामदा । निर्मोही अखाड़ा के काउंसेल द्वारा यह अभिकथन उनके सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10, नियम 1 के अधीन तारीख 17 मई, 1963 के कथन में किया गया ।
>
> 4537. इन विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों और निर्मोही अखाड़ा के पक्षकथन को ध्यान में रखते हुए हमारे समक्ष अन्य कोई विकल्प शेष नहीं है, सिवाय यह अभिनिर्धारित करने के कि जहां तक विवादित ढांचे अर्थात् भीतरी बरामदे के भीतर स्थापित भगवान श्रीराम की मूर्तियों का संबंध है, प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा को उसका शिबायत नहीं कहा जा सकता ।"

386. निर्मोही अखाड़ा के लिखित निवेदनों में यह दलील दी गई है कि भीतरी और बाहरी बरामदा एक संपूर्ण भवन सृजित करते हैं और

वाद संख्या 3 मात्र भीतरी बरामदे के संबंध में फाइल किया गया था चूंकि मात्र भीतरी बरामदा ही कुर्की की कार्यवाहियों की विषयवस्तु था । निर्मोही अखाड़ा ने निवेदन किया कि कुर्की आदेश के कारण भीतरी और बाहरी बरामदे के मध्य मनमाना पूर्ण अंतर सृजित हुआ और भीतरी बरामदे के संबंध में कोई निष्कर्ष संपूर्ण परिसर के शिबायत के पद पर उनके दावे को दुर्बल नहीं करता । यदि उनकी दलील सही है, तो भी इस विनिर्धारण के अलावा कि निर्मोही अखाड़ा भीतरी बरामदे के कब्जे में नहीं था, यह स्वतंत्र प्रश्न, जो हमारे द्वारा विनिर्धारण के प्रयोजनार्थ उद्भूत होता है, यह है कि क्या निर्मोही अखाड़ा ने बाहरी बरामदे में मूर्तियों के संबंध में निरंतर रूप से प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग किया । निर्मोही अखाड़ा ने इस दलील का समर्थन करते हुए वाद संख्या 3 और 5 में साक्षियों के मौखिक साक्ष्य का अवलंब लिया और शिबायत के रूप में उनकी हैसियत को स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ कतिपय अतिरिक्त दस्तावेज भी प्रस्तुत किए ।

387. वाद संख्या 3 में वादी की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री एस. के. जैन ने साक्षियों के रूप में उपस्थित महंत भास्कर दास (प्रतिवादी साक्षी 3/1) और राजाराम पांडेय (प्रतिवादी साक्षी 3/2) के कथनों का अवलंब यह दलील देते हुए लिया कि यह स्वीकार कर लिया गया था कि निर्मोही अखाड़ा प्राचीन काल से शिबायत के अधिकारों का प्रयोग कर रहा था । निर्मोही अखाड़ा द्वारा प्रस्तुत किए गए मौखिक साक्ष्य का विश्लेषण इस निर्णय के अनुक्रम के दौरान पहले ही किया जा चुका है । उनके साक्षियों के कथनों का अवलंब विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा द्वारा किए जा रहे क्रियाकलापों के ठोस कारण को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं लिया जा सकता । अनेक साक्षियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि उन्होंने उनकी मुख्य परीक्षा के बदले में प्रस्तुत किए गए शपथ-पत्रों को नहीं पढ़ा था । साक्षियों ने सुसंगत दस्तावेजों पर, उनमें समाविष्ट परिसाक्ष्य को समझे बिना हस्ताक्षर कर दिए थे । पुनः, प्रतिपरीक्षा के दौरान अनेक साक्षियों ने उनके स्वयं के द्वारा किए गए कथनों का अभिव्यक्त रूप से खंडन किया । अनेक साक्षियों ने इस बात को स्वीकार किया कि उन्होंने विवादित ढांचे में प्रवेश तक नहीं किया या उन्होंने विवादित ढांचे के

उनके दौरों के बारे में किए गए पूर्ववर्ती कथनों को रद्द कर दिया था । इन मताभिव्यक्तियों के प्रकाश में मौखिक साक्ष्य, जिसका अवलंब निर्मोही अखाड़ा द्वारा शिबायत के रूप में उनकी स्थिति को स्थापित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया, को स्वीकार नहीं किया जा सकता । तथापि, पूर्णता की दृष्टि से सुसंगत उद्धरणों का परीक्षण किया गया, जिसका उल्लेख नीचे किया गया है ।

388. महंत भास्कर दास (प्रतिवादी साक्षी 3/1) वर्ष 1950 से निर्मोही अखाड़ा के पंच थे और सुसंगत समयबिंदु पर सरपंच थे । इस शपथपत्र में यह अभिकथित किया गया :–

> "81. भगवान रामलला वर्ष 1934 के भी पहले से भीतरी भाग में विराजमान हैं और यह स्थान वर्ष 1934 से निरंतर निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में रहा है । मुस्लिम इस तथ्य के बाबत अनभिज्ञ नहीं हैं । भगवान वहां पर विराजमान हैं । उनकी उपासना, राजसी चढ़ावे, सभी कुछ का प्रबंध निर्मोही अखाड़ा की तरफ से किया जाता है । भीतरी भाग की कुर्की की तारीख (अर्थात् तारीख 29 दिसंबर, 1949) पर भी यह भाग निर्मोही अखाड़ा के कब्जे में था । निर्मोही अखाड़ा के धार्मिक न्यास होने के कारण इस स्थान का स्वामित्व उसमें निहित हो गया ।"

इस निर्णय के अनुक्रम में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के विश्लेषण पर कि मूर्तियों को तारीख 22/23 दिसंबर, 1950 की मध्यरात्रि में केंद्रीय गुंबद के नीचे रख दिया गया था, इस साक्षी के शपथपत्र में अयोध्या में और विवादित स्थल पर दो सौ वर्षों से निर्मोही अखाड़ा के विद्यमान होने का संदर्भ समाविष्ट है । तथापि, इस साक्षी ने शिबायती अधिकारों के प्रयोग के संबंध में यह अभिकथित किया :–

> "35. श्रीराम जन्मभूमि मंदिर के पश्चिमी द्वार के आगंतुकों को फूल, फल और बताशे इत्यादि उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ वार्षिक करार किया जाता था । यह निर्मोही अखाड़ा के पूर्ववर्ती महंतों द्वारा प्राचीन काल से किया जा रहा था और इसके लिए वार्षिक करार निष्पादित किया जाता था । आगंतुकों/श्रद्धालुओं

के लिए सीता कूप से पवित्र और ताजा जल उपलब्ध कराए जाने के प्रयोजनार्थ ब्राह्मणों के साथ करार किया जाता था । अखाड़ा के महंत को कर का संदाय किया जाता था । मैंने वे सभी करार प्रस्तुत किए हैं, जो मेरे पास उपलब्ध हैं और अनेक दस्तावेजों को नष्ट कर दिया गया था, जिनके बाबत रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी ।"

सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री जफरयाब जीलानी द्वारा तारीख 11 सितंबर, 2003 को इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा की गई जिसमें इस साक्षी ने यह उत्तर दिए :–

"चढ़ावे, जो विवादित भवन में मूर्तियों के स्थान पर चढ़ाए जाते थे, की कुर्की के पश्चात् निर्मोही अखाड़ा द्वारा संविदा के अंतर्गत नहीं आते थे । मेरे शपथपत्र के पैरा 36 में संविदा के बाबत करार का उल्लेख है, किंतु मुझे यह स्मरण नहीं कि इस न्यायालय में निर्मोही अखाड़ा की तरफ से कितने करार प्रस्तुत किए गए । मुझे इस समय उन लोगों के नाम स्मरण नहीं, जिनसे निर्मोही अखाड़ा द्वारा पूर्वोक्त तथाकथित करार दिखाए गए थे । मुझे इस समय किसी भी नाम का स्मरण नहीं है । मैंने अपने शपथपत्र के पैरा 35 में न्यायालय में ऐसे करार को प्रस्तुत किए जाने के बाबत लिखा है और बिन्देश्वरी दुबे उन लोगों में से एक था, जिन्होंने करार लिखा था और उन करारों में यह लिखा गया था कि करार किसने लिखा और वे करार न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए हैं । मैं दस्तावेज संख्या के आधार पर यह नहीं बता सकता कि दस्तावेज संख्या 39सी-1/39 कौन सा है, किंतु मैं कागज के शीर्षक को देखकर बता सकता हूं ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

यद्यपि साक्षी ने विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा की उपस्थिति को संदर्भित किया है, फिर भी यह साक्षी किसी भी ऐसे दस्तावेज को स्मरण कर पाने में असमर्थ है, जिसको उसके द्वारा साक्ष्य के रूप में इस बाबत प्रस्तुत किया गया हो कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत के रूप में प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग कर रहा था । श्री जीलानी द्वारा तारीख 17 सितंबर, 2003 की प्रतिपरीक्षा में पूछे गए सवालों के इस साक्षी द्वारा दिए गए उत्तर का उल्लेख किया जाना भी महत्वपूर्ण है :–

> "प्रश्न – क्या मैं यह कह सकता हूं कि इस शपथपत्र के अधिकांश भाग का प्रारूपण आपके अधिवक्ता द्वारा उनके अपने ज्ञान के आधार पर किया गया था ?
>
> उत्तर – यह कहना गलत है । इस शपथपत्र के कुछ भाग मेरे अधिवक्ता के ज्ञान पर आधारित हैं, किंतु मुझे स्मरण नहीं कि वह भाग कौन सा है और मैं उसके बाबत बता नहीं सकता ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

प्रतिवादी साक्षी 3/1 के कथनों से यह प्रदर्शित होता है कि यह साक्षी उन दस्तावेजों के प्रति पूर्णतया अनभिज्ञ था, जिनको उसके द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत किया गया था । उसके कथनों से यह विश्वास नहीं होता कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत के रूप में प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग कर रहा था ।

389. तत्पश्चात् श्री एस. के. जैन ने राजाराम पांडेय (प्रतिवादी साक्षी 3/2) के शपथपत्र द्वारा प्रस्तुत की गई मुख्य परीक्षा का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिकथित किया गया है :–

> "14. ... मैंने गर्भगृह के कुर्की के पूर्व और रिसीवर द्वारा उसका प्रभार ग्रहण किए जाने तक निर्मोही अखाड़ा के पुजारी और सहायक पुजारी को आरती गाते हुए विभिन्न प्रकार की मुद्राएं बनाते हुए और 'प्रसाद' और 'चरणामृत' का वितरण करते हुए देखा है और इसी प्रकार से मैंने फरवरी, 1982 तक निर्मोही अखाड़ा के पुजारी, सहायक पुजारी और पंच को चबूतरा मंदिर और छठी पूजन स्थल में आरती गाते और पूजा करते हुए देखा है ।'

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, पुजारी जो मंदिर में उपासना को संचालित करता है, को शिबायत की हैसियत तक पदोन्नति नहीं दी जा सकती । पुजारी स्वतंत्र अधिकारों का लाभ प्राप्त नहीं करता, यद्यपि उसने लंबी अवधि तक अनेक अनुष्ठानों का संचालन किया हो । अतः, मात्र पुजारियों की स्थिति के आधार पर उनमें शिबायत का कोई अधिकार निहित नहीं होता । पुजारी के कार्यों के मात्र निर्वहन के आधार पर किसी व्यक्ति को शिकायत के अधिकार प्राप्त नहीं होते । प्रतिवादी

साक्षी 3/2 के कथन से उच्चतम स्तर तक यह बात साबित हो जाती है कि पुजारियों के रूप में निर्मोही अखाड़ा के कुछ पुजारी कार्यरत थे, किंतु इससे शिबायत की हैसियत में उनको मान्यता प्रदान किए जाने के लिए प्रबंधकीय अधिकारों के प्रयोग का साक्ष्य नहीं माना जा सकता ।

390. श्री एस. के. जैन ने वाद संख्या 3 में श्री आचार्य महंत बंसीधर दास **उर्फ** उड़िया बाबा (प्रतिवादी साक्षी 3/18) के परिसाक्ष्य का भी अवलंब यह दलील देने के प्रयोजनार्थ लिया कि निर्मोही अखाड़ा विवादित स्थल पर पूजा के साथ-साथ प्रबंधकीय अधिकारों का भी प्रयोग करता रहा है । प्रतिवादी साक्षी 3/18 अयोध्या स्थित रामकोट का वर्ष 1930 से आंतरायिक निवासी था और उसका दावा था कि वह विवादित स्थल के निकट अनेक मंदिरों और पवित्र स्थानों में निवास कर चुका है । प्रतिवादी साक्षी 3/18 ने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान यह अभिकथित किया :–

> "मैं वर्ष 1930 में दर्शन के लिए श्रीराम जन्मभूमि मंदिर, जिसके बाबत वाद लंबित है, गया था । उस समय भी भगवान रामलला विराजमान थे । मैंने उनके दर्शन किए और प्रसाद, आरती और चरणामृत (पवित्र जल) भी प्राप्त किया । मैं निर्मोही अखाड़ा के पुजारी और साधुओं, जो बाहरी भाग में निवास करते हैं अर्थात् मुख्य पूर्वी द्वार के उत्तर में स्थित संत निवास और भंडारगृह में, जिसको हनुमत द्वार कहा जाता है और जो राम चबूतरा के उत्तर में स्थित है, से प्रसाद, आरती और चरणामृत प्राप्त करता था ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

इस साक्षी ने अभिकथित किया कि पूजा के भारसाधक पुजारी निर्मोही अखाड़ा के पुजारी थे । तथापि, इस साक्षी ने विद्वान् काउंसेल श्री जीलानी द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा में यह अभिकथित किया :–

> "... प्रथमत: मैं राम चबूतरा के दर्शन करता था, तत्पश्चात् रामलला, सीता रसोई और शंकर चबूतरा के दर्शन करता था और तत्पश्चात् वहां से वापस आ जाता था । कभी-कभी मैं दर्शन करते समय पुजारी को भीतरी भाग में चढ़ाने के लिए प्रसाद भी देता था । मुझे पुजारी के नाम का स्मरण नहीं । पुजारी बदलते रहते थे ।

> उसने स्वयं कहा कि हनुमानगढ़ी, फैज़ाबाद के महंत लंबे समय तक पुजारी के पद पर रहे । मुझे वर्तमान में उनके नाम का स्मरण नहीं । उसने विद्वान् प्रतिपरीक्षक अधिवक्ता द्वारा स्मरण कराए जाने पर कहा कि पुजारी का नाम भास्कर दास था ।
>
> ...
>
> भास्कर दास जी कई वर्षों तक विवादित स्थल के पुजारी के पद पर बने रहे, किंतु वे कभी भी निर्मोही अखाड़ा के महंत नहीं थे । वे हनुमानगढ़ी, फैज़ाबाद के पुजारी थे । वर्तमान में वे न तो निर्मोही अखाड़ा के महंत हैं और न ही पुजारी । वे समिति के सदस्य हैं । मुझे नहीं ज्ञात की समिति में कितने सदस्य हैं ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

इस आरंभिक कथन कि निर्मोही अखाड़ा ही विवादित स्थल पर पूजा का कार्य करता था, के बावजूद इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा के दौरान अपने स्वयं के कथन का खंडन किया । इस साक्षी ने अभिकथित किया कि भास्कर दास ही पूजा करते थे । इस साक्षी के अनुसार भास्कर दास निर्मोही अखाड़ा से सहबद्ध नहीं थे । इस साक्षी के विरोधाभासी रूख के कारण उस पर इस तथ्य को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ भरोसा नहीं किया जा सकता कि निर्मोही अखाड़ा प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग कर रहा था या वर्ष 1949 के पूर्व विवादित स्थल पर पूजा का संचालन कर रहा था ।

391. अनेक साक्षियों के परिसाक्ष्य, जिनका अवलंब वादी द्वारा वाद संख्या 3 में लिया गया, असंगतताओं और विरोधाभासों से भरे हुए हैं । प्रतिवादी साक्षी 3/18 का परिसाक्ष्य भी भिन्न नहीं है । उसने अपने परिसाक्ष्य के दौरान यह अभिकथित किया :–

> "... राम चबूतरा का आकार लगभग 3-4 फीट का था, तीन फीट चौड़ा और भूमि से डेढ़ फीट ऊंचा । यह चबूतरा मध्य गुंबद के ठीक नीचे था और सीमेंट तथा ईंटों से बना था । यह चबूतरा पश्चिमी दीवार से दो फीट की दूरी पर पूर्व में स्थित था ।
>
> ....

... यह कहना सही नहीं है कि 5-6 हजार हिंदुओं ने वहां पर बलपूर्वक प्रवेश करके तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की रात्रि में मूर्तियां रख दी थीं । यह कहना भी सत्य नहीं है कि इन लोगों ने मस्जिद को अपवित्र कर दिया । <u>यह कहना भी सत्य नहीं है कि वहां पर मूर्तियां रात्रि में रखी गई थीं, क्योंकि मूर्तियां वहां पर पहले से ही विराजमान थी</u> । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में संसूचित यह बिंदु गलत है कि मूर्तियों को तारीख 22 दिसंबर, 1949 की रात्रि में रखा गया था ... ।”

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

इस निर्णय को पारित किए जाने के अनुक्रम के दौरान पक्षों द्वारा भारी मात्रा में साक्ष्य प्रस्तुत किया । इस बाबत सुझाव दिए जाने के प्रयोजनार्थ कोई भी साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है कि राम चबूतरा कभी भी मस्जिद के केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थित था या मूर्तियां वर्ष 1949 के दिसंबर माह के पूर्व मस्जिद के भीतर विद्यमान थीं । इस साक्षी ने आगे अभिकथित किया :–

“धर्मशास्त्रों में असत्य कथन को पाप कर्म के रूप में वर्णित किया है । किंतु यदि असत्य कथन किए जाने के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को साबित किया जाता है, तो असत्य कथन किए जाने में कोई हानि नहीं है । इसी प्रकार से कोई ऐसा व्यक्ति, जो भूख से तड़प रहा है, द्वारा असत्य कथन किए जाने में कोई हानि है । <u>यदि कोई धार्मिक स्थान है और कोई उस धार्मिक स्थान को गलत तरीके से अर्जित कर रहा है या बलपूर्वक अधिभोग में ले रहा है, तो असत्य कथन करने में कोई हानि नहीं है</u> । यदि किसी धार्मिक स्थान पर अन्य धर्म के मानने वालों द्वारा बलपूर्वक कब्जा कर लिया जाता है, तो असत्य कथन किए जाने में कोई हानि नहीं है ।”

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

उसके परिसाक्ष्य का अवलंब साक्षियों द्वारा किए गए इन कथनों के प्रकाश में नहीं लिया जा सकता ।

392. श्री एस. के. जैन ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 10,

नियम 2 के अधीन तारीख 22 अप्रैल, 2009 को अभिलिखित श्री जीलानी के कथन का अवलंब लिया, जिसमें यह अभिकथित किया गया है :–

> "... उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के पश्चात् से निर्मोही अखाड़ा की विद्यमानता विवादित नहीं है । तथापि, इस बात से इनकार किया गया है और विवादित भी किया गया है कि निर्मोही अखाड़ा विद्यमान था, विशेष रूप से अयोध्या में सोलहवीं शताब्दी में या वर्ष 1528 में और इस बात से भी इनकार किया गया है कि तारीख 22 दिसंबर, 1949 तक बाबरी मस्जिद के भवन में मूर्तियां विद्यमान थीं"

अयोध्या में या विवादित स्थल के आस-पास निर्मोही अखाड़ा की मात्र उपस्थिति और विवादित स्थल पर वास्तविक कब्जे और उसके प्रबंधन के मध्य अंतर है । मात्र किसी क्षेत्र के भीतर उपस्थिति या किसी क्षेत्र पर कब्जा शिबायत की शक्तियां निहित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त नहीं है । श्री जीलानी के कथन से निर्मोही अखाड़ा के प्रबंधन या कब्जे के बारे में कुछ भी न तो प्रदर्शित होता है और न ही स्वीकार ।

393. तत्पश्चात् वाद संख्या 5 में वादी के साक्षियों के मौखिक परिसाक्ष्य का अवलंब लिया गया । श्री एस. के. जैन ने दलील दी कि इन साक्षियों ने स्वीकार किया है कि विवादित ढांचे की कुर्की के पूर्व और पश्चात् निर्मोही अखाड़ा के पुजारी मूर्तियों के प्रबंधन का कार्य कर रहे थे । उन्होंने निवेदन किया कि चूंकि वाद संख्या 5 में साक्षियों ने शिबायतों के रूप में निर्मोही अखाड़ा की हैसियत को स्वीकार किया है, इसलिए न्यायालय के समक्ष इस बात को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई अन्य साक्ष्य अपेक्षित नहीं है कि निर्मोही ही शिबायत हैं । इन साक्षियों के कथनों के सुसंगत भाग निम्नलिखित हैं :–

> "(i) **श्री महंत परमहंस राम चरण दास** (वादी साक्षी 1)
>
> "... हिंदू कुर्की के पूर्व बिना किसी निर्बंधन के गर्भगृह में दर्शन के लिए जाते थे । वहां पर भगवान शालीग्राम, हनुमान जी और रामलला की मूर्तियां विराजमान थी । निर्मोही अखाड़ा से संबंधित लोगों ने कभी भी किसी हिंदू को गर्भगृह में जाने से नहीं रोका । कुर्की के पूर्व निर्मोही अखाड़ा के सदस्य गर्भगृह का प्रबंधन करते थे ..."

(ii) **देवकी नंदन अग्रवाल** (वादी साक्षी 2)

"... निर्मोही अखाड़ा के बजरंगी, जो राम चबूतरा पर उपासना करते थे, मुस्लिमों को भीतर प्रवेश करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं करते थे । इसलिए इस स्थान पर निरंतर प्रयासों के बावजूद कभी भी नमाज अदा नहीं की गई ।"

"... मूर्तियों की उपासना, जो पूर्व में राम चबूतरा पर होती थी और उन मूर्तियों की उपासना, जिनको वर्ष 1949 के पश्चात् स्थापित किया गया, केवल निर्मोही अखाड़ा के दो लोगों द्वारा की जाती थी, जब तक कि धर्मदास जी के साथ विवाद उत्पन्न नहीं हुआ ।"

(iii) **श्रीराम नाथ पांडा** उर्फ **बनारसी पांडा** (वादी साक्षी 5) :

वर्जित दीवार में दो द्वार थे, जो बंद रहते थे और जिनको निर्मोही अखाड़ा के पुजारियों द्वारा खोला और बंद किया जाता था । वही पुजारी राम चबूतरा और सीता रसोई इत्यादि पर प्रार्थना और आरती करते थे । हम घेरा (रेलिंग) से तीर्थ यात्रियों के लिए गर्भगृह के दर्शन का प्रबंध करते थे । वहां पर एक दानपात्र भी रखा हुआ था । मुख्य द्वारों पर बताशे, फूलों और हार इत्यादि की दुकाने थीं । उनमें से एक दुकान सहदेव माली की थी ।

"...ताले की चाबी निर्मोही अखाड़ा के लोगों के कब्जे में रहती थी, जिनका पुजारी ताले को खोलता और बंद करता था और आरती पूजा करता था और घंटी बिगुल इत्यादि बजाता था ..."

"... मैं वर्ष 1949 से 1970 तक नियमित रूप से राम जन्मभूमि जाता रहता था । वर्ष 1949 में कुर्की के पश्चात् गर्भगृह के रिसीवर बाबू प्रियदत्त राम फैज़ाबाद नगरपालिका के अध्यक्ष बने और राम चबूतरा मंदिर, छठी पूजा स्थल, भंडार स्थल और शिव दरबार पूजा जैसे स्थानों पर पूजा उसी प्रकार से जारी रही जैसेकि पहले होती थी और उन्हीं लोगों के द्वारा की जाती रही, जो पहले करते थे ..."

वाद संख्या 5 में वादी साक्षियों के परिसाक्ष्यों को चुन चुनकर

उद्धृत किया गया है किंतु इन परिसाक्ष्यों के आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत था । वादी साक्षी 1 का कथन कि निर्मोही अखाड़ा भीतरी बरामदे का प्रबंधन करता था, का समर्थन किसी साक्ष्य को प्रस्तुत किए जाने के द्वारा नहीं किया गया है, जिसके आधार पर निर्णय में अन्यत्र निष्कर्ष अभिलिखित हैं । इसी प्रकार से वादी साक्षी 5 द्वारा किया गया एकमात्र कथन कि निर्मोहियों के कब्जे में बाहरी बरामदे की चाबी थी, की पुष्टि किसी अन्य कथन के द्वारा नहीं की गई । यदि निर्मोहियों के पास बाहरी बरामदे की चाबी थी, तो विवादित स्थल का प्रत्येक दर्शनार्थी, चाहे वह हिंदू हो या मुस्लिम, को प्रवेश के लिए निर्मोहियों की अनुज्ञा प्राप्त करना अपेक्षित होता । यदि यह सत्य है, तो इस स्थिति को अन्य साक्षियों द्वारा उनके परिसाक्ष्य में निश्चित रूप से अभिलिखित किया जाता । वादी साक्षी 2 के कथन से एक बार पुन: विवादित स्थल के भीतर और उसके आस-पास निर्मोहियों की उपस्थिति उपदर्शित होती है । इस कथन से निर्मोहियों और धर्मदास के मध्य वर्ष 1949 में मूर्तियों को भीतरी बरामदे को ले जाने के बाबत असहमति उपदर्शित होती है । यह कथन देवता के अनन्य प्रबंधकों के रूप में निर्मोहियों के दावे को रेखांकित करता है चूंकि यह कथन मूर्तियों को स्थापित किए जाने के बारे में असहमति का साक्ष्य है । निर्मोही अखाड़ा द्वारा तारीख 22/23 दिसंबर की घटनाओं के बाबत निरंतर रूप से इनकार से इस मताभिव्यक्ति को बल प्राप्त होता है ।

394. मौखिक परिसाक्ष्य, जिसका अवलंब निर्मोही अखाड़ा द्वारा लिया गया, से यह भली भांति साबित होता है कि वे विवादित स्थल में और उसके आस-पास उपस्थित थे । तथापि, विवादित स्थल के आस-पास निर्मोहियों की उपस्थिति का यह अर्थ नहीं होगा कि उनके पास प्रबंधकीय अधिकारों के प्रयोग का अधिकार था, जो उनको विधि की दृष्टि में वस्तुत: शिबायत की हैसियत प्रदान करता था । वाद संख्या 3 में मौखिक साक्ष्य, जिसका अवलंब लिया गया, असंगतताओं से भरा हुआ है और जिसके आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि निर्मोही अखाड़ा ने भगवान राम की मूर्तियों की तरफ से प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग किया । वाद संख्या 5 में तीनों साक्षियों के साक्ष्य

को चुन चुनकर उद्धृत किया गया है और इन कथनों की पुष्टि किसी अन्य साक्षी के परिसाक्ष्य द्वारा नहीं की गई है । निर्मोही अखाड़ा ने मौखिक परिसाक्ष्य से स्वतंत्र रहते हुए विवादित स्थल पर मूर्तियों के शिबायत के रूप में अपनी हैसियत को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ दस्तावेजी साक्ष्य का अवलंब लिया है । ये दस्तावेजी साक्ष्य निम्नलिखित हैं :–

(i) मस्जिद अहाते के भीतर कुछ बैरागियों द्वारा निर्मित 'कोठरी' के संबंध में तुलसी दास के विरुद्ध मीर रजब अली खतीब द्वारा तारीख 25 सितंबर, 1866 की शिकायत;

(ii) प्रदर्श 30 – वाद संख्या 1 – उत्तर दिशा में नए द्वार के निर्माण की अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश के संबंध में मोहम्मद असगर द्वारा महंत खेमदास के विरुद्ध तारीख 13 दिसंबर, 1877 की अपील;

(iii) प्रदर्श 7 – वाद संख्या 5 – अवध प्रांत का गज़ेटियर (1877-78);

(iv) प्रदर्श 24 – वाद संख्या 1 – चबूतरे के प्रयोग के लिए किराए की ईप्सा करते हुए सय्यद मोहम्मद असगर द्वारा महंत रघुबर दास के विरुद्ध संस्थित कराए गए वाद में तारीख 8 नवंबर, 1882 का वादपत्र;

(v) प्रदर्श 28 – वाद संख्या 1 – सय्यद मोहम्मद द्वारा मस्जिद की रंगाई के लिए कराए गए कार्य को ध्यान में रखते हुए स्थल निरीक्षण की ईप्सा करते हुए महंत रघुबर दास द्वारा तारीख 27 जून, 1884 का परिवाद;

(vi) प्रदर्श ए-22 – वाद संख्या 1 – महंत रघुबर दास द्वारा राम चबूतरा स्थल पर मंदिर निर्माण की अनुज्ञा प्रदान करते हुए तारीख 19 जनवरी, 1885 को फाइल किया गया वाद;

(vii) प्रदर्श 8 – वाद संख्या 3 – अयोध्या स्थित राम जन्मभूमि स्थल के दर्शन के लिए आने वाले तीर्थ यात्रियों को पीने का पानी उपलब्ध कराए जाने हेतु झिंगू (गया के पुत्र) को अनुज्ञा प्रदान करते हुए तारीख 11 जून, 1900 के करार की प्रति;

(viii) एच. आर. नेविल का 'द गज़ेटियर ऑफ द यूनाइटेड प्रोविंसेज़ ऑफ आगरा एंड अवध' (1905), जिसके द्वारा यह अभिकथित किया गया कि निर्मोही अखाड़ा संप्रदाय पूर्व में रामकोट स्थित जन्मस्थान मंदिर के कब्जे में था, जिसके अवशेष आज भी उन्हीं से संबंधित हैं;

(ix) प्रदर्श 9 – वाद संख्या 3 – नरोत्तम दास द्वारा गोपाल (बाबू का पुत्र) के पक्ष में जन्मभूमि रामकोट अयोध्या स्थित दुकान का ठेका निष्पादित किए जाने के संबंध में तारीख 13 अक्तूबर, 1942 के करार की प्रति;

(x) प्रदर्श 10 – वाद संख्या 3 – महंत रघुनाथ दास द्वारा दुकान के संबंध में निष्पादित तारीख 29 अक्तूबर, 1945 का करार;

(xi) प्रदर्श 49 – वाद संख्या 4 – महंत रघुनाथ दास के पक्ष में नामांतरण की प्रविष्टि; और

(xii) प्रतिवादी साक्षी द्वारा कथन – 10 उमेश चंद्र पांडेय द्वारा ।

आगे यह दलील दी गई कि सुपुर्दगीनामा, जिसके द्वारा रिसीवर ने कब्जा प्राप्त किया, में यह अभिलिखित नहीं किया गया कि कब्जा किससे लिया गया । इस दस्तावेज से बाहरी बरामदे में निर्मोही अखाड़ा की उपस्थिति उपदर्शित होती है । अंततः यह दलील दी गई कि धारा 145 के अधीन कार्यवाही में अंतरिम आदेश पारित होने के पश्चात् भी सेवा पूजा जारी रही 'जैसेकि पहले हो रही थी' और वह भी निर्मोही अखाड़ा के पुजारियों द्वारा संचालित की जाती रही ।

395. निर्मोही अखाड़ा ने दलील दी कि विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा के अनेक बैरागियों की उपस्थिति उनके द्वारा प्रबंधकीय अधिकारों के प्रयोग का सबूत है । इसके समर्थन में निर्मोही अखाड़ा ने निम्नलिखित का अवलंब लिया :–

(i) एडवर्ड थॉर्नटन (1854, गज़ेटियर ऑफ द टेरिटरीज़ अंडर द गवर्नमेंट ऑफ ईस्ट इंडिया कंपनी) ने लगभग 500 बैरागियों की उपस्थिति निर्दिष्ट की है ;

(ii) तारीख 29 नवंबर, 1949 का पत्र – फैज़ाबाद के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक कृपाल सिंह ने उपायुक्त के. के. नायर को पत्र संबोधित करते हुए उल्लेख किया कि 'कई हजार हिंदू, बैरागी और साधु' प्रस्तावित कीर्तन में भाग लेने के लिए उपस्थित हैं;

(iii) तारीख 16 दिसंबर, 1949 का पत्र – के. के. नायर (फैज़ाबाद के उपायुक्त और जिला मजिस्ट्रेट) ने गोविंद नारायण को संबोधित करते हुए एक पत्र लिखा जिसके द्वारा यह अभिकथित किया गया कि 'इस वर्ष किसी समय, संभवत: अक्तूबर या नवंबर माह में प्रत्यक्ष रूप से बैरागियों, जो इस धर्म स्थल के साथ मुस्लिमों के संबंध का अत्यधिक जागरुकता के साथ विरोध करते हैं, द्वारा कुछ कब्रों के टीले आंशिक रूप से नष्ट कर दिए गए थे'; और

(iv) वक्फ़ निरीक्षक की तारीख 23 दिसंबर, 1949 की रिपोर्ट, जिसको वाद संख्या 1 में प्रदर्श ए-64 के रूप में चिह्नित किया गया, में भी बैरागियों की उपस्थिति को संदर्भित किया गया है । इस संबंध में निर्मोही अखाड़े द्वारा जिस साक्ष्य का अवलंब लिया गया, वह साक्ष्य विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़े की बैरागियों की उपस्थिति का भली भांति सबूत प्रस्तुत करती है । यह दर्शित करने के लिए किसी अन्य विश्वसनीय दस्तावेज या साक्ष्य को प्रस्तुत नहीं किया गया कि इन बैरागियों ने वास्तव में शिबायत के रूप में प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग किया ।

396. मीर रजब अली खतीब द्वारा फाइल की गई तारीख 25 सितंबर, 1866 की शिकायत में यह अभिकथित किया गया है कि यह शिकायत 'तुलसीदास' नामक व्यक्ति के विरुद्ध फाइल की गई थी । निर्मोही अखाड़े के मौखिक साक्ष्य का अवलंब यह साबित करने के लिए लिया कि तुलसीदास वास्तव में निर्मोहियों का महंत था और निर्मोही अखाड़े ने ही 'कोठरी' का निर्माण किया था । यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि मौखिक साक्ष्य, जिसका अवलंब निर्मोहियों द्वारा उनके दावे को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया, विश्वसनीय नहीं है । यह दस्तावेज स्वयमेव यह साबित नहीं करता कि तुलसीदास निर्मोहियों का महंत था और निर्माण निर्मोहियों द्वारा कराया गया था ।

इस बात की पुष्टि किसी अन्य दस्तावेजी साक्ष्य, जो उस समय ऐसे निर्माण के साथ सहबद्ध हो, द्वारा नहीं की गई है और यह शिबायत के रूप में अधिकारों के प्रयोग का साक्ष्य नहीं है ।

397. वाद संख्या 3 में प्रदर्श 8, 9 और 10 यह साबित करते हैं कि निर्मोही विवादित ढांचे के दर्शन के लिए आने वाले तीर्थ यात्रियों को विभिन्न सेवाएं प्रदान कर रहे थे । तथापि, सभी तीन प्रदर्श विवादित ढांचे के भीतर इन सेवाओं के प्रदाय की अनुज्ञा प्रदान किए जाने से संबंधित हैं । इन सब बातों के अतिरिक्त ये प्रदर्श दर्शित करते हैं कि निर्मोही विवादित ढांचे में और उसके आसपास उपस्थित थे और तीर्थ यात्रियों की सहायता करते थे तथापि, ये प्रदर्श मूर्तियों या स्वयमेव विवादित स्थल के किसी प्रबंधन के साक्ष्य नहीं हैं ।

398. निर्मोही अखाड़े के महंत के रूप में महंत रघुबर दास की भूमिका का अवलंब महत्वपूर्ण रूप से लिया गया है । इस संबंध में प्रदर्श 24 (तारीख 8 नवंबर, 1882 को किराए के एकत्रण के लिए फाइल किए गए वाद), प्रदर्श 28 (भूखंड के निरीक्षण की ईप्सा करते हुए तारीख 27 जून, 1884 की शिकायत) और वाद संख्या 1 में, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, प्रदर्श ए-22 (राम चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के लिए फाइल किया गया 1885 का वाद) का इस संबंध में अवलंब लिया गया । यह दलील दी गई कि महंत रघुबर दास ने निर्मोही अखाड़े के महंत के रूप में उपरोक्त वाद फाइल किए थे । इस आधार पर यह दलील दी गई कि देवता के प्रबंधन और प्रभार की जिम्मेदारी निर्मोही अखाड़े द्वारा ली गई थी । गहनतापूर्वक विश्लेषण किए जाने पर निर्मोही अखाड़े द्वारा महंत रघुबर दास के संबंध में किए गए पक्षकथन में अनेक विरोधाभास प्रकट होते हैं । महंत रघुबर दास ने 1885 के वाद में 'अयोध्या स्थित जन्मस्थान' के महंत होने का दावा किया है । निर्मोही अखाड़े द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन में यह अभिकथित किया गया है कि महंत रघुबर दास ने वर्ष 1885 का वाद व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किया था :–

> "...उक्त वाद (1885 का वाद) <u>महंत रघुबर दास द्वारा निर्मोही अखाड़े के नाम का उल्लेख किए बिना अपनी व्यक्तिगत</u>

हैसियत में फाइल किया गया था और किसी भी स्थिति में उक्त वाद में विषयग्रस्त संपत्ति - (बाहरी बरामदे में चबूतरा) वादग्रस्त संपत्ति (भीतरी बरामदा), जो वाद संख्या 3 की विषयवस्तु है, से भिन्न थी ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

तथापि, उसी लिखित कथन में वक्फ़ निरीक्षक की तारीख 23 दिसंबर, 1949 की रिपोर्ट पर चर्चा करते हुए यह कहा गया :–

"उन्होंने महंत रघुबर दास के नाम का उल्लेख अन्य लोगों के नाम के साथ किया है, जिन्होंने मुस्लिमों को बातचीत के लिए आमंत्रित किया था । महंत रघुबर दास निर्मोही अखाड़े के महंत हैं ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

निर्मोही अखाड़े ने प्रत्युत्तर में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किए गए वाद के बाबत किसी भी जानकारी से इनकार कर दिया था :–

"... वादी को किसी व्यक्ति, जिसको जन्मस्थान के महंत के रूप में महंत रघुबर दास के नाम से जाना जाता है, द्वारा फाइल किए गए उक्त वाद, यदि कोई हो, की जानकारी नहीं है ।"

वाद संख्या 4 में निर्मोही अखाड़े की तरफ से फाइल किए गए लिखित कथन में यह अभिलिखित किया गया :–

"... उत्तर देने वाले प्रतिवादियों को ऐसे किसी वाद की जानकारी नहीं है, जिसे किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा फाइल किया गया हो, जिसको महंत रघुबर दास के नाम से जाना जाता है और जो स्वयं को जन्मस्थान का महंत बताते हैं । ..."

महंत रघुबर दास ने वर्ष 1885 के वाद में स्वयं के अयोध्या स्थित जन्मस्थान के महंत होने का दावा किया है । निर्मोही अखाड़े ने इस न्यायालय के समक्ष और साथ ही उच्च न्यायालय के समक्ष मौखिक सुनवाई में दावा किया कि महंत रघुबर दास निर्मोही अखाड़ा के महंत थे । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :–

"964. जैसाकि हमने पहले ही अवेक्षित किया है, निर्मोही अखाड़े द्वारा इस बात को विवादित नहीं किया गया है कि वर्ष 1885 में रघुबर दास निर्मोही अखाड़े के महंत थे ...।"

उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि निर्मोही अखाड़े ने महंत रघुबर दास को निर्मोही अखाड़े के महंत के रूप में समर्थन से यह साबित करने के लिए दिया था कि वे वर्ष 1800 से शिबायत के रूप में कार्य करते रहे हैं । फिर भी उन्होंने पूर्व आदेश (res judicata) के प्रश्न पर विचार करते हुए महंत से दूरी बना ली । निर्मोही अखाड़े ने यहां तक अभिकथित किया कि उनको वर्ष 1885 के वाद की जानकारी नहीं है । महंत रघुबर दास के संबंध में निर्मोही अखाड़े का असंगत पक्षकथन मामले में उनके विरुद्ध प्रतिकूल अनुमान लगाए जाने की तरफ ले जाता है ।

399. निर्मोही अखाड़े द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य से यह दर्शित नहीं होता कि वे प्रश्नगत संपत्ति का प्रबंधन कर रहे थे । दस्तावेजी साक्ष्य, जिनका ऊपर विश्लेषण किया गया है और जो निर्मोही अखाड़े के पक्षकथन का समर्थन नहीं करते, के अतिरिक्त निर्मोही अखाड़े द्वारा प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई अन्य साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । निर्मोही अखाड़े द्वारा वस्तुतः शिबायत के रूप में इक्का-दुक्का कार्य अधिकारों और कर्तव्यों को पूर्ण किए जाने के प्रयोजनार्थ निरंतर, अनन्य और अबाधित रूप से शक्तियों का प्रयोग किए जाने के बाबत पर्याप्त साक्ष्य गठित नहीं करते । ऐसा कोई भी दस्तावेज इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया, जो मरम्मत, निर्माण, पुजारियों की नियुक्ति या अन्य क्रियाकलापों का साक्ष्य प्रस्तुत करता हो । महत्वपूर्ण रूप से निर्मोही अखाड़े ने अभिलेख पर इतिहास में उल्लिखित यात्रियों द्वारा प्रस्तुत की गई इक्का-दुक्का घटनाओं के अलावा कोई अन्य दस्तावेज उनके द्वारा प्रबंधकीय अधिकारों का प्रयोग दर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रस्तुत नहीं किया है । निर्मोही अखाड़े द्वारा अपनाए जाने वाले रीति-रिवाजों को तारीख 19 मार्च, 1949 के रजिस्ट्रीकृत विलेख द्वारा लेखबद्ध कर दिया गया था ।

400. जब श्री जैन से मूल दस्तावेजों, जो निर्मोही अखाड़े के शिबायत के रूप में दावे को साबित करते हों, को प्रस्तुत किए जाने के

लिए प्रश्न पूछा गया, तो उन्होंने दलील दी कि अभिकथित रूप से एक डकैती के कारण वे दस्तावेज गायब हो गए थे, जो इस दावे की पुष्टि के लिए आवश्यक थे । अपने इस दावे की पुष्टि के प्रयोजनार्थ उन्होंने दलील दी कि तारीख 18 फरवरी, 1982 को धर्मदास के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी । तथापि, निर्मोहियों द्वारा प्रस्तुत किए गए लिखित कथन में यह अभिकथित किया गया कि यद्यपि धर्मदास दो माह तक जेल में रहा था, फिर भी बाद में मामले को एक समझौते के आधार पर अभिखंडित कर दिया गया था । इस दावे की पुष्टि के प्रयोजनार्थ कोई दस्तावेज पेश नहीं किया गया, सिवाय एक एकल साक्षी – राजा रामचंद्राचार्य (प्रतिवादी साक्षी 3/20) के कथन का अवलंब लिए जाने के लिए यह दलील निर्मोहियों को शिबायत की हैसियत प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ उनके द्वारा प्रबंधकीय अधिकारों के प्रयोग के बाबत किसी सारभूत सबूत की स्पष्टतः अनुपस्थिति की तरफ से न्यायालय का ध्यान भटकाने का प्रयास है । विधि की दृष्टि में शिबायत की स्थिति महत्वपूर्ण होती है । शिबायत मनुष्य के रूप में मूर्ति का सेवक और अभिरक्षक होता है और वह प्राधिकृत प्रतिनिधि की भांति कार्य करता है । शिबायत में मूर्ति की तरफ से कार्रवाई करने और उस कार्रवाई को बाध्यकारी बनाने का अधिकार निहित होता है । इस दृष्टि से निर्मोही अखाड़े के इस दावे का विश्लेषण हो चुका है कि वह अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर वस्तुतः शिबायत है और यह निष्कर्ष निकाला जा चुका है कि उनका दावा शिबायती अधिकारों के रूप में परिपक्व नहीं हुआ है ।

401. वस्तुतः शिबायत के रूप में अधिकारों के दावे की पुष्टि इस सबूत के साथ होनी चाहिए कि वह व्यक्ति न्यास संपत्ति के अनन्य कब्जे में है और संपत्तियों के प्रबंधन के अधिकार पर बिना किसी रुकावट के, चाहे वह कुछ भी हो, संपूर्ण नियंत्रण का प्रयोग करता है । इस व्यक्ति को (शिबायत को) समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए न्यास संपत्तियों के भारसाधक के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है । यद्यपि, वर्तमान कार्यवाहियों में इस बात से न तो इनकार किया जा सकता है और न ही किया गया है कि विवादित स्थल पर निर्मोही अखाड़ा विद्यमान था, फिर भी निर्मोही अखाड़े के दावे पर

ध्यानपूर्वक विचार किया जाए, तो वह कतिपय प्रबंधकीय अधिकारों के आंतरायिक प्रयोग में था । उनके (शिबायत के) अधिकार एक परिधि के अंतर्गत (परिधीय) थे और प्राय: उन अधिकारों में तीर्थ यात्रियों की सहायता का कार्य अंतर्वलित होता था और निरंतर रूप से उनका विरोध किया जाता था । जैसाकि ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, प्रबंधकीय अधिकारों का रुक-रुककर या आंतरायिक प्रयोग विधि की दृष्टि में किसी दावेदार को वस्तुत: शिबायत की हैसियत प्रदान नहीं करता । यह नहीं कहा जा सकता कि निर्मोही अखाड़े के कार्य प्रबंधन और प्रभार के विधिक स्तरमान, जो कि पर्याप्त समयावधि के दौरान अनन्य, अबाधित और निरंतर थे, को संतुष्ट करने वाले थे । निर्मोही अखाड़ा ऊपर रेखांकित कारणोंवश, विवादित स्थल पर अविवादित उपस्थिति के बावजूद शिबायत नहीं था ।

402. यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रकाश में कि निर्मोही अखाड़ा विवादित स्थल पर भगवान राम की मूर्तियों का शिबायत नहीं है, हितबद्ध उपासक को यह अधिकार था कि वह मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करता । विधि की दृष्टि में कोई मान्यताप्राप्त शिबायत विद्यमान नहीं था । ऐसी स्थिति में मूर्तियों के वाद फाइल करने के स्वतंत्र अधिकारों का प्रयोग वादमित्र या मूर्ति के संरक्षण और उसके हितों में हितबद्ध किसी उपासक द्वारा किया जाता था । वाद संख्या 5, जो किसी विधित: मान्यताप्राप्त शिबायत की अनुपस्थिति में प्रथम और द्वितीय वादियों की तरफ से वादमित्र द्वारा संस्थित कराया गया है, पोषणीय है ।

403. वर्तमान अपील में प्रत्यर्थी संख्या 12 महंत श्री धर्मदास की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री जयदीप गुप्ता ने निवेदन किया कि वह स्वर्गीय बाबा अभिराम दास, जो वर्ष 1949 के पूर्व राम जन्मभूमि मंदिर के पुजारी थे, का उत्तराधिकारी (चेला) है । वर्तमान प्रत्यर्थी अयोध्या स्थित अखिल भारतीय श्री पंच निर्वाणी अणि अखाड़ा और हनुमानगढ़ी के महंत हैं । स्वर्गीय बाबा अभिराम दास वाद संख्या 4 में प्रतिवादी संख्या 13/1 और वाद संख्या 5 में प्रतिवादी संख्या 14 थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् उक्त वादों में वर्तमान प्रत्यर्थी को प्रतिवादी के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था । यह निवेदन किया गया है कि

स्वर्गीय बाबा अभिराम दास जन्मस्थान मंदिर के पुजारी थे और उन्होंने इस मंदिर के मामलों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था । आगे यह निवेदन किया गया कि स्वर्गीय बाबा अभिराम दास वर्ष 1949 के पूर्व उपासना का संचालन करते थे और उन्होंने विवादित ढांचे के भीतर मूर्तियां स्थापित किए जाने के पश्चात् भी तारीख 5 जनवरी, 1950 तक, जब रिसीवर ने विवादित ढांचे का प्रभार ग्रहण किया, मंदिर में उपासना जारी रखी थी । उन्होंने निवेदन किया कि वर्तमान प्रतिवादी स्वर्गीय बाबा अभिराम दास का चेला होने के नाते विवादित ढांचे में शिबायत के रूप में सेवा-पूजा और भोग के निर्वहन का हकदार है । उपरोक्त पक्षकथन के समर्थन में निम्नलिखित निवेदन किए गए :–

(i) तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 की मध्यरात्रि में विवादित ढांचे के भीतर भगवान राम की मूर्ति स्थापित कर दी गई थी । तीन गुंबदों वाले ढांचे के भीतर स्थापना के पश्चात् देवता (प्रतिष्ठित) और राम जन्मभूमि (स्वयं-भू) विधिक व्यक्ति हैं और उनको विवादित ढांचे पर अधिकार और स्वत्व प्राप्त है;

(ii) निर्मोही अखाड़े अपने अभिवचनों में विधिक अस्तित्वों की विद्यमानता से इनकार करने के पश्चात् उनके संबंध में शिबायत होने का दावा नहीं कर सकता । जब तारीख 22/23 दिसंबर की मध्यरात्रि में घटना घटित हुई, तो निर्मोही अखाड़े का कोई भी व्यक्ति वहां पर उपस्थित नहीं था और कार्यवाहियों में निर्मोही अखाड़े के किसी भी सदस्य को अभियुक्त व्यक्तियों के रूप में नामित नहीं किया गया था;

(iii) प्रत्यर्थी एक मात्र व्यक्ति है, जो रामलला मंदिर और जन्मभूमि के शिबायत होने का दावा कर सकता है । प्रत्यर्थियों के गुरु स्वर्गीय अभिराम दास ने तारीख 2 अक्तूबर, 1949 को विजयदशमी के अवसर पर आयोजित सार्वजनिक सभा में अनेक अन्य लोगों के साथ सामूहिक रूप से प्रण लिया था कि वे पवित्र जन्मस्थान की प्राचीन प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करेंगे, जिसके अनुसरण में विवादित स्थल के आसपास के क्षेत्र की सुरक्षा जांच की गई थी । उपरोक्त प्रण के अनुसरण में तीन गुंबदों वाले ढांचे

के भीतर और बाहर, दोनों स्थानों पर नवहाना पाठ, जप और संकीर्तन आयोजित किए गए थे;

(iv) जब तक शिबायत विद्यमान है, देवता का प्रबंधन वादमित्र या वाद संख्या 5 में राम जन्मभूमि को हस्तगत नहीं किया जा सकता । वाद संख्या 1 और वाद संख्या 5, दोनों व्यक्तिगत हैसियत में फाइल किए गए हैं और व्यक्तिगत हैसियत में वाद फाइल करने वालों को प्रबंधन या कब्जा हस्तगत नहीं किया जा सकता; और

(v) यह तथ्य कि स्वर्गीय बाबा अभिराम दास देवता के पुजारी/पुरोहित/शिबायत थे और यह तथ्य निम्नलिखित तथ्यों और अभिलेखों से साबित हो जाता है –

(क) वाद संख्या 4 में श्री भास्कर दास (प्रतिवादी साक्षी 3/1), जो निर्मोही अखाड़े के सरपंच थे, ने अपनी प्रतिपरीक्षा में अभिकथित किया है और इस बात की पुष्टि की है कि स्वर्गीय बाबा अभिराम दास विवादित ढांचे के पुजारी थे, न कि निर्मोही अखाड़े के पुजारी;

(ख) स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने तारीख 29 दिसंबर, 1950 को मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 145 के अधीन दिए गए अपने कथन में स्पष्ट रूप से अभिकथित किया था कि वे और उनके सहयोगी पुजारी वर्ष 1934 से जन्मभूमि मंदिर और आसपास की भूमि के रख-रखाव और प्रबंधन का कार्य देख रहे थे;

(ग) उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी ने अभिकथित किया कि उसके गुरु स्वर्गीय बाबा अभिराम दास की देख-रेख में विवादित परिसर में अनेक धार्मिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते थे और बिजली के कनेक्शन भी उन्हीं के नाम में थे;

(घ) मोहम्मद हाशिम, जो वाद संख्या 4 में वादी संख्या 7 है और वाद संख्या 5 में प्रतिवादी संख्या 3 है, ने अपनी प्रतिपरीक्षा में अभिकथित किया कि मस्जिद के भीतर मूर्तियां

अभिराम दास, धर्मदास और अन्य द्वारा स्थापित की गई थी;

(ङ) स्वर्गीय बाबा अभिराम दास को तारीख 23 दिसंबर, 1949 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और तारीख 1 फरवरी, 1950 के आरोप पत्र, दोनों में विवादित ढांचे के भीतर मूर्तियां स्थापित करने के लिए अभियुक्त के रूप में नामित किया गया है । स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने निवेदन किया कि उनको तारीख 1 फरवरी, 1950 के जमानत बंधपत्र में राम जन्मभूमि के पुजारी के रूप में उल्लिखित किया गया है;

(च) फैज़ाबाद के जिला मजिस्ट्रेट ने तारीख 23 दिसंबर, 1949 की अपनी रिपोर्ट में मताभिव्यक्ति की कि अभिराम दास, रामशुक्ल दास और सुदर्शन दास को सम्मिलित करते हुए दो या तीन व्यक्तियों को विवादित ढांचे के भीतर मूर्तियों को भोग अर्पित किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुज्ञा प्रदान किए जाने के द्वारा भीड़ को नियंत्रित किया गया था; और

(छ) स्वर्गीय बाबा अभिराम दास ने तारीख 21 दिसंबर, 1962 के आवेदन द्वारा बासठवें जयंती समारोह का कार्यक्रम आयोजित किए जाने के प्रयोजनार्थ रिसीवर के समक्ष अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए आवेदन किया था । यह अभिकथित किया गया है कि यह उक्त समारोह प्रत्येक वर्ष स्वर्गीय बाबा अभिराम दास और जन्मभूमि सेवा समिति द्वारा आयोजित किया जाता था ।

404. अन्य बातों के साथ-साथ निर्मोही अखाड़े और निर्वाणी अणि अखाड़े के मध्य विवाद विद्यमान विवाद की विषयवस्तु नहीं है । निर्वाणी अणि अखाड़े ने अपने दावे को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ अपनी तरफ से किसी भी कार्यवाही का अनुसरण नहीं किया है । यह दावा अस्वीकृत कर दिया गया है कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत था । निर्मोही अखाड़े के दावे पर चर्चा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि शिबायत के रूप में या वस्तुतः शिबायत के रूप में दावे को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ ऐसे साक्ष्य का अवलंब लिए जाने की

आवश्यकता होती है, जो किसी पुजारी के कार्यों का निर्वहन किए जाने मात्र के कार्य से कुछ अधिक को उपदर्शित करती हो । पुजारी शिबायत का मात्र सेवक या उसके द्वारा नियुक्त किया गया व्यक्ति होता है और उसके पास शिबायत के रूप में कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं होता, चाहे उसने लंबी अवधि तक अनुष्ठान संचालित किए हों । स्वर्गीय बाबा अभिराम दास के दावे के समर्थन में जिस समस्त साक्ष्य का अवलंब लिया गया, वह विवादित परिसर में पूजा का निर्वहन किए जाने तक सीमित है और उसके आधार पर कोई शिबायती अधिकार प्रदत्त नहीं होता ।

ढ.7 वाद संख्या 5 में परिसीमा

405. वाद संख्या 5 संस्थित कराए जाने से संबंधित वादकारण का अभिवचन वादपत्र के पैरा 14, 18, 30 और 36 में किया गया है, जो इस प्रकार है :–

> "14. वादी देवता और उनके श्रद्धालु उक्त वादों की सुनवाई और निस्तारण में लंबे विलंब और मंदिर के मामलों के बिगड़ते प्रबंधन से अत्यंत अप्रसन्न हैं, विशेष रूप से उस तरीके से जिसमें बड़ी संख्या में दर्शन के लिए आने वाले उपासकों द्वारा धन अर्पित किया जाता है और उसका पुजारियों और मंदिर के अन्य कर्मचारियों द्वारा दुर्विनियोजन किया जाता है और रिसीवर इस नुकसान को नियंत्रित कर पाने में असफल रहे हैं । पुनः, वादी देवताओं के श्रद्धालु अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमि के पुराने ढांचे को हटाए जाने के पश्चात् नए मंदिर के निर्माण, जो उनकी प्राचीन प्रतिष्ठा के अनुकूल हों, के लिए इच्छुक हैं ।
>
> ......
>
> 18. यद्यपि पूर्वोक्त वाद असामान्य रूप से लंबी अवधि से विचारार्थ लंबित हैं, फिर भी उन विवादों या उनसे उद्भूत होने वाली समस्याओं, जिनके कारण इन वादों को संस्थित कराया गया, का निपटारा नहीं किया जा सकता, चूंकि इन वादों में न तो भगवान श्रीराम विराजमान पीठासीन देवता और न ही स्थान श्रीराम जन्मभूमि, जो वादी संख्या 1 और 2 हैं और जो दोनों ही विधिक

व्यक्ति हैं, को पक्ष बनाया गया है, यद्यपि उनके श्रद्धालुओं और सेवकों से पृथक् उनका अपना स्वयं का सुभिन्न व्यक्तित्व है और इन वादों के वास्तविक पक्षों में से कुछ पक्ष ऐसे भी हैं, जो श्रद्धालु हैं और किसी सीमा तक अपने व्यक्तिगत हितों को संतुष्ट करने में अंतर्वलित हैं, जिनको वादी देवताओं की उपासना का नियंत्रण अभिप्राप्त किए जाने के द्वारा पूर्ण किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त वे घटनाएं, जो इन चार दशकों के दौरान घटित हुईं और अनेक तात्विक तथ्यों और विधिक बिंदुओं, जिनका अभिवचन वादी देवताओं के दृष्टिकोण से और अयोध्या की श्रीराम जन्मभूमि और भूमि और भवन और अन्य चीजें, जो उनके साथ संलग्न हैं, से संबंधित किसी विवाद का न्यायसंगत विनिर्धारण किया जाना अपेक्षित है । तदनुसार वादियों को सलाह दी जाती है कि वे अपने स्वयं के नए वाद फाइल करें ।

......

30. हिंदू जनता और वादी देवताओं के श्रद्धालुओं, जिन्होंने स्वतंत्र भारत में रामराज अर्थात् धर्म और नीतिपरायणता के राज, जिसके मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जी महाराज प्रतीक थे, स्थापित करने का स्वप्न देखा था और उस राष्ट्रीय आकांक्षा, जो हमको महात्मा गांधी द्वारा प्रदान की गई, के अनुक्रम में प्रथम चरण में उनके जन्मस्थान की प्राचीन प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित किए जाने की तीव्र इच्छा है । वे इस लक्ष्य को अभिप्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ नागर शैली में भव्य मंदिर के निर्माण के लिए सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन कर रहे हैं । वास्तुविदों के उसी परिवार, जिसने सोमनाथ मंदिर का निर्माण किया था, द्वारा प्रस्तावित मंदिर का मानचित्र और प्रतिमान पहले ही तैयार किए जा चुके हैं । तारीख 30 सितंबर, 1989 से सक्रिय आंदोलन आरंभ किए जाने और नए मंदिर भवन के शिलान्यास की योजना है, यह घोषणा की गई है कि यह शिलान्यास 9 नवंबर, 1989 को होगा ।

....

36. <u>इस वाद का वादकारण प्रतिदिन उद्भूत हो रहा है, विशेष</u>

रूप से तब से जब हाल ही में मंदिर निर्माण की योजना में कतिपय मुस्लिम सांप्रदायिकों की तरफ से हिंसक कार्रवाई द्वारा व्यवधान उत्पन्न किए जाने की आशंका व्यक्त की गई है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

वादकारण पैरा के उपरोक्त प्रकथनों में निम्नलिखित संगठक समाविष्ट हैं :–

(i) वाद संख्या 1, 3 और 4 की सुनवाई और निस्तारण में दीर्घकालिक विलंब;

(ii) मंदिर के मामलों के प्रबंधन की गुणवत्ता में गिरावट और रिसीवर द्वारा उसको नियंत्रित किए जाने में विफलता;

(iii) उपासकों द्वारा चढ़ाए गए चढ़ावे का पुजारियों और मंदिर के कर्मचारियों द्वारा दुर्विनियोजन किया जाना;

(iv) प्रथम और द्वितीय वादी, जिनके विधिक व्यक्ति होने का दावा किया गया है, को अन्य वादों में पक्ष न बनाया जाना;

(v) उपासक और सेवक और वादों के कुछ पक्ष देवताओं की उपासना के नियंत्रण की ईप्सा करते हुए अपने स्वयं के व्यक्तिगत हितों की पूर्ति की ईप्सा कर रहे हैं;

(vi) हिंदू उपासक नए मंदिर, जिसके लिए योजना तैयार की जा चुकी है, के निर्माण की मांग करते हुए विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं और

(vii) पुनर्निर्माण की योजना को 'कतिपय मुस्लिम सांप्रदायिकों द्वारा हिंसात्मक कार्रवाई द्वारा' अवरोधित किए जाने की आशंका है ।

406. वाद संख्या 5 'इस घोषणा की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया गया था कि अयोध्या स्थित श्रीराम जन्मभूमि का संपूर्ण परिसर, जिसको संलग्नक I, II और III में वर्णित और रेखांकित किया गया है, वादी देवताओं से संबंधित है' और साथ ही परिणामिक शाश्वत व्यादेश के अनुतोष की भी ईप्सा की गई है । संलग्नक I, II और III को वादपत्र के

पैरा 2 में वर्णित किया गया था, चूंकि 'भवन परिसर के दो स्थल मानचित्र और संलग्न क्षेत्र, जिसको श्रीराम जन्मभूमि के नाम से जाना जाता है, के स्थल मानचित्र, जिनको प्लीडर शिवशंकर लाल द्वारा ... अपनी तारीख 25 मई, 1950 की रिपोर्ट के साथ तैयार किया गया था' । **डा. एम. इस्माइल फारुकी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधानिक न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय के पश्चात् इस विवाद में अंतर्वलित भीतरी और बाहरी बरामदों में समाविष्ट क्षेत्र के चारों तरफ घेरा बना दिया गया था ।

वाद संख्या 5 तारीख 1 जुलाई, 1989 को संस्थित कराया गया था और इस तारीख को 1963 का परिसीमा अधिनियम प्रवृत्त था ।

निवेदन :

407. सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने परिसीमा के वर्जन के प्रश्न का उल्लेख करते हुए निम्नलिखित विनिश्चानुपातों का अवलंब लिया :–

(क) 1963 के परिसीमा अधिनियम की धारा 10 वर्तमान मामले में लागू नहीं होती, चूंकि यह उपबंध किसी ऐसे व्यक्ति या उसके विधिक प्रतिनिधियों या समनुदेशितियों (जो मूल्यवान प्रतिफलार्थ समनुदेशिती न हों) के विरुद्ध फाइल किए गए वाद में लागू होता है, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हो गई हो, तो उसको या उसके हस्तगत ऐसी संपत्ति या उन संपत्तियों के आगमों का पीछा किए जाने के प्रयोजनार्थ या उस संपत्ति या उसके आगमों के लेखा के लिए कोई वाद कितना भी समय व्यतीत हो जाने के कारण वर्जित नहीं होगा ।

(ख) वाद तब तक फाइल नहीं किया जा सकता था, जब तक कि देवता का अपने शिबायत – निर्मोही अखाड़ा – के माध्यम से 'सम्यक् रूप से प्रतिनिधित्व' नहीं हो जाता और शिबायत को किसी शिकायत जैसेकि दुराचरण के आधार पर उसके पद से हटाए जाने की ईप्सा नहीं की गई है;

---

[1] (1994) 6 एस. सी. सी. 360.

(ग) यह प्रतिरक्षा कि देवता शाश्वत रूप से अवयस्क हैं, वाद संख्या 5 के वादी को इस कारणवश कोई सहायता प्राप्त नहीं होगी कि देवता का प्रतिनिधित्व शिबायत द्वारा किया जा रहा था और उपासक द्वारा वादमित्र के रूप में वाद संस्थित तभी कराया जा सकता है, जब शिबायत को देवता के हित के प्रतिकूल कार्य करते हुए पाया जाता है । तथापि, वादमित्र द्वारा शिबायत के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाए गए हैं;

(घ) विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि शाश्वत रूप से अवयस्क के विरुद्ध परिसीमा के नियम लागू होते हैं; और

(ङ) वाद संख्या 5 पोषणीय नहीं है क्योंकि इस वाद को संस्थित कराए जाने के लिए कोई वादकारण उद्भूत नहीं हुआ । इसके अतिरिक्त चाहे परिसीमा अधिनियम का कोई भी उपबंध लागू होता हो, वाद संख्या 5 परिसीमा द्वारा बाधित होगा ।

डा. धवन ने तारीख 23 सितंबर, 2019 को अपने निवेदनों के अनुक्रम के दौरान परिसीमा के प्रश्न पर श्री पारासरन के निवेदनों का उत्तर दिया । ऐसा करते हुए डा. धवन ने इस आधार पर दलीलें दीं कि श्री पारासरन यह निवेदन करते हुए परिसीमा अधिनियम की धारा 10 का लाभ लेने का प्रयास कर रहे हैं कि वाद परिसीमा के भीतर फाइल किया गया था । बाद में तारीख 24 सितंबर, 2019 को इस न्यायालय की बार द्वारा अपनाई जाने वाली स्वस्थ परंपरा को ध्यान में रखते हुए डा. धवन ने स्पष्ट किया कि उनको श्री पारासरन द्वारा सूचित किया गया था कि वे धारा 10 का लाभ नहीं ले रहे थे और उन्होंने न्यायालय के समक्ष इस उपबंध का लाभ लेने की ईप्सा करते हुए कोई निवेदन नहीं किया । अतः, डा. धवन ने दलील दी कि धारा 10 के अंतर्गत किए गए निवेदनों को उनके द्वारा किए गए निवेदनों के रूप में पढ़ा जाए ।

408. श्री पारासरन ने दलील दी कि प्रतिवादी सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से उपस्थित डा. धवन की दलीलें इस तथ्य पर आधारित हैं कि वादी विधिक व्यक्ति नहीं हैं और निर्मोही अखाड़े के महंत प्रथम और द्वितीय वादियों, दोनों के लिए विधिमान्य शिबायत हैं । जहां तक परिसीमा के विवाद्यक का प्रश्न है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की तीन

न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने एकमत से वादियों के पक्ष में अभिनिर्धारित किया (सिवाय न्यायमूर्ति एस. यू. खान के जिन्होंने इस प्रश्न का विनिर्धारण नहीं किया कि द्वितीय वादी विधिक व्यक्ति है) । इसलिए श्री पारासरन ने दलील दी कि परिसीमा का विवाद्यक इस न्यायालय द्वारा वाद संख्या 5 के विवाद्यक संख्या 1, 6 और 8* पर निकाले गए निष्कर्षों पर निर्भर होगा और उस स्थिति में इन विवाद्यकों को वाद संख्या 5 के वादियों के पक्ष में अभिनिर्धारित किया जाता है और तद्नुसार इस वाद के प्रतिवादियों की प्रतिरक्षा परिसीमा द्वारा बाधित होने के परिणामस्वरूप विफल होती है ।

409. आरंभिकत:, यह अभिलिखित किया जाना आवश्यक है कि वर्तमान निर्णय पारित किए जाने के अनुक्रम के दौरान यह अभिनिर्धारित किया गया है कि :–

(i) निर्मोही अखाड़ा शिबायत होने के अपने पक्षकथन को साबित कर पाने में विफल रहा है;

(ii) इस आधार पर कि केवल निर्मोही अखाड़ा ही शिबायत था, जो वाद संस्थित करा सकता था, वाद संख्या 5 की पोषणीयता को चुनौती दिए जाने के परिणामस्वरूप वाद विफल होने योग्य है;

(iii) वाद संख्या 5 में प्रथम वादी विधिक व्यक्ति हैं ।

अत: अब ऊपरवर्णित प्रथम और द्वितीय आधारों का यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि निर्मोही अखाड़ा शिबायत था और इसलिए वाद संख्या 5 को वादमित्र द्वारा फाइल किए जाने के आधार पर पोषणीय अभिनिर्धारित किया जाता है ।

तत्पश्चात्, इस प्रक्रम पर जो विवाद्यक हमारे द्वारा विचारार्थ उद्भूत होता है, यह है कि क्या वाद संख्या 5 इस आधार पर परिसीमा के भीतर अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि देवता शाश्वत रूप से

---

* विवाद्यक संख्या 1 – यह प्रथम और द्वितीय वादी विधिक व्यक्ति हैं ?

विवाद्यक संख्या 6 – क्या तृतीय वादी वादमित्र के रूप में वादी संख्या 1 और 2 के प्रतिनिधित्व का हकदार नहीं है और क्या वाद इस आधार पर सफल होने योग्य नहीं है ?

विवाद्यक संख्या 8 – क्या प्रतिवादी निर्मोही अखाड़ा विवादित ढांचे में स्थापित भगवान श्रीराम का 'शिबायत' है ।

अवयस्क हैं । वाद संख्या 5 में वादी की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री सी. एस. वैद्यनाथन के इस निवेदन को दोहराया जाना पुनः आवश्यक है, जो अकेले प्रथम वादी, जिसको विधिक व्यक्ति अभिनिर्धारित किया गया है, पर लागू होगा ।

प्रशांति का कानून

410. परिसीमा की विधि ऐसे कानून में सन्निहित होती है, जो विश्राम या शांति (repose or peace) के सिद्धांत पर आधारित होती है, जैसाकि **पुंडरीक जालान पाटिल** बनाम **एक्जीक्यूटिव इंजीनियर, जलगांव मीडियम प्रोजेक्ट**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है :-

> "परिसीमा की असीमित और शाश्वत खतरा असुरक्षा और अनिश्चितता का सृजन करता है; लोक व्यवस्था के लिए कतिपय प्रकार की परिसीमा आवश्यक होती है ..."

परिसीमा अधिनियम के उपबंधों की प्रयोज्यता (लागू होना) को समानता और प्रभाव द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता । शाश्वत्ता में दावे का अधिकार विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में सन्निहित होता है, जिसको धारा 10 में निर्दिष्ट किया गया है और इस उपबंध की परिधि को प्रभाव के रूप में विस्तारित नहीं किया जा सकता । 1929 के पूर्व धारा 10 निम्नलिखित शब्दों में उपबंधित थी :-

> "10. न्यासियों तथा उनके प्रतिनिधियों के विरुद्ध वाद – इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हुई हो अथवा उसके विधिक प्रतिनिधियों या समनुदेशितियों के विरुद्ध (जो मूल्यवान प्रतिफलार्थ समनुदेशिती न हो) उसके या उनके हस्तगत ऐसी संपत्ति या उसके आगमों का पीछा करने के प्रयोजन से या उस संपत्ति या उसके आगमों के लेखा के लिए कोई वाद कितना भी समय बीत जाने के कारण वर्जित न होगा ।"

---

[1] (2008) 17 एस. सी. सी. 448.

धारा 10 को 1929 के भारतीय परिसीमा (संशोधन) अधिनियम (1929 का 1) द्वारा एक स्पष्टीकरण प्रस्तावित किए जाने के द्वारा संशोधित किया गया था । संशोधन के पश्चात् का उपबंध इस प्रकार है :–

> "10. अभिव्यक्त न्यासियों तथा उनके प्रतिनिधियों के विरुद्ध वाद – इसमें इसके पूर्व किसी बात के होते हुए भी किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हुई हो अथवा उसके विधिक प्रतिनिधियों या समनुदेशितियों के विरुद्ध (जो मूल्यवान प्रतिफलार्थ समनुदेशिती न हो) उसके या उनके हस्तगत ऐसी संपत्ति या उसके आगमों का पीछा करने के प्रयोजन से या उस संपत्ति या उसके आगमों के लेखा के लिए कोई वाद कितना भी समय बीत जाने के कारण वर्जित न होगा ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए किसी हिंदू, मुसलमान या बौद्ध धार्मिक या खैराती विन्यास में समाविष्ट कोई भी संपत्ति एक विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास – निहित समझी जाएगी और संपत्ति का प्रबंधक उसका न्यासी समझा जाएगा ।"

411. इस संशोधन की पृष्ठभूमि को **विद्या वारुथी तीर्थ** बनाम **बालूसामी अय्यर**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय पर विचार किए जाने के द्वारा समझा जा सकता है । संपत्ति के अन्यसंक्रामण पर विचार करने वाले इस विनिश्चय के व्यापक परिणाम हुए, जिनके कारण 1929 में अनेक कानूनों में परिवर्तन किए गए । प्रिवी कौंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "हिंदुओं और मुसलमानों की पवित्र संस्थाओं से संबंधित सामान्य विधि के उपरोक्त पुनर्विलोकन से प्रथमदृष्ट्या यह साबित हो जाता है कि <u>किसी प्रबंधक या वरिष्ठजन, चाहे उसको किसी भी नाम से पुकारा जाए, द्वारा किए गए किसी भी अन्यसंक्रामण को 'न्यासी', जिसको संपत्ति 'न्यास निहित' की गई है और जिसमें उस न्यास निहित संपत्ति को दृष्टि में रखते हुए वह हैसियत निहित है,</u>

[1] ए. आई. आर. 1922 प्रिवी कौंसिल 123.

जो इंग्लिश विधि में 'न्यासी' को प्राप्त होती है, का कार्य नहीं माना जा सकता । निश्चित रूप से कोई हिंदू या मुस्लिम किसी विनिर्दिष्ट संपत्ति को किसी विनिर्दिष्ट और निश्चित प्रयोजन के लिए 'न्यास निहित' कर सकता है और वह व्यक्ति, जिसको विधिक स्वामित्व अंतरित किया गया है, पद 'न्यास निहित' के विनिर्दिष्ट भाव में न्यासी बन जाने पर स्वयं को अभिव्यक्ततः इंग्लिश विधि के अध्यधीन कर सकता है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

उपरोक्त निर्णय में प्रबंधक द्वारा अन्यसंक्रामण को किसी न्यासी, जिसको संपत्ति न्यास में अन्यसंक्रामित की गई हो, द्वारा उसी भाव में, जिसमें इस अभिव्यक्ति (न्यास निहित) को इंग्लिश विधि में प्रयोग किया गया था, गठित किया गया कार्य अभिनिर्धारित नहीं किया गया था । 1929 के संशोधन के परिणामस्वरूप एक अभिगृहीत कल्पना को सृजित किया गया, जिसके आधार पर हिंदू, मुस्लिम या बौद्ध धार्मिक या धर्मार्थ बंदोबस्तियों में समाविष्ट संपत्तियों को ऐसी संपत्ति माना गया, जो विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए न्यास में निहित होती है ।

धारा 10 निम्नलिखित के विरुद्ध फाइल किए गए वादों में लागू होती है :–

(i) कोई व्यक्ति, जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हो गई है; और

(ii) ऐसे किसी न्यासी (जिसमें संपत्ति किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन के लिए न्यास निहित हो गई है), के विधिक प्रतिनिधि और समनुदेशिती ।

तथापि, यह उपबंध (धारा 10) किसी न्यासी के समनुदेशिती को मूल्यवान प्रतिफल के प्रयोजनार्थ आच्छादित नहीं करता । यह वाद निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है :–

(i) संपत्ति के न्यासी के कब्जे में आ जाने पर;

(ii) संपत्ति के न्यासी के कब्जे में आने पर उस संपत्ति के आगमों के भी न्यासी के कब्जे में आ जाने पर; और

(iii) ऐसी संपत्ति या उसके आगमों के खाते (हिसाब-किताब के विवरण) के बाबत ।

महत्वपूर्ण रूप से धारा 10 के आरंभिक शब्दों में 'द्वारा या विरुद्ध' शब्दों में अनुपस्थित हैं । अन्य शब्दों में यह धारा तृतीय पक्षों के विरुद्ध न्यासी द्वारा फाइल किए गए वादों पर लागू नहीं होती । (इस संदर्भ में **पालानियंदी ग्रामीणी मणिकम्मल** बनाम **मुरुगप्पा ग्रामीणी**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय को देखें) वाद संख्या 5 पर धारा 10 लागू नहीं होती ।

शाश्वत अल्पवयस्कता की दलील

412. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री सी. एस. वैद्यनाथन ने दलील दी कि विधिक संकल्पना के आधार पर मूर्ति अवयस्क है । इसलिए, किसी अवयस्क के विरुद्ध प्रतिकूल स्वत्व अर्जित नहीं किया जा सकता । विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल डा. राजीव धवन ने निवेदन किया कि यद्यपि देवता को बिना किसी मानवीय अभिकरण की सहायता के उनके द्वारा वाद फाइल किए जाने में असमर्थता के कारण अवयस्क माना जाता है, फिर भी देवता परिसीमा के प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए अवयस्क नहीं हैं । उन्होंने निवेदन किया कि **विश्वनाथ** बनाम **श्री ठाकुर राधा वल्लभजी**[2] वाले मामले में दिया गया आदेश कि अवयस्क शाश्वत रूप से अवयस्क हैं, परिसीमा के संदर्भ में पारित किया गया आदेश नहीं था ।

413. **विश्वनाथ** बनाम **श्री ठाकुर राधा वल्लभजी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय को इस प्रश्न को निर्णीत करना था कि क्या कोई उपासक मूर्ति की तरफ से बेदखली के लिए वाद फाइल कर सकता है, यदि शिबायत मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य कर रहा है । मुख्य न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ की तरफ से न्याय पारित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

"10. प्रश्न यह उद्भूत होता है कि जब शिबायत मूर्ति के हितों के प्रतिकूल कार्य कर रहा हो और उसके हितों की रक्षा के लिए कार्रवाई करने में विफल हो गया हो, तो क्या कोई व्यक्ति मूर्ति का

[1] ए. आई. आर. 1935 मद्रास 483.

[2] [1967] 2 एस. सी. आर. 618.

प्रतिनिधित्व कर सकता है । सिद्धांतत:, हम उपासक के ऐसे किसी अधिकार से इनकार किए जाने का कोई न्यायोचित्य नहीं पाते । मूर्ति अवयस्क की स्थिति में होती है, जब उसका प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति उसको संकट में छोड़ देता है और तब मूर्ति की उपासना में हितबद्ध व्यक्ति को निश्चित रूप से उसके हितों के संरक्षण के लिए प्रतिनिधित्व की तदर्थ शक्ति प्रदान की जानी चाहिए । यह व्यावहारिक भी है और कठिन स्थिति का विधिक हल भी । क्या यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई शिबायत, जिसने संपत्ति अंतरित की, को ही उस संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करना चाहिए, अधिकांश मामलों में यह शिबायत के अपने कर्तव्यों के त्याग का अप्रत्यक्ष रूप से अनुमोदन होगा, चूंकि अधिकांश मामलों में वह अपनी चूक को स्वीकार नहीं करेगा और अन्य अनेक तकनीकी अभिवाकों का आश्रय, जो किसी वाद में संपत्ति के लेने की स्वतंत्रता अंतरिती की होती है, को लेने के अलावा संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए कार्रवाई करेगा । क्या यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि कोई उपासक शिबायत को उसके पद से हटाए जाने और किसी अन्य शिबायत की नियुक्ति के लिए वाद फाइल कर सकता है, ताकि संपत्ति की पुनर्प्राप्ति की कार्रवाई के लिए उसको समर्थ बनाया जा सके । इस प्रकार की प्रक्रिया दीर्घकालिक और जटिल होगी और इससे मूर्ति के हित की अपूर्णनीय क्षति होगी । यही कारण है कि ऐसी परिस्थितियों में विनिश्चयों द्वारा उपासक को मूर्ति का प्रतिनिधित्व करने और मूर्ति की तरफ से संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए कार्रवाई करने की अनुज्ञा प्रदान की गई है । अनेक विनिश्चयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि उपासक बंदोबस्ती की तरफ से किसी संपत्ति के कब्जे के लिए प्रार्थना करते हुए वाद फाइल कर सकते हैं ।...”

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

414. उस मामले में देवता श्री ठाकुर राधा बल्लभजी, जिनका प्रतिनिधित्व वादमित्र द्वारा किया गया, द्वारा अचल संपत्ति के कब्जे और अंत: कालीन लाभ (Mesne profits) के प्रयोजनार्थ वाद संस्थित कराया गया था । वादी का पक्षकथन यह था कि द्वितीय प्रतिवादी, जो

सर्वराकार और प्रबंधक था, ने संपत्ति का अन्यसंक्रामण (विक्रय) प्रथम प्रतिवादी के पक्ष में कर दिया था और उसके द्वारा किया गया विक्रय किसी अत्यावश्यकता के कारणवश या मूर्ति के लाभार्थ नहीं था और यह अन्यसंक्रामण देवता पर बाध्यकारी नहीं था । विचारण न्यायालय और अपील न्यायालय अर्थात् उच्च न्यायालय, दोनों ने अभिनिर्धारित किया कि विक्रय देवता के लाभार्थ नहीं था और विक्रय के फलस्वरूप प्राप्त किया गया प्रतिफल भी अपर्याप्त था । किंतु साथ ही यह दलील दी गई थी कि कब्जे के लिए फाइल किया गया वाद केवल शिबायत द्वारा फाइल किया जा सकता था और देवता का प्रतिनिधित्व कोई अन्य नहीं कर सकता था । इस न्यायालय ने इस संदर्भ में अभिनिर्धारित किया कि सिद्धांतत: ऐसा कोई कारण नहीं था, जिसके लिए उपासक को अन्यसंक्रामण को चुनौती देते हुए वाद फाइल करने से मना किया जाए जब शिबायत ने देवता के हित के प्रतिकूल कार्य किया हो । यह मताभिव्यक्ति परिसीमा अधिनियम के उपबंधों के संदर्भ में नहीं की गई थी कि मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है । यह मताभिव्यक्ति इस प्रश्न को निर्णीत किए जाने के संदर्भ में की गई थी कि क्या किसी उपासक द्वारा फाइल किया गया वाद पोषणीय था, जब प्रबंधक ने देवता के हित के प्रतिकूल संपत्ति पर विचार किया । इस आदेश का अर्थान्वयन इस अर्थ में नहीं किया जा सकता कि मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है और उसको 1963 के परिसीमा अधिनियम के लागू होने से छूट प्राप्त है ।

415. बी. के. मुखर्जी द्वारा लिखित '**द हिंदू ला आफ रिलीजियस एंड चेरिटेबल ट्रस्ट**' [पांचवां संस्करण ईस्टर्न ला हाऊस (1983) पृष्ठ 256-57] नामक पुस्तक में विधिक स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया है :–

> "हिंदू देवता की मूर्ति को कतिपय अवसरों पर शाश्वत शिशु कहा जाता है, किंतु यह समानता न केवल गलत है बल्कि निश्चित रूप से गुमराह करने वाली भी है । हिंदू विधि के नियमों में ऐसा कोई भी सिद्धांत अनपेक्षित नहीं है, जैसीकि मताभिव्यक्ति मुख्य न्यायमूर्ति रैंकिन द्वारा की गई है । सुरेन्द्र **बनाम** श्री श्री भुवनेश्वरी वाले मामले में इस असाधारण सिद्धांत का अवलंब लिया गया, जो ऐसे मामलों में न्यायिक समिति द्वारा दिए गए

विनिश्चय के विपरीत है जैसे कि दामोदर दास **बनाम** लखन दास वाला मामला । यह सत्य है कि देवता भी शिशु की भांति विधिक निर्योग्यता से ग्रसित होते हैं और वे किसी अभिकर्ता के माध्यम से कार्य करते हैं और देवता के शिबायत और शिशु के संरक्षक की शक्तियों के मध्य भी समानता होती है किंतु ऐसे मामलों में वास्तव में समानता का अंत हो जाता है । जहां तक परिसीमा अधिनियम के प्रयोजनों का संबंध है मूर्ति किसी विशेषाधिकार का लाभ नहीं लेती और जहां तक संविदात्मक अधिकारों का संबंध है ऐसे मामलों में भी मूर्ति की स्थिति वही होती जो किसी अन्य नैसर्गिक व्यक्ति की होती है । अवयस्कों या अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तियों द्वारा फाइल किए वादों के संबंध में सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध कम से कम मूर्ति पर लागू नहीं होते; और इस संकल्पना के आधार पर प्रक्रियात्मक विधि निर्मित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि मूर्ति शिशु हैं, प्रकटत: अवांछित और विषम परिणाम उत्पन्न होंगे (अशीम कुमार **बनाम** नरेन्द्र नाथ, 76 सी. डब्ल्यू. एन. 1016) ।”

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

इस मामले में एक दूरदर्शी न्यायाधीश के दूरदर्शितापूर्ण शब्द हैं । विगत अनेक वर्षों में न्यायालयों ने अवयस्क के रूप में मूर्ति की विधिक प्रकृति और इस विधिक संकल्पना के परिणामों की व्याख्या की है ।

416. वर्ष 1903-04 में प्रिवी कौंसिल ने **महाराजा जगदीन्द्र नाथ राय बहादुर** बनाम **रानी हिमंता कुमारी देवी**[1] वाले मामले में एक ऐसी परिस्थिति पर विचार किया, जिसमें वादी ने मूर्ति के शिबायत की हैसियत में कतिपय संपत्तियों के सांपत्तिक अधिकारों के लिए वाद संस्थित किए थे । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मूर्ति विधिक व्यक्ति होने के नाते संपत्ति धारित करने के समर्थ थी और उसके विरुद्ध संपत्ति की अंतरण की तारीख से परिसीमा आरंभ हो चुकी थी और इसलिए शिबायत द्वारा फाइल किया गया वाद परिसीमा द्वारा बाधित था ।

---

[1] (1903-04) 31 आई. ए. 203.

प्रिवी कौंसिल ने उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के साथ सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि मूर्ति विधिक व्यक्ति होने के नाते संपत्ति धारित करने के लिए सक्षम थी । तथापि, ऐसे मामलों में परिसीमा की बचत हो जाती है, क्योंकि जब वादकारण उद्भूत हुआ तब वह शिबायत अवयस्क था, जिससे समर्पित संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन संबंधित था । अत:, प्रिवी कौंसिल ने अभिनिर्धारित किया कि संपत्ति के संरक्षण के लिए वाद संस्थित करने का अधिकार मूर्ति में निहित था और यह वाद शिबायत द्वारा वयस्कता प्राप्त किए जाने की तारीख से तीन वर्ष के भीतर संस्थित कराया जा सकता था । सर आर्थर विल्सन ने मताभिव्यक्ति की :–

> "किंतु यह उपधारणा करते हुए कि संपत्ति के धार्मिक समर्पण के कठोर प्रकृति का होने के कारण समर्पित संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन शिबायत से संबंधित रहता है । इस अधिकार के साथ शिबायत को वे वाद फाइल करने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है, जो संपत्ति के संरक्षण के लिए आवश्यक है । वाद फाइल करने का ऐसा प्रत्येक अधिकार शिबायत में निहित होता है, न कि मूर्ति में । वर्तमान मामले में वादी को वाद फाइल करने का अधिकार तब उद्भूत हुआ जब वह वयस्कता की आयु से कम उम्र का था । इसलिए यह मामला परिसीमा अधिनियम की धारा 7 की स्पष्ट भाषा के अंतर्गत आता है, जो यह कहती है कि 'जहां कि वाद संस्थित करने या डिक्री के निष्पादन के लिए आवेदन करने के लिए संयुक्तत: हकदार व्यक्तियों में से कोई एक ऐसी किसी निर्योग्यता के अधीन हो और उस व्यक्ति की सहमति के बिना उन्मोचन दिया जा सकता हो, तो वहां उन सब के विरुद्ध समय का चलना आरंभ हो जाएगा, किंतु जहां कि ऐसा उन्मोचन न दिया जा सकता हो, वहां से किसी के भी विरुद्ध तब तक समय का चलना आरंभ न होगा जब तक उनमें से कोई एक अन्यों की सहमति के बिना ऐसा उन्मोचन देने के लिए समर्थ न हो जाए या उस निर्योग्यता का अंत हो जाए', तो वह उस समय-सीमा के भीतर आयु प्राप्त करने के पश्चात् वाद संस्थित करा सकता है, जो वर्तमान मामले में तीन वर्ष होगी ।"

यह अभिनिर्धारित किए जाने का आधार कि वाद परिसीमा के भीतर था, यह नहीं था कि मूर्ति परिसीमा की विधि के अध्यधीन नहीं थी, बल्कि यह था कि शिबायत वादकारण उद्भूत होने की तारीख पर अवयस्क था ।

417. वर्ष 1909-10 में प्रिवी कौंसिल द्वारा **महंत दामोदर दास** बनाम **अधिकारी लखन दास**[1] वाले मामले में एक निर्णय पारित किया गया था, जो मठ के महंत की मृत्यु के पश्चात् वरिष्ठ चेला और कनिष्ठ चेला के मध्य मठ के उत्तराधिकार के विवाद से संबंधित था । यह विवाद तारीख 3 नवंबर, 1874 के इकरारनामा द्वारा स्थिरीकृत हो गया था । इस इकरारनामा के अंतर्गत भद्रक स्थित मठ वरिष्ठ चेला और उसके उत्तराधिकारियों को शाश्वत रूप से आबंटित कर दिया गया था, जबकि बीबीसराय स्थित मठ और उसके साथ संलग्न संपत्तियों को कनिष्ठ चेला को 'अधिकारी' की हैसियत में भद्रक मठ के खर्चों के बाबत 15 रुपए के वार्षिक संदाय पर आबंटित किया गया था । वरिष्ठ चेला की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी द्वारा बीबीसराय स्थित मठ के कब्जे के लिए वाद संस्थित कराया गया । यह दलील दी गई कि संपत्ति उपासना और वादी की मूर्तियों की सेवा के लिए समर्पित थी और यह संपत्ति अधिकारी की हैसियत में कनिष्ठ चेला के कब्जे में थी । प्रत्यर्थी ने प्रतिरक्षा में यह दावा करते हुए परिसीमा के व्यतीत हो जाने का अभिवाक् किया कि वाद संस्थित कराए जाने के पूर्व न तो वादी और न ही उसके पूर्वाधिकारी 12 वर्षों की अवधि के भीतर कभी भी विवादित संपत्ति के कब्जे में रहे । विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं था, किंतु उच्च न्यायालय ने इस आधार पर डिक्री को पलट दिया कि प्रत्यर्थी ने विवादित मठ पर 12 वर्ष से अधिक अवधि तक प्रतिकूल रूप से कब्जा रखा है । प्रिवी कौंसिल ने वरिष्ठ चेला के अभिवाक् को यह अभिनिर्धारित करते हुए अस्वीकृत कर दिया कि वादकारण वरिष्ठ चेला की मृत्यु पर उद्भूत हुआ था और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि कर दी कि वाद वरिष्ठ चेला की मृत्यु के 12 वर्षों के भीतर किंतु इकरारनामा के पश्चात् 27 वर्षों के

---

[1] (1909-10) 37 आई. ए. 147.

भीतर संस्थित कराए जाने के कारण परिसीमा द्वारा बाधित था । सर आर्थर विल्सन ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "उच्च न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीशों ने न्यायत: अभिनिर्धारित किया है कि विधि की दृष्टि में संपत्ति, जिसका संव्यवहार इकरारनामा, जिसके निष्पादन की तारीख रजिस्ट्रीकरण की तारीख के पूर्व की थी, द्वारा किया गया था और इस संपत्ति के बारे में यह मान लिया गया था कि यह संपत्ति महंत में निहित नहीं है बल्कि एक पृथक् विधिक अस्तित्व में निहित है, जो मूर्ति है और महंत मात्र उसका प्रतिनिधि या प्रबंधक है । इससे यह अर्थ निकलता है कि विद्वान् न्यायाधीश यह अभिनिर्धारित करने में न्यायसंगत थे कि इकरारनामा की तारीख से उसके निबंधनों को ध्यान में रखते हुए कनिष्ठ चेला का कब्जा मूर्ति के अधिकार के प्रतिकूल था और वरिष्ठ चेला, जो मूर्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा था, के अनुकूल था और इसलिए वर्तमान वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

यद्यपि उपरोक्त मताभिव्यक्तियों द्वारा इस प्रश्न पर विनिर्दिष्ट रूप से विचार नहीं किया गया कि क्या किसी मूर्ति को शाश्वत रूप से अवयस्क माना जा सकता है, फिर भी प्रिवी कौंसिल ने स्पष्ट शब्दों में अभिनिर्धारित किया कि मूर्ति के अधिकार के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् का आश्रय लिया जा सकता है और इसलिए वाद परिसीमा द्वारा बाधित है ।

418. **छतरमल** बनाम **पंचूमल**[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस बात पर विचार किया कि क्या मूर्ति शाश्वत रूप से अवयस्क होने के कारण निर्योग्यता का सामना करती है और इसलिए मूर्ति द्वारा अंतरण की तारीख के पश्चात् कितने भी विलंब से फाइल किया गया वाद परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के अधीन परिसीमा के वर्जन से सुरक्षित होगा । यह दलील निम्नलिखित मताभिव्यक्ति, जिसे शास्त्री द्वारा लिखित 'हिंदू विधि' के पांचवें

---

[1] ए. आई. आर. 1926 इलाहाबाद 392.

संस्करण (अध्याय 14, संस्करण 5, पृष्ठ 726) में व्यक्त किया गया, पर आधारित है :–

> "जहां तक परिसीमा का प्रश्न है, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 7 किसी ऐसे वाद पर लागू होती है, जिसमें हिंदू ईश्वर से संबंधित संपत्ति को किसी शिबायत द्वारा अनुचित रूप से किए गए अन्यसंक्रामण को अपास्त किया जा सकता है । चूंकि ईश्वर अपनी संपत्ति के प्रबंधन में असमर्थ होते हैं, इसलिए उनको परिसीमा के प्रयोजनार्थ शाश्वत रूप से अवयस्क माना जाना चाहिए ।"

तथापि, खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया :–

> "...ससम्मान यह स्पष्ट किया जाता है कि किसी अवयस्क द्वारा किए गए अंतरण में उचित या अनुचित अन्यसंक्रामण का प्रश्न उद्भूत नहीं होगा । संविदा विधि के अंतर्गत किसी अवयस्क द्वारा किया गया अंतरण न केवल शून्यकरणीय बल्कि शून्य होता है – मोहोरी बीबी **बनाम** धर्मोदास घोष, (1902) आई. एल. आर. 30 कलकत्ता 539) यदि इस नियम को प्रवर्तित किया जाता, तो मंदिर, जहां मूर्ति स्थापित है, के लाभार्थ ईश्वर की संपत्ति अंतरित किए जाने की आवश्यकता उत्पन्न होने पर इस संपत्ति का कोई मूल्य प्राप्त न होता ... अत: हम स्पष्ट प्राधिकार के साथ वादी की इस दलील को स्वीकार करने से इनकार करते हैं ।"

इस विचार को स्वीकार करते हुए उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **महाराजा जगदीन्द्र नाथ** (उपरोक्त) और **दामोदर दास** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया ।

419. शाश्वत रूप से अवयस्कता की संकल्पना को मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **रमा रेड्डी** बनाम **रंगादसान**[1] वाले मामले में स्वीकार किया था । इस मामले में वादी ने उसके एक पूर्वज को वादग्रस्त मंदिर के प्रबंधक की हैसियत में प्रदान की गई संपत्ति के कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए इस मंदिर के वर्तमान पुजारी और न्यासी

---

[1] ए. आई. आर. 1926 मद्रास 769.

होने के नाते वर्ष 1918 में एक वाद संस्थित कराया था । विवादित संपत्ति प्रतिवादी संख्या 1 और 2 (वादी के पिता और चाचा) द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 को वर्ष 1893 में विक्रय कर दी गई थी । वादी की दलील यह थी कि यह संपत्ति उनके परिवार को पुजारी के रूप में सेवाएं प्रदान करने के लिए सेवा के बदले ईनाम के रूप में प्रदान की गई थी और इस संपत्ति का अन्यसंक्रामण अवैध है । जिला मुंसिफ ने वाद को परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण खारिज कर दिया और अपील में अधीनस्थ न्यायाधीश ने जिला मुंसिफ द्वारा पारित निर्णय को पलट दिया और वाद को प्रतिप्रेक्षित कर दिया । जिला मुंसिफ ने वाद को पुनः खारिज कर दिया और अपील में जिला न्यायाधीश ने डिक्री की पुष्टि कर दी । निचली अपीली न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वादी वादग्रस्त संपत्ति का पुजारी और न्यासी था और अभिनिर्धारित किया कि वादग्रस्त संपत्ति मंदिर के साथ संलग्न थी । वादी ने द्वितीय अपील फाइल की, जिसको एकल न्यायाधीश द्वारा सुना गया और जिसने अभिनिर्धारित किया कि वाद परिसीमा द्वारा बाधित नहीं है । खंड न्यायपीठ को विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई लेटर्स पेटेंट अपील में यह अभिनिर्धारित करना था कि क्या वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 134 या 144 द्वारा बाधित है ।

420. उच्च न्यायालय ने **विद्या वारुथी तीर्थ** बनाम **बालूसामी अय्यर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में यह उल्लेख किया है कि यदि प्रिवी कौंसिल ने यह अभिनिर्धारित कर दिया कि मठ की संपत्ति का स्थाई पट्टा प्रदान करने वाले के जीवनकाल के परे उस संपत्ति में कोई हित सृजित नहीं कर सकता और परिणामस्वरूप अनुच्छेद 134 संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए प्रदानकर्ता के उत्तराधिकारी द्वारा फाइल किए गए वाद में लागू नहीं होगी । उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कोई न्यासी किसी अंतरिती को विधिमान्य स्वत्व अंतरित नहीं कर सकता, इसलिए अनुच्छेद 134 लागू होगी । उच्च न्यायालय ने उल्लेख किया कि प्रतिकूल कब्जे का सिद्धांत ऐसे मामलों में लागू होगा, जिनमें कोई व्यक्ति, जिसे अपने स्वत्व का दृढ़तापूर्वक दावा करना चाहिए, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के

अधीन अनुध्यात अवधि के भीतर ऐसा नहीं करता । न्यायमूर्ति देवदास ने मूर्ति के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया :–

> "विधिक संकल्पना यह है कि मूर्ति सदैव अवयस्क रहती है और उसको शाश्वत संरक्षण के अंतर्गत रहना होता और ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि मूर्ति भी कभी वयस्कता प्राप्त कर सकती है और कोई व्यक्ति, जो किसी मंदिर के न्यासी से स्वत्व अर्जित करता है, मूर्ति के हित के प्रतिकूल कोई स्वत्व अर्जित नहीं कर सकता, क्योंकि मूर्ति सदैव अवयस्क है और उत्तराधिकारी न्यासी किसी भी समयबिंदु पर मूर्ति की तरफ से उसकी संपत्ति की पुनर्प्राप्ति कर सकता है ।"

उच्च न्यायालय ने विनिर्धारित किया कि प्रबंधक मूर्ति की संपत्ति के स्वत्व के प्रतिकूल स्वत्व स्थापित नहीं कर सकता । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रबंधक अपने किसी कार्य के परिणामस्वरूप किसी ऐसे व्यक्ति को अनुज्ञा नहीं प्रदान कर सकता, जो उससे प्रतिकूल स्वत्व के दावे के प्रयोजनार्थ स्वत्व प्राप्त करता है ।

कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **सुरेन्द्र कृष्ण राय** बनाम **श्री श्री ईश्वर भुवनेश्वरी ठकुरानी**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया कि जब किसी मूर्ति को समर्पित संपत्ति पर प्रतिकूल रूप से कब्जा कर लिया जाता है और कब्जा करने वाले व्यक्ति का मूर्ति के साथ कोई वैश्वासिक संबंध नहीं होता, तो परिसीमा की गणना आरंभ हो जाएगी और परिसीमा अधिनियम की धारा 144 द्वारा शासित होगी । शाश्वत अवयस्कता के विवाद्यक पर मुख्य न्यायमूर्ति रैंकिन ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "21. <u>यह सिद्धांत कि मूर्ति शाश्वत रूप से अवयस्क है, मेरे निर्णय में असाधारण सिद्धांत है, जो ऐसे मामलों में जैसेकि दामोदर दास **बनाम** लखन दास वाले मामले [(1910) 37 कलकत्ता 885 = 37 आई. ए. 5147 = 7 आई. सी. 240 (प्रिवी कौंसिल)] में न्यायिक समिति के विनिश्चय के विपरीत है</u> । बंदोबस्ती में हितबद्ध शिबायतों या किसी अन्य व्यक्ति को यह अधिकार है कि

[1] ए. आई. आर. 1933 कलकत्ता 295.

वे प्रथम बार समर्पित संपत्तियों के प्रयोजनार्थ मूर्ति की संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करें ..."

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

प्रिवी कौंसिल द्वारा उच्च न्यायालय के विनिश्चय की पुष्टि **श्री श्री ईश्वरी भुवनेश्वरी ठकुरानी** बनाम **ब्रोजोनाथ डे**[1] वाले मामले में की गई ।

421. प्रिवी कौंसिल ने **द मॉस्क, मस्जिद शहीद गंज** बनाम **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर**[2] वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या मस्जिद को विधिक व्यक्ति माना जा सकता है और उसको प्रतिकूल कब्जे के अध्यधीन रखा जा सकता है । सर जॉर्ज रैंकिन ने यह मताभिव्यक्ति की :–

"यह माननीय न्यायाधीशों के लिए कौतुहल का मामला है कि मुस्लिमों के लिए प्रार्थना स्थल के रूप में समर्पित किसी भवन और हिंदू धर्म के व्यक्तिगत देवताओं की विधिक स्थिति के मध्य अनुमानित सादृश्य होना चाहिए । यह प्रश्न प्रक्रिया का प्रश्न है कि क्या ब्रिटिश भारत के न्यायालय किसी मस्जिद को न्यायिक दृष्टि में सुने जाने के अधिकार प्राप्त व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान करेंगे । ब्रिटिश भारत में न्यायालय प्रक्रिया के मामलों में मोहम्मडन विधि का अनुसरण नहीं करते । [जाफरी बेगम **बनाम** अमीर मोहम्मद खान, आई. एल. आर. 7 इलाहाबाद 822 पृष्ठ 841, 842 (1885)] न्यायमूर्ति महमूद के अनुसार ब्रिटिश भारत में न्यायालय साक्ष्य के प्राचीन मोहम्मडन नियमों को मोहम्मडन दांडिक विधि में लागू करते हैं । तत्समय प्रवृत्त हिंदू या मोहम्मडन विधि लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालयों की प्रक्रिया उन विधियों के अनुसार यथोचित होनी चाहिए, जिनको वे लागू करते हैं । अत: भारत में हिंदू धर्म के अनेकेश्वरवाद और अन्य लक्षणों के बाबत प्रक्रिया अनिवार्य रूप से लागू होती है, जो हिंदू विधि के कतिपय सिद्धांतों को उनके अनिवार्य अंगों के रूप में मान्यता प्रदान करती है । जैसेकि किसी मूर्ति को संपत्ति के स्वामी के रूप

---

[1] (1936-37) 64 आई. ए. 203.

[2] ए. आई. आर. 1940 प्रिवी कौंसिल 116.

में मान्यता । हमारे न्यायालयों की प्रक्रिया मूर्ति या देवता के नाम में वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करती है, यद्यपि, वास्तव में वाद फाइल करने का अधिकार शिबायत में निहित होता है जगदीन्द्रनाथ **बनाम** हिम्मता कुमार, [एल. आर. 31 आई. ए. 203 = एस. सी. 8 सी. डब्ल्यू. एन. 609 (1605)] । इन सिद्धांतों का आश्रय अत्यंत विचार किए जाने योग्य कठिनाइयों की स्थिति में लिया जाता है, विशेष रूप से जहां तक देवता और देवता की छवि के मध्य भेद, यदि कोई हो, का संबंध है भूपतिनाथ **बनाम** रामलाल, (1 एल. आर. 37 कलकत्ता 128, 153 = एस. सी. 14 सी. डब्ल्यू. एन. 18, 1910), गोलपचंद्र सरकार शास्त्री द्वारा लिखित 'हिंदू विधि' सातवां संस्करण, पृष्ठ 865 । किंतु इस बाबत कभी कोई संदेह नहीं रहा है कि किसी ठाकुरबाडी को सम्मिलित करते हुए हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती की संपत्ति परिसीमा विधि के अध्यधीन होती है दामोदर दास **बनाम** लखन दास (एल. आर. 37 आई. ए. 147 = एस. सी. 14 सी. डब्ल्यू. एन. 889, 1810) और श्री श्री ईश्वरी भुनेश्वरी ठकुरानी **बनाम** ब्रोजोनाथ डे (एल. आर. 64 आई. ए. 203 = एस. सी. 41 सी. डब्ल्यू. एन. 968, 1937) विशेष रूप से हिंदू विधि से संबंधित इस विचार विमर्श से काल्पनिक व्यक्तियों को आमंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई सामान्य अनुज्ञप्ति अभिप्राप्त नहीं की जा सकती ...।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया :–

"अब सिखों के कब्जे वाली जो संपत्ति विवादित है, वह वक्फ़ के कब्जे के प्रतिकूल सिखों के कब्जे में है और इस संपत्ति पर सिखों का 12 वर्षों से अधिक अवधि से कब्जा है और वक्फ़ के प्रयोजनार्थ कब्जे के बाबत मुतवल्ली के अधिकार परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के अधीन समाप्त हो चुके हैं और व्यवस्थापक या वक्फ़ से समर्पण के अंतर्गत अभिप्राप्त स्वत्व धारा 28 के अधीन विलुप्त हो गया है । अब यह संपत्ति ब्रिटिश भारतीय न्यायालयों के किसी भी प्रयोजन के लिए ईश्वर की संपत्ति नहीं रही है, जिसके परिणामस्वरूप इसका लाभ इसके व्यवस्थापकों को मिला ...।"

तरित भूषण राय बनाम **श्री श्री ईश्वर श्रीधर शालीग्राम शिला ठाकुर**[1] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय में न्यायमूर्ति नसीम अली ने हिंदू विधि में किसी अवयस्क और मूर्ति की स्थिति के मध्य समानताओं और विभेद के बिंदुओं का उल्लेख किया :–

> "किसी अवयस्क और हिंदू मूर्ति के मध्य समानता के बिंदु हैं – (1) दोनों में संपत्ति का स्वामित्व धारण करने की क्षमता होती है, (2) दोनों अपनी-अपनी संपत्तियों के प्रबंधन और हितों के संरक्षण के लिए सक्षम होते हैं, (3) दोनों की संपत्तियां अन्य मनुष्यों द्वारा प्रबंधित और संरक्षित की जाती हैं । किसी अवयस्क का प्रबंधक उसका विधिक संरक्षक होता है जबकि किसी मूर्ति का प्रबंधक उसका शिबायत होता है, (4) उनके प्रबंधकों की शक्तियां समान होती हैं, (5) दोनों को वाद फाइल करने के अधिकार प्राप्त होते हैं, (6) सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 9, नियम 9 और धारा 11 का वर्जन दोनों पर लागू होता है ।
>
> दोनों के मध्य विभेद के बिंदु हैं – (1) <u>हिंदू मूर्ति विधिक या कृत्रिम व्यक्ति होती है, किंतु अवयस्क नैसर्गिक व्यक्ति होता है</u>, (2) हिंदू मूर्ति अपने स्वयं के हित और साथ ही उपासकों के हितों के लिए विद्यमान होती है किंतु अवयस्क किसी अन्य के हितों के लिए विद्यमान नहीं होता, (3) संविदा अधिनियम (जो सारभूत विधि है) ने अवयस्क की संविदा करने की विधिक हैसियत समाप्त कर दी है किंतु इस अधिनियम या किसी अन्य कानून द्वारा हिंदू मूर्ति की संविदा करने की विधिक हैसियत प्रभावित नहीं हुई है, (4) <u>परिसीमा अधिनियम (जोकि विशेषण कानून है) ने अवयस्क को परिसीमा के वर्जन के क्रियान्वयन से मुक्त कर दिया है किंतु यह संरक्षण हिंदू देवता को विस्तारित नहीं किया गया है</u> ।
>
> उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि अवयस्क और हिंदू मूर्ति के मध्य कुछ सादृश्य है, किंतु हिंदू मूर्ति न तो अवयस्क होती है और न ही शाश्वत रूप से अवयस्क होती है ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

[1] ए. आई. आर. 1942 कलकत्ता 99.

उड़ीसा उच्च न्यायालय के समक्ष **राधाकृष्ण दास** बनाम **राधारमण स्वामी**[1] वाले मामले में देवता के वादमित्र द्वारा वादी देवता को उनके प्रतिष्ठापन के मूल स्थान पर पुनर्स्थापन के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ डिक्री की ईप्सा करते हुए वाद संस्थित कराया गया था । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित करते हुए कि किसी मूर्ति को परिसीमा के प्रयोजनार्थ शाश्वत रूप से अवयस्क नहीं माना जा सकता और वादी की इस दलील को अस्वीकृत कर दिया कि देवता को उनके मंदिर में स्थापित किए जाने के अधिकार देवता द्वारा स्वयमेव कुछ भी कर पाने में असमर्थ होने के कारण सतत प्रकृति के अधिकार हैं । खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया :–

> "... मूर्ति निःसंदेह रूप से शिशु की स्थिति में नहीं होती, चूंकि वह केवल शिबायत या प्रबंधक के माध्यम से कार्य कर सकती है । किंतु हमारे समक्ष कोई भी निर्णयज विधि इस प्रतिपादना के समर्थन में उद्धृत नहीं की गई है कि उसको (मूर्ति को) शाश्वत रूप से शिशु माना जाना चाहिए ताकि उसके द्वारा या उसके विरुद्ध कोई भी संव्यवहार परिसीमा द्वारा शासित न हो सके ।
>
> यह सिद्धांत असाधारण सिद्धांत है कि मूर्ति शाश्वत रूप से अवयस्क होती है, चूंकि केवल शिबायत को या बंदोबस्ती में किसी व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह प्रथम बार संपत्ति के समर्पण के प्रयोजनार्थ मूर्ति की संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करे । इसलिए, मूर्ति भी परिसीमा विधि के उतनी ही अध्यधीन है, जितना कोई नैसर्गिक व्यक्ति और वह इस आधार पर छूट प्राप्ति की दावा नहीं कर सकती कि वह शाश्वत रूप से शिशु है । साथ ही किसी हिंदू देवता को भी समस्त प्रयोजनों के लिए अवयस्क नहीं माना जा सकता । इसलिए मूर्ति परिसीमा विधि से छूट प्राप्ति का दावा नहीं कर सकती ।"

अवयस्क के रूप में देवता की विधिक संकल्पना देवता की अक्षमता के निवारण के प्रयोजनार्थ विकसित की गई है । ताकि वे स्वयं विधिक कार्यवाही संस्थित करा सके । मनुष्य के रूप में किसी अभिकर्ता को

---

[1] ए. आई. आर. 1949 उड़ीसा 1.

देवता की तरफ से विधिक कार्यवाहियां संस्थित करानी चाहिए ताकि वे अक्षमता से प्रभावित न हो । तथापि, यह संकल्पना देवता को परिसीमा विधि के उपयोजन से छूट प्राप्ति के प्रयोजनार्थ विस्तारित नहीं की गई है ।

422. वर्तमान मामले में यह साबित हो गया है कि देवता की तरफ से कोई वस्तुतः या विधिक शिबायत कार्यरत नहीं था । इसलिए शिबायत में निहित 'वाद फाइल करने का अधिकार' और प्रथम बार समर्पित संपत्ति के प्रतिकूल कब्जे के संबंध में परिसीमा अधिनियम लागू किए जाने के बाबत शिबायत की अनुपस्थिति के परिणाम के संबंध में इस न्यायालय के निर्णयों को निर्दिष्ट किया जाना उचित होगा । **राय साहेब डा. गुरुदीत्तमल कापुर** बनाम **महंत अमर दास चेला महंत रामशरण**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसी स्थिति पर विचार किया, जिसमें प्रथम प्रत्यर्थी, जो अमृतसर स्थित सुलतानविंद गेट के निरबंसर अखाड़ा का नवनियुक्त महंत था, द्वारा 1957 में वाद फाइल किया गया था । द्वितीय प्रत्यर्थी को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के अधीन कार्यवाहियों में महंत के पद से हटा दिया गया था और तत्पश्चात् प्रथम प्रत्यर्थी को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया गया था । यह अभिकथित किया गया कि द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा संपत्ति का अन्यसंक्रामण अनधिकृत था, चूंकि संपत्ति का अंतरण विधिक आवश्यकतावश या संपदा के लाभार्थ नहीं था । इसके अतिरिक्त यह दलील भी दी गई कि यह तथ्य कि अपीलार्थी 12 वर्ष से अधिक की अवधि से भूमि के कब्जे में था, से कोई फर्क नहीं पड़ता और चूंकि भूमि न्यास संपत्ति थी, इसलिए इसकी पुनर्प्राप्ति के लिए वाद उस संपत्ति के प्रबंधक की मृत्यु, पदत्याग या पद से हटाए जाने की तारीख से 12 वर्ष की अवधि के भीतर फाइल किया जा सकता था । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किए जाने योग्य था, चूंकि अपीलार्थी 12 वर्ष से अधिक की अवधि से प्रतिकूल कब्जे में था । न्यायालय की तरफ से निर्णय पारित करते हुए न्यायमूर्ति मुधोलकर ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 144 के प्रयोजनार्थ प्रतिकूल

[1] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1966.

कब्जे की संगणना विक्रय के परिणामस्वरूप अपीलार्थी के 'प्रभावी कब्जे' की तारीख से की जानी चाहिए :–

> "12. ... इस विषय पर विधि मुखर्जी द्वारा लिखित 'हिंदू ला आफ रिलीजियस एंड चेरिटेबल ट्रस्ट' के द्वितीय संस्करण के पृष्ठ संख्या 274 और 275 पर अत्यधिक स्पष्ट शब्दों में अभिकथित है । उपरोक्त विधिक स्थिति में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रथम बार समर्पित संपत्ति के निष्पादन विक्रय के मामले में मठ के पदधारी की मृत्यु की तारीख नहीं बल्कि विक्रय के परिणामस्वरूप प्रभावी कब्जे की तारीख, जिससे क्रेता के प्रतिकूल कब्जे की संगणना परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के प्रयोजनों के लिए की जानी है ... अत: यदि प्रत्यर्थी संख्या 2 के बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने दो पूर्ववर्ती वादों में अखाड़ा का प्रतिनिधित्व किया, उन मामलों में पारित डिक्रियां प्रत्यर्थी संख्या 1 पर उसी प्रकार से बाध्यकारी होंगी जैसेकि वह प्रत्यर्थी संख्या 2 के पद का उत्तराधिकारी हो । इसके विपरीत यदि प्रत्यर्थी संख्या 2 अखाड़ा का प्रतिनिधित्व नहीं करता, तो इन वादों में पारित डिक्रियों के अंतर्गत अपीलार्थी का कब्जा प्रिवी कौंसिल के दो विनिश्चयों, जिनको अभी-अभी निर्दिष्ट किया गया, के आधार पर अखाड़ा के कब्जे के प्रतिकूल होगा । इसलिए प्रथम प्रत्यर्थी का वाद अपीलार्थी द्वारा प्रतिकूल कब्जे के 12 वर्ष पूर्ण कर लिए जाने के पश्चात् परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए । इन कारणोंवश हम निचले न्यायालयों से असहमत हैं और तद्नुसार प्रत्यर्थी संख्या 1 का वाद समस्त न्यायालयों में लागत सहित खारिज करते हैं ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

423. **सारंगदेव पेरिया मातम** बनाम **रामास्वामी गाउंडर (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधिगण**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में मठाधिपति ने विवादित संपत्ति के एक भाग का शाश्वत पट्टा वादियों के दादा को वार्षिक किराए के संदाय के आधार पर

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1603.

प्रदान किया था । प्रत्यर्थी वर्ष 1883 से, जब पट्टा प्रदान किया गया था, जनवरी, 1950 तक संपत्ति के अबाधित कब्जे में थे । वर्ष 1915 में मठाधिपति की मृत्यु हो गई और उनका कोई उत्तराधिकारी नहीं था और वादियों ने किसी भी किराए का संदाय नहीं किया । वर्ष 1915 और 1939 के मध्य मठाधिपति का पद रिक्त था और मठ के प्रबंधन में 20 वर्षों की अवधि तक कुछ लोग बने रहे । वर्ष 1939 में मठाधिपति चुना गया, तत्पश्चात् मदुरै के कलक्टर ने इनाम भूमियों का कब्जा वापस लिए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित किया और भूमि के पूर्ण निर्धारण और मठ को निर्धारण के संदाय और उसके रखरखाव के लिए निर्देशित किया । पट्टे के पुनरारंभ के पश्चात् वादी और भूमि के कब्जे में अन्य लोगों के नाम में एक संयुक्त पट्टा जारी किया गया । प्रत्यर्थी जनवरी, 1950 तक, जब मठ ने कब्जा अभिप्राप्त किया, वादग्रस्त भूमि के कब्जे में बने रहे । तारीख 18 फरवरी, 1954 को प्रत्यर्थियों ने मठ के विरुद्ध वादग्रस्त भूमि की पुनर्प्राप्ति का दावा करते हुए वाद संस्थित कराया, जिसमें मठ का प्रतिनिधित्व उसके तत्कालीन मठाधिपति और मठ के अभिकर्ता द्वारा किया गया । विचारण न्यायालय ने वाद को डिक्री कर दिया । अपील में जिला न्यायाधीश ने डिक्री को अपास्त कर दिया और वाद को खारिज कर दिया । द्वितीय अपील में मद्रास उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय की डिक्री को पुनर्स्थापित कर दिया । प्रत्यर्थी ने यह दलील दी कि उसने प्रतिकूल कब्जे और उसके पक्ष में इनाम के पुनरारंभ पर रइय्यतवाड़ी पट्टा जारी किए जाने के द्वारा भूमि का स्वत्व अर्जित कर लिया था । अपीलार्थी ने दलील दी कि मठ की संपत्तियों की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करने का अधिकार विधित: नियुक्त मठाधिपति में निहित होता है और उसके विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे की गणना तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि उसकी नियुक्ति नहीं हो जाती । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उल्लेख किया कि किसी मूर्ति की भांति मठ भी विधिक व्यक्ति होता है, जिसको किसी मानवीय अभिकरण के माध्यम से कार्य करना चाहिए और उनके विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा पोषणीय है :–

> "हम प्रत्यर्थियों की दलील को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हैं । 1908 के भारतीय परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 144 के

अधीन किसी मठ से संबंधित अचल संपत्तियों के कब्जे के लिए उसका प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा वाद फाइल किए जाने के लिए परिसीमा की गणना उस समय से आरंभ हो जाती है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के कब्जे के प्रतिकूल हो जाता है । मठ बंदोबस्ती वाली संपत्ति का स्वामी होता है । किसी मूर्ति की भांति मठ विधिक व्यक्ति होता है, जिसको संपत्तियों को अर्जित करने, उनका स्वामित्व और कब्जा प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है और जो वाद फाइल कर सकते हैं और जिनके विरुद्ध वाद फाइल किया जा सकता है । उनके द्वारा आदर्श व्यक्तित्व धारण किए जाने की संकल्पना के कारण मानवीय अभिकरण के माध्यम से उनके सामयिक मामलों के संबंध में यह आवश्यक कार्य होना चाहिए ...वे भोगाधिकार के प्रयोजनार्थ संपत्ति अर्जित कर सकते हैं और इसी प्रकार से प्रतिकूल कब्जे द्वारा संपत्ति से वंचित भी हो सकते हैं । यदि मठ संपत्ति के कब्जे में है और उसको कब्जे से बेदखल कर दिया जाता है या उसकी संपत्ति के संबंध में किसी अपरिचित का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है, तो वे क्षति का सामना करते हैं और उनको संपत्ति की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करने का अधिकार होता है । यदि किसी मठाधिपति को विधित: नियुक्त किया जाता है, तो वह उस मठ की तरफ से वाद संस्थित करा सकता है; यदि वह ऐसा नहीं करता, तो विधित: मठाधिपति ऐसा कर सकता है, [देखें महादेव प्रसाद सिंह **बनाम** कोरिया भारती (1934) एल. आर. 62 आई. ए. 47, 50] और जहां आवश्यक हो, मठ का कोई शिष्य या अन्य लाभार्थी किसी रिसीवर, जिसको उसकी तरफ से वाद फाइल करने का प्राधिकार प्राप्त है, की नियुक्ति द्वारा अपने विधिक अधिकारों को सही ठहराने के लिए कार्रवाई कर सकता है । मठ या उसमें हितबद्ध लोग सम्यक् तत्परता के साथ समय की गणना का अनदेखा कर सकते हैं । अनुच्छेद 144 के अधीन मठ के विरुद्ध परिसीमा की गणना विधित: नियुक्त मठाधिपति की अनुपस्थिति द्वारा स्थगित नहीं होती; स्पष्टत:, उसके विरुद्ध परिसीमा की गणना ऐसे मामलों में होगी, जिनमें उसका प्रबंधन वस्तुत: मठाधिपति द्वारा किया जाता

> है । विठ्ठलबोआ **बनाम** नारायण दाजी थिटे [(1893) आई. एल. आर. 18 बाम्बे 507-511] वाला मामला देखें और हम समझते हैं कि यदि न तो विधित: और न ही वस्तुत: मठाधिपति की नियुक्ति हुई है तो परिसीमा की गणना समान रूप से की जाएगी ।"
>
> (अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

न्यायमूर्ति आर. एस. बचावत ने अभिनिर्धारित किया कि जब संपत्ति का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है, तो मठ के विरुद्ध परिसीमा की गणना विधित: या वस्तुत: मठाधिपति की अनुपस्थिति में भी होगी । इस न्यायालय ने **महाराजा जगदीन्द्र नाथ** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चय का उल्लेख करते हुए इस सिद्धांत का विस्तार करने से इनकार कर दिया कि 'कब्जे के लिए वाद फाइल करने का अधिकार' को ऐसी संपत्ति के 'सांपत्तिक' अधिकार से पृथक् किया जाना चाहिए, जिसको मूर्ति में निहित कर दिया गया है :–

> "8. प्रिवी कौंसिल ने शिबायत को 1877 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 7 का लाभ देते हुए इस स्थिति पर विचार किया कि कब्जे की पुनर्प्राप्ति के लिए वाद फाइल करने के अधिकार को उस संपत्ति, जो मूर्ति में निहित है, के सांपत्तिक अधिकार से पृथक् किया जाना चाहिए । हम **जगदीन्द्र नाथ राय** (आई. एल. आर. 32 कलकत्ता 129, 141) वाले मामले में व्यक्त किए गए विचार की शुद्धता के पक्ष में या उसके विरुद्ध कोई विचार व्यक्त नहीं करते । इस मामले के प्रयोजनार्थ यह कहा जाना पर्याप्त है कि हम उस मामले के सिद्धांत को विस्तारित करने के लिए इच्छुक नहीं हैं । उस मामले में परिसीमा की अवधि के आरंभ के समय शिबायत विद्यमान था, जिसको मूर्ति की तरफ से वाद फाइल करने का अधिकार था और उसने वाद संस्थित कराने के पश्चात् सफलतापूर्वक यह दावा किया कि उस समय, जिससे परिसीमा की अवधि की गणना की जाती है, वाद संस्थित कराने के लिए हकदार व्यक्ति को 1877 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 7 का लाभ प्राप्त होना चाहिए । वर्तमान मामले में वर्ष 1915 में, जब परिसीमा की गणना आरंभ हुई, कोई

मठाधिपति विद्यमान नहीं था । साथ ही किसी मठाधिपति, जिसको वर्ष 1915 में वाद संस्थित कराने या 1908 के भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के अधीन आवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार था, की अवयस्कता का कोई प्रश्न अंतर्वलित नहीं है ।"

424. न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने इस पहलू पर विचार करते हुए कि क्या देवता को शाश्वत रूप से अवयस्क माना जा सकता है, अभिनिर्धारित किया कि किसी देवता की मूर्ति परिसीमा के प्रयोजनार्थ शाश्वत रूप से अवयस्क नहीं होती और प्रथम बार समर्पित संपत्ति प्रतिकूल कब्जे द्वारा गंवाई जा सकती है । विद्वान् न्यायाधीश का यह विचार था कि **विश्वनाथ** बनाम **श्री ठाकुर राधावल्लभ जी** (उपरोक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्ति कि क्या कोई मूर्ति अवयस्क की स्थिति में है, इस प्रश्न पर विचार परिसीमा के प्रयोजनार्थ नहीं होगा । इसके विपरीत विद्वान् न्यायाधीश के विचार में **डा. गुरुदीत्तमल कापुर** (उपरोक्त) और **सारंगादेवी पेरिया मातम** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए विनिश्चय तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठों द्वारा पारित किए गए विनिश्चय थे (**विश्वनाथ** वाला मामला दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा निर्णीत विनिश्चय था) । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा पारित दोनों ही विनिश्चयों से इस विचार को समर्थन प्राप्त होता है कि परिसीमा की विधि लागू होगी । इसके अतिरिक्त प्रिवी कौंसिल द्वारा **मस्जिद शहीदगंज** बनाम **शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में उल्लेख किया गया कि इस बाबत कभी भी कोई संदेह नहीं था कि किसी हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती की संपत्ति परिसीमा विधि के अध्यधीन होती है ।

इसके विपरीत न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल का विचार था कि यद्यपि वाद, जैसाकि फाइल किया गया, व्यापक क्षेत्र से संबंधित था और विवाद का क्षेत्र [**इस्माइल फारुकी** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय का अनुसरण करते हुए] भीतरी और बाहरी बरामदों तक सीमित था । न्यायमूर्ति अग्रवाल के विचार में यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है, जिसका हिंदू प्राचीनकाल से दर्शन करते रहे हैं और देवता 'स्थान के स्वरूप में हैं', होने के नाते 'कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता और न ही इस स्थान का कभी विनाश हो सकता है' ।

इसलिए यदि देवता न्यायालय से घोषणा की ईप्सा करते हैं, तो परिसीमा का अभिवाक् लागू नहीं होगा और इसलिए परिसीमा अधिनियम की धारा 6 या धारा 7 का आश्रय लिए जाने का कोई कारण नहीं था ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने **विश्वनाथ** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि देवता परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजनार्थ अवयस्क हैं और किसी अवयस्क या देवता को उपलब्ध लाभ को विस्तारित किए जाने के कारण संपूर्ण संसार के साथ अन्याय होगा ।

425. न्यायमूर्ति एस. यू. खान द्वारा शाश्वत रूप से अवयस्कता वाले बिंदु पर प्रयोज्य विधि के परिणामस्वरूप उत्पन्न विधिक स्थिति का विश्लेषण सराहनीय है । उन निर्णयज विधियों, जिनका ऊपर विश्लेषण किया गया है, का अवलंब लेते हुए, यह स्थिति स्थिरीकृत है कि देवता शाश्वत रूप से अवयस्क होने के आधार पर परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से छूट प्राप्त नहीं हो सकते । इस विवाद्यक पर श्री सी. एस. वैद्यनाथन द्वारा दी गई दलील लगभग एक शताब्दी से प्रचलित न्यायशास्त्र के विपरीत है । हम प्रिवी कौंसिल, इस न्यायालय और अनेक उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयज विधियों, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, का अनुसरण करते हैं । परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से शाश्वत रूप से अवयस्क के सिद्धांत के आधार पर इनकार नहीं किया जा सकता ।

वे कारण, जिनका उल्लेख पहले ही ऊपर किया जा चुका है और वे कारण जिनका न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल और न्यायमूर्ति डी वी. शर्मा द्वारा मूल्यांकन परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता का अर्थान्वयन करते हुए किया गया, दोषपूर्ण हैं । **विश्वनाथ** (उपरोक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय में परिसीमा अधिनियम की प्रयोज्यता के विवाद्यक पर विचार नहीं किया गया और यह मताभिव्यक्ति कि देवता अवयस्क हैं, को परिसीमा विधि की प्रयोज्यता से छूट के सृजन के आशय द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता । इस प्रकार का विस्तार उन संगत निर्णयज विधियों के विपरीत होगा, जो प्रिवी कौंसिल के विनिश्चयों और साथ ही इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा पारित विनिश्चयों से उद्भूत हुए हैं । न्यायमूर्ति डी. पी. शर्मा ने परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के उपबंधों को इस

बाबत पढ़ा है कि वे सिद्धांत, जो अवयस्क पर लागू होते हैं, देवता पर भी लागू होते हैं । इस प्रकार का विस्तार आशय या निर्वचन द्वारा नहीं किया जा सकता ।

वाद संख्या 5 में परिसीमा

426. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों में से प्रत्येक ने वाद संख्या 5 में यह अभिनिर्धारित करते हुए अपने-अपने कारण अभिलिखित किए कि वाद परिसीमा के भीतर था । न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने समेकित विश्लेषण करते हुए परिसीमा के प्रश्न पर विचार किया और पांच कारण अभिलिखित किए, जिनमें से पहले और पांचवें कारण के बाबत यह अभिनिर्धारित किया गया कि वे वाद संख्या 5 पर लागू होते हैं । विद्वान् न्यायाधीश के अनुसार :–

(i) मजिस्ट्रेट ने धारा 145 के अधीन कार्यवाही को अनिश्चितकाल तक लंबित रखे जाने के द्वारा अपनी अधिकारिता के परे जाकर कार्य किया । परिणामस्वरूप, धारा 145 के अधीन कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया । ऐसा न करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिसीमा का वर्जन उद्भूत नहीं होगा; और

(ii) न्यायालय से प्रत्येक स्थिति में समस्त विवाद्यकों पर आदेश 14 के अधीन निष्कर्ष अभिलिखित किया जाना अपेक्षित था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिलिखित किया कि वाद संख्या 5 में परिसीमा का अभिवाक् निम्नलिखित तथ्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए :–

(i) विवादित स्थान के बाबत हिंदुओं को यह विश्वास है कि यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है और इस स्थान की उपासना सदियों से इसी रूप में की जाती रही है;

(ii) मस्जिद की प्रकृति में गैर-हिंदू ढांचा टिफीनथेलर (1766-71) के दौरे के पूर्व मुस्लिम शासक की आज्ञा पर निर्मित किया गया था;

(iii) हिंदुओं ने उपरोक्त निर्माण के बावजूद अपनी आस्था के अनुसार कि यह स्थान भगवान राम का जन्मस्थान है, इस स्थान के दर्शन और उपासना करना जारी रखा;

(iv) यद्‌यपि भवन के ढांचे को मस्जिद माना जाता था, फिर भी इससे हिंदुओं के विश्वास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा;

(v) अविभाजित मस्जिद परिसर के भीतर वेदी के आकार की एक गैर इस्लामिक संरचना थी, जिसका उल्लेख टिफीनथेलर द्‌वारा अपनी पुस्तक में किया गया है;

(vi) समय व्यतीत होने के साथ-साथ सीता रसोई, राम चबूतरा और भंडार को सम्मिलित करते हुए अन्य हिंदू संरचनाएं भी निर्मित होती गई;

(vii) इन संरचनाओं का उल्लेख 1858, 1873, 1885, 1949 और 1950 में किया गया और ये संरचनाएं तारीख 6 दिसंबर, 1992 को संपूर्ण ढांचे के ध्वंस के समय तक विद्‌यमान थी;

(viii) यद्‌यपि संपूर्ण विवादित ढांचे को मस्जिद कहा जाता था, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने विवादित स्थान को दो भागों, जिनके भीतर प्रत्येक समुदाय पृथक् रूप से नमाज अदा कर सके और उपासना कर सके, विभाजित किए जाने के द्‌वारा दोनों समुदायों के परस्पर विरोधी दावों को मान्यता प्रदान कर दी थी;

(ix) इस विभाजन के बावजूद हिंदुओं के पास न केवल बाहरी बरामदे का कब्जा रहा, बल्कि उन्होंने निरंतर शिकायतों और हटाए जाने के आदेशों, जिनकी पुष्टि 1858 से 1865 के मध्य के अभिलेखों से होती है, के बावजूद भीतरी बरामदे में भी प्रवेश करना जारी रखा;

(x) ब्रिटिश सरकार ने विवादित ढांचे को मस्जिद प्रतीत करते हुए दो मुस्लिमों को ननकार ग्रांट प्रदान की, जिसके मतावलंबन में मुस्लिमों ने यह दावा किया कि उन्होंने भवन के रखरखाव पर आए खर्चों का संदाय किया है;

(xi) तारीख 22/23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं द्‌वारा भगवान राम की मूर्तियां भीतरी बरामदे में रख दी गई थीं;

(xii) तारीख 29 दिसंबर, 1949 को भीतरी बरामदे को धारा 145 के अधीन कुर्क कर दिया गया था, जिसके बावजूद मजिस्ट्रेट

ने यह सुनिश्चित किया था कि केंद्रीय गुंबद के नीचे स्थापित मूर्तियों की उपासना जारी रहे, जिसके पश्चात् सिविल न्यायालय ने तारीख 16 जनवरी, 1950 को व्यादेश का आदेश पारित किया, जिसको तारीख 19 जनवरी, 1950 को स्पष्ट किया गया, तारीख 3 मार्च, 1951 को पुष्टि की गई और तारीख 26 अप्रैल, 1955 को अंतिमता प्राप्त हुई ।

(xiii) तारीख 23 दिसंबर, 1949 को हिंदुओं द्वारा उपासना जारी थी जबकि इसके विपरीत किसी भी मुस्लिम ने नमाज अदा करने के लिए परिसर में प्रवेश नहीं किया;

(xiv) तारीख 29 दिसंबर, 1949 से हिंदुओं द्वारा विभाजित करने वाली दीवार पर स्थापित लोहे के जाली वाले द्वार से उपासना जारी थी और केवल पुजारियों को उपासना के लिए परिसर के भीतर प्रवेश की अनुज्ञा थी; और

(xv) जिला न्यायाधीश ने तारीख 1 फरवरी, 1986 के आदेश द्वारा और भीतरी बरामदे में मूर्तियों की उपासना के लिए हिंदुओं को प्रवेश की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ तालों को हटाए जाने और दरवाजों को खोले जाने के लिए निर्देशित किया ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने उपरोक्त तथ्यों के आधार पर अभिनिर्धारित किया कि देवताओं का पूजन निरंतर जारी था और ऐसी कोई भी कार्रवाई या अकर्मण्यता दर्शित नहीं की गई थी, जिसके संबंध में वादी परिसीमा की विशिष्ट अवधि का पालन करते हुए वाद प्रस्तुत करने के अधिकार का दावा कर सकते । विद्वान् न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि पूर्ववर्ती कुछ सौ वर्षों में एकमात्र कार्रवाई, जो वादियों के हित को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते हुए की गई विवादित ढांचे का निर्माण था । इसके बावजूद विवादित स्थान को हिंदुओं द्वारा उपासना के प्रयोजनार्थ प्रयोग किया जाता रहा । इसके विपरीत ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं है कि किसी मुस्लिम ने निर्माण की तारीख से वर्ष 1856-57 तक नमाज अदा की हो । उपरोक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए ऐसी कोई भी कार्रवाई नहीं की गई, जिससे हिंदू किसी विशिष्ट तारीख पर व्यथित होते, जिसके कारण परिसीमा के प्रयोजनों से वाद

फाइल करने का अधिकार उद्भूत होता । परिणामस्वरूप न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि वाद संख्या 5 को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने अभिनिर्धारित किया कि देवता परिसीमा अधिनियम की धारा 6 के प्रयोजनों के लिए अवयस्क हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर था ।

427. अत: अब यह आवश्यक हो जाता है कि इस मूलभूत विवाद्यक को संबोधित किया जाए कि वाद संख्या 5 परिसीमा द्वारा बाधित है । यह निर्धारण करते हुए कि क्या वाद संख्या 5 परिसीमा के भीतर है या परे, इस स्थिति पर विचार किया जाना चाहिए कि शेष वादों (वाद संख्या 1, 3 और 4) जिनको इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष आरंभ किया गया था, के किसी भी वादी को वाद संख्या 5 में पक्ष नहीं बनाया गया था । वाद संख्या 5 में किया गया प्रकथन यह है कि प्रथम और द्वितीय वादी, दोनों का अपना-अपना सुभिन्न न्यायिक व्यक्तित्व है । प्रथम वादी का उपासकों से स्वतंत्र रहते हुए अपना सुभिन्न न्यायिक व्यक्तित्व है । वादपत्र के पैरा 18 में वादियों ने प्रकथन किया है कि पूर्ववर्ती वादों के कुछ पक्ष, जो उपासक हैं, किसी सीमा तक अपने-अपने निजी हितों को संतुष्ट किए जाने की ईप्सा करते हुए 'अंतर्वलित' हैं, जिनको वादी देवताओं की उपासना पर नियंत्रण अभिप्राप्त किए जाने के द्वारा पूर्ण किया जा सकता है ।

428. महत्वपूर्ण रूप से वादी देवताओं की सेवा पूजा तारीख 29 दिसंबर, 1949 को विवादित संपत्ति की कुर्की के पश्चात् भी जारी रही । इसलिए यह दलील नहीं दी जा सकती कि वाद संख्या 5 का वादकारण तारीख 29 दिसंबर, 1949 को उद्भूत हुआ, जो उपासना और प्रार्थना में व्यवधान या विवादित संपत्ति की कुर्की से संबंधित है । वाद संख्या 5 में किए गए अभिवचनों में विवादित संपत्ति के संबंध में फाइल किए गए समस्त पूर्ववर्ती वाद निर्दिष्ट हैं । वाद संख्या 5 के प्रतिवादियों में हिंदू और मुस्लिम पक्षों के अतिरिक्त वाद संख्या 2, 3 और 4 के वादी और राज्य और उसके अधिकारी सम्मिलित हैं । वाद संख्या 5 इस अभिवाक् पर आधारित है कि तथ्यत: देवताओं के हित की रक्षा उन व्यक्तियों या

अस्तित्वों द्वारा नहीं की जा रही थी, जो पूर्ववर्ती कार्यवाहियों की पैरवी कर रहे थे । जब वाद संख्या 5 संस्थित कराया गया था, तब प्रथम और द्वितीय वादी के विधिक व्यक्ति का न्यायनिर्णयन नहीं हुआ था । वाद संख्या 5 को संस्थित कराए जाने पर वाद संख्या 3 और 4 के वादियों ने इस बात से अभिव्यक्त रूप से इनकार किया था कि द्वितीय वादी उपासना का स्वतंत्र अस्तित्व और विधिक व्यक्ति था । पुनः, भगवान राम के देवता के हित के संबंध में वादियों की यह आशंका कि उनके हितों का संरक्षण नहीं किया जा रहा है, इस घटना से स्पष्ट रूप से साबित हो जाती है, जिसका उल्लेख निर्मोही अखाड़ा द्वारा तारीख 14 अगस्त, 1989 को फाइल किए गए उनके लिखित कथन में किया गया है । निर्मोही अखाड़ा ने इस बात से इनकार किया कि वादी किसी भी अनुतोष के हकदार हैं और उन्होंने अपने इस अभिवाक् का आश्रय लिया कि वादियों द्वारा जिस परिसर का उल्लेख किया गया है, वह निर्मोही अखाड़े से संबंधित है और वादियों को '**निर्मोही अखाड़े के अधिकार और स्वत्व के विरुद्ध**' किसी घोषणा की ईप्सा का अधिकार नहीं है । वास्तव में निर्मोही अखाड़े ने वाद का अर्थान्वयन 'निर्मोही अखाड़े के मंदिर को ध्वस्त किए जाने की आशंका, जिसके लिए अखाड़े का वाद लंबित है' के रूप में किया । निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि भगवान राम की मूर्ति अयोध्या स्थित राम जन्मभूमि में स्थापित नहीं है बल्कि उस मंदिर में स्थापित है, जिसको राम जन्मभूमि मंदिर के नाम से जाना जाता है और जिसका प्रभार और प्रबंधन दिलाए जाने के लिए निर्मोही अखाड़े ने वाद फाइल किया था । वादियों द्वारा ईप्सित व्यादेश के अनुतोष के उत्तर में निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि केवल उसी को मंदिर पर नियंत्रण रखने, उसका पर्यवेक्षण करने और मरम्मत करने और यहां तक कि यदि आवश्यक हो तो पुनर्निर्माण करने का अधिकार है । निर्मोही अखाड़े ने इस अभिवाक् का अवलंब लिया कि उस न्यास, जो वर्ष 1985 में स्थापित किया गया है, को निर्मोही अखाड़े के स्वत्व और हित को नुकसान पहुंचाने के 'स्पष्ट इरादे' के अंतर्गत स्थापित किया गया है । वाद संख्या 5 की पोषणीयता पर सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड और निर्मोही अखाड़े, दोनों ने समान एतराज प्रस्तुत किए, जिससे वर्तमान कार्यवाहियों के अनुक्रम में उनके द्वारा किए गए

पक्षकथन की पुनर्पुष्टि हो जाती है । डा. राजीव धवन ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड की तरफ से दलीलें देते हुए निवेदन किया कि यद्यपि वाद संख्या 3 परिसीमा द्वारा बाधित है, फिर भी इससे निर्मोही अखाड़े का शिबायत के रूप में अपने दावों की पैरवी अधिकार समाप्त नहीं होता । उन्होंने दलील दी कि निर्मोही अखाड़े के शिबायत होने के नाते वाद संख्या 5 पोषणीय नहीं है । वादियों का पक्षकथन है कि वाद की कार्यवाहियों के दौरान जो तथ्य न्यायालय के समक्ष प्रकट हुए, से यह भली-भांति और सत्यतापूर्वक साबित हो जाता है कि वाद संख्या 5 का संस्थित किया जाना देवता के पूर्ववर्ती वादों में पक्ष न होने के परिणामस्वरूप आवश्यक था और इस आशंका पर आधारित था कि विद्यमान वादों में भगवान राम के देवता की स्वावलंबन से आवश्यकताओं और समस्याओं के समाधान के बिना अग्रणी पक्षों के व्यक्तिगत हितों के बाबत पैरवी की जा रही थी । वाद संख्या 5 के वादकारण के आधार पर वाद के संस्थित किए जाने के लिए उचित अर्थान्वयन पर परिसीमा द्वारा बाधित होने के कारण विचार नहीं किया जा सकता ।

निर्मोही अखाड़े द्वारा फाइल किया गया वाद (वाद संख्या 3) प्रबंधन और प्रभार के बाबत था और इस वाद में राम जन्मभूमि मंदिर को वर्णित किया गया था । निर्मोही अखाड़े के शिबायत होने का दावा वाद संख्या 3 के संस्थित किए जाने की तारीख पर उद्भूत नहीं हुआ था । वे विधित: शिबायत (कोई समर्पण विलेख न होने के कारण) नहीं थे और उनके वस्तुत: शिबायत होने के दावे को साक्ष्य के आधार पर साबित किया जाना था । वाद संख्या 5 इस अभिवाक् पर आधारित था कि पूर्ववर्ती वाद के पक्ष अपने-अपने हितों की पैरवी कर रहे थे । वाद संख्या 5 के आधार (वादकारण) के बाबत यह आशंका सारहीन है । निर्मोही अखाड़े की तरफ से उनकी प्रतिरक्षा, जो प्रबंधन और प्रभार के दावे के परे चली गई, में अभिकथित 'अधिकार और स्वत्व' और उनके 'स्वत्व और हित' का अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई थी, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है । सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड ने देवता द्वारा वादमित्र के माध्यम से उनके हितों के संरक्षण के अधिकार को दी गई चुनौती को अधिक दृढ़ता प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ शिबायत के रूप में निर्मोही अखाड़े के

वादकारण का समर्थन करते हुए उनके साथ संयुक्त रूप से वादकारण सृजित कर लिया । जब निर्मोही अखाड़ा अपने स्वयं के 'स्वत्व और हित' के बाबत अभिवाक् करता है, तो वह देवता के हित के प्रतिकूल अपने हित के बाबत अभिवाक् करता है । इस पृष्ठभूमि में वाद संख्या 5 में भगवान राम के देवता की तरफ से वादकारण के बाबत किए गए अभिवाक् को परिसीमा द्वारा बाधित अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

429. श्री पारासरन ने निवेदन किया कि वाद संख्या 5 आवश्यकत: भविष्य में राम जन्मभूमि स्थल पर भगवान राम को समर्पित मंदिर के निर्माण की आवश्यकता पर विचार किए जाने हेतु संस्थित कराया गया । डा. धवन ने वाद संख्या 5 की आवश्यकता और साथ ही 1985 में न्यास के गठन और व्यापक कार्यसूची (एजेंडा), जिसके परिणामस्वरूप 1992 की घटना घटित हुई, की आलोचना की । हमारे विचार में यह आलोचना इस बाबत विनिर्धारण का कारक नहीं हो सकती कि क्या वाद संख्या 5 विधि की दृष्टि में परिसीमा द्वारा बाधित है । साधारण शब्दों में वाद संख्या 5 में यह अभिवाक् समाविष्ट है कि पूर्ववर्ती वादों, उन वादों को सम्मिलित करते हुए जिनको हिंदू पक्षों द्वारा फाइल किया गया था, में देवता के पक्ष न होने के कारण उनके हितों और समस्याओं का पर्याप्त रूप से संरक्षण नहीं हो रहा था । वे कारण, जिनका अवलंब न्यायमूर्ति अग्रवाल द्वारा वाद संख्या 5 को परिसीमा के भीतर अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया गया, का उल्लेख नीचे किया गया है और जो स्वीकार किए जाने योग्य हैं । उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वाद संख्या 5 परिसीमा अवधि के भीतर संस्थित कराया गया था ।

ढ.8 1885 का वाद और पूर्ण आदेश का सिद्धांत

विवाद्यक

430. पूर्व आदेश (res judicata) का अभिवाक् उस वाद, जो वर्ष 1885 में महंत रघुबर दास द्वारा राम चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के लिए डिक्री की ईप्सा करते हुए, संस्थित कराया गया था, के समर्थन में फाइल की गई सामग्री और उसके परिणाम पर टिका हुआ है । इस बाबत विनिर्दिष्ट विवाद्यक कि क्या पूर्व आदेश का सिद्धांत आकर्षित

होता है, वाद संख्या 1, 4 और 5 में विरचित किए गए थे, जो निम्नलिखित है :–

वाद संख्या 1

विवाद्यक संख्या 5(क) – क्या वादग्रस्त संपत्ति फैज़ाबाद के उप-न्यायाधीश के न्यायालय में संस्थित 1885 के मूल वाद संख्या 61/280, **रघुबर दास महंत** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया और अन्य** में अंतर्वलित है ?

विवाद्यक संख्या 5(ख) – क्या यह विवाद्यक वादी के विरुद्ध निर्णीत किया गया ?

विवाद्यक संख्या 5(ग) – क्या वाद सामान्य हिंदुओं की जानकारी में था और क्या समस्त हिंदू इस वाद में हितबद्ध थे ?

विवाद्यक संख्या 5(घ) – क्या विनिश्चय वर्तमान वाद को पूर्व आदेश के सिद्धांत और किसी अन्य प्रकार से वर्जित करता है ?

वाद संख्या 4

विवाद्यक संख्या 7(क) – क्या 1885 के वाद संख्या 61/280 के वादी महंत रघुबर दास ने जन्मस्थान की तरफ से वाद फाइल किया था और लोगों का समस्त निकाय जन्मस्थान में हितबद्ध था ?

विवाद्यक संख्या 7(ख) – क्या मोहम्मद असगर अभिकथित बाबरी मस्जिद का मुतवल्ली था और उसने वाद में स्वयं की और मस्जिद की तरफ से प्रतिरक्षा नहीं की थी ?

विवाद्यक संख्या 7(ग) – क्या उक्त वाद में पारित निर्णय को दृष्टि में रखते हुए मुकदमेबाजी करने वाले प्रतिवादियों और वर्तमान वाद के वादियों को सम्मिलित करते हुए हिंदू समुदाय के सदस्य विवादित संपत्ति के बाबत मुस्लिम समुदाय के स्वत्व से इनकार करने से विबंधित हैं; यदि ऐसा है तो इसके प्रभाव ?

विवाद्यक संख्या 7(घ) – क्या पूर्वोक्त वाद में विवादित संपत्ति या उसके किसी भाग के बाबत मुस्लिमों के स्वत्व को उस

वाद के वादी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था; यदि ऐसा हुआ, तो इसके प्रभाव ?

विवाद्यक संख्या 8 – क्या 1885 के वाद संख्या 6/280, **महंत रघुबर दास** बनाम **सेक्रेटरी आफ स्टेट और अन्य** वाले मामले में पारित निर्णय इस वाद के वादियों के विरुद्ध पूर्व आदेश की भांति क्रियान्वित होता है ?

वाद संख्या 5

विवाद्यक संख्या 23 – क्या फैज़ाबाद के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में महंत रघुबर दास द्वारा फाइल किया गया 1885 के वाद संख्या 61/280 में पारित निर्णय विबंधन और पूर्व आदेश के सिद्धांतों की प्रयोज्यता द्वारा वादियों पर बाध्यकारी है, जैसाकि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 द्वारा अभिकथित किया गया है ?

1885 का वादपत्र

431. 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा स्वयं को 'अयोध्या स्थित महंत जन्मस्थान' के रूप में वर्णित करते हुए संस्थित कराया गया था । यह वाद आरंभिकत: केवल **सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया** के विरुद्ध संस्थित कराया गया था । 1885 के वाद का वादपत्र निम्नलिखित है :–

"समक्ष न्यायालय मुंसिफ साहिब बहादुर
महंत रघुबर दास
महंत जन्मस्थान
अयोध्या   वादी

बनाम

सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया
इन द सेशन आफ काउंसिल   प्रतिवादी

मंदिर के निर्माण की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ वाद अर्थात् प्रतिवादी को इस बाबत प्रतिसिद्ध किए जाने की वादी को अयोध्या स्थित चबूतरा – जन्मस्थान, उत्तर 17 फीट, पूर्व 21 फीट, दक्षिण 17 फीट, पश्चिम 21 फीट पर मंदिर के निर्माण से

निषिद्ध नहीं किया जाना चाहिए और वाद का मूल्यांकन बाजार दर के अनुसार निर्धारित नहीं किया जा सकता, इसलिए 1870 के अधिनियम के परिशिष्ट – II, पैरा 6, मद संख्या 17 के अनुसार न्याय शुल्क निर्धारित किया गया और स्थल की स्थिति संलग्न नक्शा/रेखाचित्र से भली-भांति ज्ञात की जा सकती है ।

धारा 1. फैज़ाबाद के अयोध्या नगर में स्थित जन्मस्थान अत्यधिक प्राचीन और हिंदुओं की उपासना का पवित्र स्थान है और वादी इस उपासना स्थान का महंत है ।

धारा 2. चबूतरा जन्मस्थान पूर्व-पश्चिम में 41 फीट लंबा और उत्तर-दक्षिण में 17 फीट चौड़ा स्थित है, जिस पर चरण पादुका स्थापित है और एक छोटा मंदिर भी स्थित है, जिसकी उपासना की जाती है ।

धारा 3. यह कि उक्त चबूतरा वादी के कब्जे में है । इस चबूतरे पर कोई भवन स्थित न होने के कारण वादी और अन्य फकीरों को ग्रीष्म ऋतु में ऊष्मा, वर्षा ऋतु में वर्षा और शीत ऋतु में जबरदस्त ठंड के कारण अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । चबूतरे पर मंदिर के निर्माण से किसी को कोई हानि नहीं होगी । इसके विपरीत मंदिर के निर्माण से वादी और अन्य फकीरों और तीर्थयात्रियों को राहत मिलेगी ।

धारा 4. फैज़ाबाद के उपायुक्त बहादुर ने 1883 के मार्च या अप्रैल में कुछ मुस्लिमों के एतराज के कारण मंदिर के निर्माण का विरोध किया, जिस कारणवश वादी ने स्थानीय सरकार को इस मामले के संबंध में एक याचिका प्रेक्षित की, जिसका वादी को कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ । तत्पश्चात् वादी ने तारीख 18 अगस्त, 1883 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 444 के अधीन अपेक्षित सूचना स्थानीय सरकार के सचिव के कार्यालय को प्रेक्षित की । अत: इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत अयोध्या में प्रतिषेध की तारीख से वादकारण उद्भूत हुआ ।

धारा 5. आज्ञाकारी प्रजा को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वे किसी भी ऐसे भवन का निर्माण उस भूमि पर कर सकें, जो

उनके स्वामित्वाधीन है और कब्जे में है । निष्पक्ष और न्यायसंगत सरकार यह कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा की रक्षा करे और उनको उनके अधिकार प्राप्त करने में सहायता प्रदान करे और विधि और व्यवस्था बनाए रखने के लिए समुचित बंदोबस्त करे । इसलिए, वादी अयोध्या स्थित चबूतरा-जन्मस्थान, जो उत्तर में 17 फीट, पूर्व में 41 फुट, दक्षिण में 17 फुट और पश्चिम में 41 फुट है, पर मंदिर के निर्माण के लिए डिक्री जारी किए जाने के लिए प्रार्थना करता है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि प्रतिवादी मंदिर के निर्माण को प्रतिषिद्ध और अवरोधित न करें और वाद की लागत प्रतिवादी द्वारा वहन किए जाने के लिए भी आदेशित किया जाए ।

मैं रघुबर दास, महंत जन्मस्थान, अयोध्या प्रमाणित करता हूं कि वादपत्र की अंतर्वस्तु और समस्त पांच बिंदु मेरे सर्वोत्तम ज्ञान और विश्वास के अनुसार सत्य और सही है ।

हस्ताक्षर महंत रघुबर दास

हिंदी लिपि में"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है ।)

वादी का प्रकथन है कि जन्मभूमि का स्थान हिंदुओं के लिए एक प्राचीन स्थान है और यह उपासना का स्थान है । वादी ने इस उपासना के स्थान का महंत होने का दावा किया है । 'चबूतरा जन्मस्थान' को 'पूर्व-पश्चिम में 41 फीट लंबा और उत्तर-दक्षिण में 17 फीट चौड़ा' की माप वाले चबूतरे के रूप में वर्णित किया गया है ।

यह अभिवाक् किया गया है कि इस चबूतरे के ऊपर एक चरण पादुका स्थापित थी और उसके ऊपर एक छोटा मंदिर भी स्थापित था, जिसकी उपासना की जाती थी । वादी ने दावा किया है कि वह चबूतरे के कब्जे में है । वादी ने प्रकथन किया है कि वह और अन्य फकीर कठोर मौसम में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करते हैं और इसलिए 'चबूतरा' पर मंदिर के निर्माण से किसी को कोई हानि नहीं होगी । तथापि, यह अभिकथित किया गया कि फैज़ाबाद के उपायुक्त ने मंदिर के निर्माण का विरोध किया था और सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत

तारीख 18 अगस्त, 1883 की सूचना के बावजूद सरकार ने कोई कार्रवाई नहीं की । इस दावे का आधार यह था कि 'प्रजा' को उस भूमि पर भवन के निर्माण का अधिकार प्राप्त होता है, जो उसके स्वामित्वाधीन हैं और उसके कब्जे में हैं ।

1885 में प्रतिरक्षा

432. यद्यपि वाद में मुस्लिमों को मूल रूप से पक्षों के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया था, फिर भी मोहम्मद असगर ने मुतवल्ली की हैसियत से पक्ष बनाए जाने के लिए आवेदन किया और उसको वाद में पक्ष बनाया गया । मोहम्मद असगर ने अपने लिखित कथन में यह अभिवाक् किया कि मस्जिद का निर्माण बाबर द्वारा किया गया था । उसने यह अभिकथन भी किया कि इस स्थान के स्वामित्व का दावा वादी, जिसने अपने अभिवाक् के समर्थन में सम्राट या शासक के समय में उद्भूत होने वाली किसी सामग्री को प्रस्तुत नहीं किया है, द्वारा नहीं किया जा सकता । उसकी प्रतिरक्षा यह थी कि :–

(i) वादी का चबूतरे पर कोई हक नहीं है;

(ii) उपासना के प्रयोजनार्थ भीतर और बाहर आने जाने से स्वामित्व साबित नहीं होता;

(iii) चबूतरे का निर्माण वर्ष 1857 में किया गया; और

(iv) चबूतरे के निर्माण से स्वामित्व का कोई अधिकार प्रदत्त नहीं होता और उस पर नया निर्माण सरकार द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप झोपड़ी, जिसका निर्माण एक फकीर द्वारा किया गया था, को ध्वस्त कर दिया गया था ।

यह दलील दी गई कि यह स्थान हिंदुओं और मुस्लिमों के मध्य विवादित था, जिसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक घटना भी घटित हुई थी ।

निष्कर्ष

433. फैज़ाबाद के उप-न्यायाधीश ने तारीख 24 दिसंबर, 1885 के अपने निर्णय में मस्जिद की दीवार के चारों तरफ बसे हुए क्षेत्रीय हिंदुओं के स्वामित्व और कब्जे को स्वीकार किया । तथापि, उप-न्यायाधीश ने

अभिनिर्धारित किया कि यदि मंदिर के निर्माण की अनुज्ञा प्रदान की जाती है, तो दोनों समुदायों के मध्य विधि और व्यवस्था को खतरे में डालने वाली गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जाएगी । उप न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया :–

> "इन सब बातों के अलावा, जहां तक चबूतरे पर स्थित मंदिर का संबंध है, इस पर ठाकुर जी की एक मूर्ति रखी हुई है जिसकी उपासना की जाती है । चबूतरा वादी के कब्जे में है और इस पर जो कुछ भी चढ़ावा अर्पित किया जाता है, वह वादी द्वारा प्राप्त किया जाता है ।
>
> वादी के कब्जे को वादी के साक्षियों द्वारा साबित किया गया है और हिंदुओं और मुस्लिमों को पृथक् करने वाली दीवार और उस पर लोहे की चाहरदीवारी लंबी अवधि से विद्यमान है ...।
>
> हिंदुओं और मुस्लिमों के मध्य वर्ष 1855 में संघर्ष के पश्चात् लोहे की चाहरदीवार के रूप में एक दीवार किसी भी विवाद को निराकृत किए जाने के प्रयोजनार्थ निर्मित की गई थी ताकि मुस्लिम भीतर उपासना कर सके और हिंदू बाहर । अतः बाहर स्थित चबूतरे सहित भूमि, जो वादी के कब्जे में है, हिंदुओं से संबंधित है ।
>
> यद्यपि, वह स्थान, जहां हिंदू उपासना करते हैं और मस्जिद की दीवार के चारों तरफ वाले क्षेत्र का कब्जा प्राचीनकाल से हिंदुओं के पास है, जिस कारणवश उनके स्वामित्व के बाबत कोई एतराज नहीं हो सकता और बाहरी दरवाजे पर शब्द 'अल्लाह' खुदा हुआ है ।"

हिंदुओं के स्वामित्व और कब्जे के बाबत उपरोक्त निष्कर्षों के बावजूद वाद खारिज कर दिया गया क्योंकि विधि और व्यवस्था के गंभीर रूप से भंग की आशंका व्यक्त की गई थी । अपील में विचारण न्यायालय का निर्णय, जिसके द्वारा वाद खारिज किया गया था, की फैज़ाबाद के जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 18/26 मार्च, 1886 को पुष्टि कर दी गई । जिला न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि हिंदुओं द्वारा पवित्र समझी जाने वाली भूमि पर मस्जिद का निर्माण कर दिया गया, फिर भी वह घटना, जो तीन शताब्दियों पूर्व घटित हुई थी, के बाबत कोई अनुतोष प्रदान नहीं किया जा सकता :–

> "यह अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण है कि उस भूमि पर मस्जिद का निर्माण कर दिया गया, जिसको हिंदुओं द्वारा विशेष रूप से पवित्र भूमि माना जाता है, किंतु चूंकि घटना 356 वर्ष पूर्व घटित हुई थी, इसलिए हिंदुओं को उनकी शिकायत पर कोई भी अनुतोष प्रदान किया जाना अत्यधिक विलंबित होगा और जो कुछ भी किया जा सकता है, वह यही है कि दोनों पक्ष यथास्थिति बनाए रखें ।"

जिला न्यायाधीश ने स्थल के निरीक्षण पर यह उल्लेख किया कि चबूतरे, जिस पर 'तंबू के रूप में लकड़ी की छोटी सी भव्य संरचना' स्थित है, पर हिंदुओं का कब्जा है । चबूतरे के बाबत यह कहा जाता है कि यह स्थान भगवान राम के जन्मस्थान का द्योतक है । जिला न्यायाधीश ने वाद को खारिज किए जाने को सही ठहराते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि विचारण न्यायाधीश के निर्णय में कब्जे और स्वामित्व पर की गई मताभिव्यक्ति अनावश्यक थी और इसलिए इसे हटाया जाता है । प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय को अवध के न्यायिक आयुक्त के समक्ष द्वितीय अपील में चुनौती दी गई, जिसने तारीख 2 नवंबर, 1886 के खारिज आदेश की पुष्टि कर दी । न्यायिक आयुक्त ने यह मताभिव्यक्ति की :–

> "साधारण शब्दों में मामला यह है कि अयोध्या के हिंदू संगमरमर के एक नए मंदिर का निर्माण करना चाहते हैं ... अयोध्या में अभिकथित रूप से पवित्र स्थान के ऊपर, जिसे श्रीरामचंद्र का जन्मस्थान कहा जाता है । अब यह स्थान एक ऐसे मैदान के अहाते के भीतर स्थित है, जिसके भीतर सम्राट बाबर, जिसने हिंदू किंवदंती के अनुसार जानबूझकर इस स्थान को उसकी मस्जिद के स्थान के लिए चुना था, की कट्टरता और अत्याचार के कारणवश लगभग 350 वर्ष पूर्व निर्मित मस्जिद स्थित है ।
>
> ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदू मस्जिद के साथ संलग्न अहाते के भीतर कतिपय स्थलों पर अत्यंत सीमित पहुंच रखते हैं और वे निरंतर रूप से अनेक वर्षों से अपने अधिकारों को बढ़ाए जाने और संलग्न अहाते में दो स्थलों पर भवन निर्मित करने का प्रयास कर रहे हैं (1) सीता की रसोई (2) रामचंद्र की जन्मभूमि ।

कार्यकारी प्राधिकारियों ने निरंतर रूप से इन अतिक्रमणों को रोका है और 'यथास्थिति' में किसी भी प्रकार के परिवर्तन पर पूर्ण रूप से रोक लगाई है ।

मैं समझता हूं कि यह कार्यकारी प्राधिकारियों की तरफ से अपनाई गई अत्यंत बुद्धिमतापूर्ण और उचित प्रक्रिया है और मेरा यह विचार है कि सिविल न्यायालयों ने वादी के दावे को उचित रीति में खारिज किया है ।

इस अपील में जो अभिवाक् किया गया है ... मामले के तथ्यों द्वारा या किसी दस्तावेज द्वारा जो मुझे प्रतीत होता हो... पूर्णतया असमर्थित हैं । जहां तक सिविल न्यायालय की अधिकारिता की सीमा का संबंध है, निचले अपीली न्यायालय की कुछ तर्क । तथापि, मैं उनके द्वारा निकाले गए अंतिम निष्कर्ष का अनुमोदन करता हूं – और मैं उनके आदेश में मध्यक्षेप और प्रथम चरण के न्यायालय के निर्णय की शब्दरचना को उपांतरित करने का कोई कारण नहीं पाता । अभिलेख पर ऐसा कुछ भी उपलब्ध नहीं है जिससे यह दर्शित हो सके कि वादी किसी भी प्रकार से प्रश्नगत भूमि का कर्ताधर्ता है । अपील समस्त न्यायालयों की लागत सहित खारिज की जाती है ।"

निवेदन

434. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री शेखर नपाडे ने न्यायिक आयुक्त की उपरोक्त मताभिव्यक्तियों का अवलंब लेते हुए विनिश्चय के पांच पहलुओं पर जोर दिया :–

(i) मस्जिद की विद्यमानता;

(ii) अतिसमीप चबूतरे का निर्माण;

(iii) हिंदुओं को पहुंच के सीमित अधिकार की उपलब्धता;

(iv) हिंदुओं द्वारा अतिक्रमण के प्रयास पर प्राधिकारियों द्वारा अधिरोपित नियंत्रण; और

(v) स्वामित्व और कब्जे के बाबत हिंदुओं के दावे का अस्वीकरण ।

435. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के सभी तीन न्यायाधीशों ने पूर्व आदेश (res judicata) के अभिवाक् को अस्वीकृत कर दिया । न्यायमूर्ति एस. यू. खान ने अभिनिर्धारित किया कि 1885 के वाद में जिस एक मात्र विवाद्यक को निर्णीत किया गया था, वह दोनों समुदायों के मध्य दंगों की संभाव्यता के निवारण के प्रयोजनार्थ यथास्थिति को बनाए रखे जाने से संबंधित था । उनके विचार में :–

> "उक्त वाद में विवाद को निर्णीत किए जाने से इनकार वास्तविक विनिश्चय था ।"

श्री नफाडे ने उपरोक्त निष्कर्ष पर आक्रमण करते हुए दलील दी कि विद्वान् न्यायाधीश द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचते हुए कि त्रुटि कारित की गई थी कि 1885 के वाद में किसी भी सारभूत विवाद्यक को निर्णीत नहीं किया गया था । उन्होंने निवेदन किया कि न्यायिक आयुक्त द्वारा दिए गए निर्णय से यह उपदर्शित होता है कि हिंदुओं के पास पहुंच का सीमित अधिकार था और उनका कब्जे और स्वामित्व का दावा अस्वीकृत हो गया था ।

436. न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि 1885 के वाद में एकमात्र विवाद्यक चबूतरे पर ईप्सित निर्माण के संबंध में था । इसलिए यह वाद विवादित स्थल या भवन की संपूर्णता से संबंधित नहीं था और विवादित भूमि या उसके किसी भाग के संबंध में स्वामित्व या कब्जे का अधिकार अंतर्वलित नहीं था । न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने अभिनिर्धारित किया कि उन मुकदमों, जिनमें उच्च न्यायालय न्यायनिर्णयन कर रहा था, की भांति 1885 के वाद में संपत्ति का केवल एक भाग अंतर्वलित था ।

437. श्री नफाडे ने इन निर्णयों पर आक्रमण करते हुए दलील दी कि :–

> (i) न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल पूर्ववर्ती वाद में न्यायिक आयुक्त द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों का उल्लेख इस बाबत करने में विफल रहे कि हिंदुओं को पहुंच के सीमित अधिकार थे, न कि कब्जे या स्वामित्व के अधिकार;
>
> (ii) पूर्व आदेश के बिंदु पर निष्कर्ष इस न्यायालय द्वारा के.

एथीराजन **बनाम** लक्ष्मी (2003) 10 एस. सी. सी. 578 वाले मामले में दिए गए निष्कर्ष के विपरीत है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पूर्व आदेश का सिद्धांत ऐसी स्थिति में भी आकर्षित होगा, जिसमें पूर्ववर्ती वाद में संपत्ति का केवल एक भाग विवादित था, जबकि पश्चात्वर्ती वाद में संपूर्ण संपत्ति दावे की विषयवस्तु थी; और

(iii) न्यायमूर्ति अग्रवाल ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी उपलब्ध नहीं है कि बड़ी संख्या में हिंदुओं को पूर्ववर्ती वाद के बारे में जानकारी थी । वहां पर विधि और व्यवस्था की स्थिति गंभीर थी, जिसके कारण दो संप्रदायों के मध्य विवाद उस समय बिंदु पर उत्पन्न हो गया था, जब 1885 का वाद संस्थित कराया गया था । इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिंदुओं को वाद की जानकारी थी । प्राथमिक तथ्यों से भी युक्तिसंगत अनुमान लगाया जा सकता है, यद्यपि इस बाबत कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि हिंदुओं को पूर्ववर्ती वाद संस्थित कराए जाने की जानकारी थी ।

न्यायमूर्ति डी. वी. शर्मा ने इस निष्कर्ष पर पहुंचते हुए कि पूर्व न्याय (res judicata) के सिद्धांत से उत्पन्न वर्जन आकर्षित नहीं होता, यह अभिनिर्धारित किया कि पूर्ववर्ती वाद प्रतिनिधिक प्रकृति का वाद नहीं था, चूंकि 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 539 के अधीन सार्वजनिक सूचना अपेक्षित थी, जिसका अनुपालन नहीं किया गया था । विद्वान् न्यायाधीश ने मताभिव्यक्ति की कि न तो पूर्ववर्ती वाद के पक्ष वही थे, जो वर्तमान वाद में हैं और न ही दोनों वादों की विषयवस्तु समान थी, चूंकि पूर्ववर्ती वाद केवल चबूतरे से संबंधित था । श्री नफाडे ने इन निष्कर्षों पर आक्रमण करते हुए दलील दी कि पूर्ववर्ती वाद में वादपत्र हिंदुओं के लाभ के लिए था; सेक्रेटरी आफ स्टेट इन काउंसिल ने सभी समुदायों का प्रतिनिधित्व किया था और किसी भी स्थिति में धारा 539 के अधीन सार्वजनिक सूचना की अनुपस्थिति से पूर्व न्याय (res judicata) के सिद्धांत के वर्जन से मुक्ति नहीं मिलती । उन्होंने निवेदन किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI की प्रयोज्यता आदेश 1, नियम 8 के अध्यधीन नहीं है ।

438. श्री नफाडे ने उन सभी निष्कर्षों, जिनको इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशों में से प्रत्येक के द्वारा पूर्व न्याय (res judicata) के सिद्धांत के अभिवाक् पर अभिलिखित किया गया है, पर आक्रमण करने के अतिरिक्त दलील दी कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में समाविष्ट उपबंध निम्नलिखित कारणोंवश आकर्षित होते हैं :–

(i) यह मामला पूर्ववर्ती वाद में पक्षों के मध्य प्रत्यक्षत: और सारभूत रूप से विवादित है चूंकि –

(क) हिंदुओं के स्वामित्व के कब्जे का दावा न्यायिक आयुक्त द्वारा 1885 के वाद में अस्वीकृत कर दिया गया था; और

(ख) पूर्ववर्ती वाद में मस्जिद की विद्यमानता को कोई चुनौती नहीं दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप मुस्लिमों के हक और अधिकार अंतर्निहित रूप से स्वीकार हो जाते हैं;

(ii) पूर्ववर्ती वाद में वादी, जिसने स्वयं को जन्मस्थान के महंत के रूप में वर्णित किया, ने आवश्यकत: हिंदुओं के वादकारण का प्रतिनिधित्व किया और इसलिए पूर्व न्याय (res judicata) का सिद्धांत लागू होगा । पूर्ववर्ती वाद 'समान पक्षों के मध्य या उन पक्षों, जिनके द्वारा वे या उनमें से कोई समान स्वत्व के अंतर्गत मुकदमेबाजी करते हुए दावा करते हैं, था; और

(iii) पूर्ववर्ती वाद में वादकारण वही है, जो वर्तमान मामलों के समुच्चय में है । संपत्ति का हक, जिसका दावा हिंदुओं द्वारा किया गया, दोनों वादों में समान है और वादकारण मंदिर निर्माण के अधिकार पर आधारित है ।

श्री नफाडे ने इन आधारों पर निवेदन किया कि पूर्व न्याय (res judicata) के सिद्धांत का वर्जन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 सपठित स्पष्टीकरण VI के अधीन आकर्षित होता है । उन्होंने दलील दी कि 1882 की संहिता की धारा 30 के उपबंधों (जो 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 8 के सदृश्य हैं) के पालन में विफलता से कोई अंतर नहीं पड़ता, चूंकि धारा 11 के उपबंध आदेश 1, नियम 8 के उपबंधों के अध्यधीन नहीं हैं ।

श्री नफाडे ने यह दलील भी दी कि धारा 11 के स्पष्टीकरण IV के अधीन रचनात्मक पूर्व आदेश (constructive res judicata) का सिद्धांत आकर्षित होता है । अंतत: उन्होंने निवेदन किया कि 1885 के वाद में निकाले गए पूर्ववर्ती निष्कर्ष विबंधन (estoppel) की भांति क्रियान्वित होंगे और चूंकि पूर्ववर्ती वाद में पारित किया गया आदेश सार्वजनिक आदेश है, इसलिए समस्त हिंदू इस आदेश के द्वारा निकाले गए निष्कर्षों द्वारा बाध्य हैं । उन्होंने आगे दलील दी कि वह मानचित्र, जो 1885 के वाद के साथ संलग्न था, बिल्कुल वही मानचित्र था और इसलिए अभिलेख द्वारा भी विबंधन (estoppel) का सिद्धांत आकर्षित होगा ।

श्री नफाडे द्वारा दी गई दलीलों का खंडन करते हुए वाद संख्या 5 में वादियों की तरफ से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री पारासरन ने निवेदन किया कि पूर्व न्याय (res judicata) के सिद्धांत निम्नलिखित कारणोंवश आकर्षित नहीं होते :–

क. पक्ष भिन्न हैं :

(i) न तो देवता (वाद संख्या 5 में वादी) और न ही सुन्नी सेंट्रल वक्फ़ बोर्ड (वाद संख्या 4 में वादी) 1885 के वाद के पक्ष थे; और

(ii) 1885 का वाद महंत रघुबर दास द्वारा प्रतिनिधिक हैसियत में संस्थित नहीं कराया गया था ।

ख. यह वाद चबूतरे पर मंदिर के निर्माण के व्यक्तिगत अधिकार का दृढ़तापूर्वक दावा करते हुए फाइल किया गया था :

(i) 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता, जो तत्समय प्रवृत्त थी जब वाद संस्थित कराया गया था और जो 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 8 के सदृश्य है, की धारा 30 के अधीन कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था;

(ii) 1885 में न तो देवता और न ही हिंदू जनता ने महंत रघुबर दास के द्वारा किसी अधिकार का दावा किया था;

(iii) वाद संख्या 4 में तारीख 8 अगस्त, 1962 को एक

आदेश पारित किया गया था, जिसके अधीन वादियों, जिन्होंने मुस्लिमों और प्रतिवादी संख्या 1 से 4 की तरफ से प्रतिनिधिक हैसियत में वाद फाइल किया था, को हिंदुओं की तरफ से भी वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान की गई थी ।

(iv) यहां तक कि यह अवधारणा भी करते हुए कि पूर्ववर्ती वाद हिंदुओं की तरफ से फाइल किया गया था, वाद संख्या 5 के वादी-देवता नारायण भगवंतराव गोसावी बालाजीवाले **बनाम** गोपाल विनायक गोसावी [1960] 1 एस. सी. आर. 773 वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को दृष्टि में रखते हुए वाद के परिणाम से बाध्य नहीं थे ।

ग. पूर्ववर्ती वाद में ईप्सित विवाद्यक और अनुतोष भिन्न हैं :

(i) 1885 का वाद सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया के विरुद्ध मंदिर निर्माण की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया था;

(ii) वर्तमान कार्यवाही संपत्ति की प्रकृति से संबंधित है – क्या यह एक सार्वजनिक मस्जिद है या हिंदुओं का सार्वजनिक उपासना स्थल है; और

(iii) वाद संख्या 5 में यह विवाद्यक कि क्या 'स्थान राम जन्मभूमि' विधिक व्यक्तित्व है, ऐसा विवाद्यक है, जो 1885 के वाद में ईप्सित मंदिर के निर्माण के अनुतोष के परे चला गया है ।

घ. वादग्रस्त संपत्तियां सुभिन्न हैं :

(i) 1885 के वाद में विषयवस्तु केवल 17 x 21 फीट की माप वाला चबूतरा था; और

(ii) वर्तमान कार्यवाहियों में वाद संख्या 4 और वाद संख्या 5, दोनों में वादग्रस्त संपत्ति में भीतरी और बाहरी, दोनों बरामदे समाविष्ट हैं ।

ङ 1885 का वाद तब संस्थित कराया गया था, जब 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता प्रवृत्त थी । 1882 की सिविल प्रक्रिया

संहिता की धारा 13 पूर्व आदेश (res judicata) पर विचार करती है । इस धारा का स्पष्टीकरण V, जैसी कि वह तत्समय विद्यमान थी, में केवल वे व्यक्ति आच्छादित होते हैं, जो स्वयं और अन्य के लिए सार्वजनिक रूप से किसी निजी अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं । 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में 'लोक अधिकार' अभिव्यक्ति धारा 91 के उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए स्पष्टीकरण VI में संयोजित की गई थी । सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध प्रक्रियात्मक और सारभूत, दोनों प्रकृति के हैं । 1885 के वाद में केवल निजी अधिकार को प्रवृत्त किए जाने की ईप्सा की गई थी, जबकि वर्तमान कार्यवाहियों में उपासना के सार्वजनिक अधिकार को प्रवृत्त किए जाने की ईप्सा की गई है । यद्यपि 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता लागू की जानी थी, जो 1885 का वाद फाइल किए जाने की तारीख पर अभिभावी विधि थी, फिर भी उस वाद (जिसके द्वारा केवल निजी अधिकार को प्रवृत्त कराया जाना ईप्सित था) में निकाले गए निष्कर्ष पूर्व आदेश (res judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं होंगे ।

विश्लेषण

439. धारा 11 की प्रयोज्यता कतिपय शासी सिद्धांतों पर आधारित है । ये सिद्धांत इस प्रकार हैं :–

(i) वाद में प्रत्यक्षतः और सारभूत रूप से अंतर्वलित मामलों में विवाद्यक पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारभूत रूप से अंतर्वलित विवाद्यक होना चाहिए;

(ii) पूर्ववर्ती वाद उन्हीं पक्षों के मध्य होना चाहिए, जिनके मध्य पश्चात्वर्ती वाद है या उन पक्षों के मध्य होना चाहिए, जिनमें वे या उनमें से कोई समान हक के अधीन मुकदमेबाजी करने का दावा करते हैं;

(iii) वह न्यायालय जिसने पूर्ववर्ती वाद निर्णीत किया, को पश्चात्वर्ती वाद या वह वाद, जिसमें विवाद्यक सारभूत रूप से उठाया गया हो, के विचारण के सक्षम होना चाहिए; और

(iv) पूर्ववर्ती वाद में न्यायालय द्वारा विवाद्यक को सुना जाना चाहिए और अंतिम रूप से निर्णीत किया जाना चाहिए ।

धारा 11 का स्पष्टीकरण VI धारणा उपबंध की प्रकृति का उपबंध है, जो 'ऐसे पक्षकारों के बीच जिनसे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं' अभिव्यक्ति की परिधि के अंतर्गत विस्तारित होता है । स्पष्टीकरण VI, के अधीन, जहां कोई व्यक्ति किसी लोक अधिकार के या किसी ऐसे निजी अधिकार के लिए सद्भावनापूर्वक मुकदमा करते हैं, जिसका वे अपने और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यत: दावा करते हैं, वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं । अन्य शब्दों में स्पष्टीकरण VI को आकर्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि मुकदमेबाजी सद्भावी होनी चाहिए, जिसमें सार्वजनिक रूप से स्वयं और अन्य के लिए किसी सार्वजनिक अधिकार या निजी अधिकार के संबंध में दावा किया जाना चाहिए । यह केवल तभी हो सकता है जब सभी व्यक्तियों, जो ऐसे किसी अधिकार में हितबद्ध हैं, के बाबत यह अवधारणा की जाए कि वे इस धारा के प्रयोजनार्थ मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के अधीन दावा कर रहे हैं ।

आदेश 1, नियम 8* में कतिपय उपबंध समाविष्ट हैं, जिनके अधीन एक ही हित में सभी व्यक्तियों की ओर से एक व्यक्ति वाद ला सकेगा या प्रतिरक्षा कर सकेगा ।

---

* आदेश 1, नियम 8 इस प्रकार उपबंधित करता है :

एक ही हित में सभी व्यक्तियों की ओर से एक व्यक्ति वाद ला सकेगा या प्रतिरक्षा कर सकेगा - (1) जहां एक ही वाद में एक ही हित रखने वाले बहुत से व्यक्ति हैं वहां, –

(क) इस प्रकार हितबद्ध सभी व्यक्तियों की ओर से या उनके फायदे के लिए न्यायालय की अनुज्ञा से ऐसे व्यक्तियों में से एक या अधिक व्यक्ति वाद ला सकेंगे या उनके विरुद्ध वाद लाया जा सकेगा या वे ऐसे वाद में प्रतिरक्षा कर सकेंगे;

(ख) न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि इस प्रकार हितबद्ध सभी व्यक्तियों की ओर से या उनके फायदे के लिए ऐसे व्यक्तियों में से एक या अधिक व्यक्ति वाद ला सकेंगे या उनके विरुद्ध वाद लाए जा सकेंगे या वे ऐसे वाद में प्रतिरक्षा कर सकेंगे ।

(2) न्यायालय ऐसे प्रत्येक मामले में जहां उपनियम (1) के अधीन अनुज्ञा या निदेश दिया गया है, इस प्रकार हितबद्ध सभी व्यक्तियों को या तो वैयक्तिक तामील कराकर या जहां व्यक्तियों की संख्या या किसी अन्य कारण से ऐसी तामील युक्तियुक्त रूप से साध्य नहीं है वहां लोक विज्ञापन द्वारा जैसा भी न्यायालय हर एक मामले में निर्दिष्ट करे, वाद के संस्थित किए जाने की सूचना वादी के खर्च पर देगा ।

(3) कोई व्यक्ति जिसकी ओर से या जिसके फायदे के लिए उपनियम (1) के अधीन कोई वाद संस्थित किया जाता है या ऐसे वाद में प्रतिरक्षा की जाती है, उस वाद में पक्षकार बनाए जाने के लिए न्यायालय को आवेदन कर सकेगा ।

440. जब 1885 का वाद संस्थित कराया गया था, तो 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता प्रवृत्त थी । इस संहिता की धारा 13 में पूर्व आदेश (res judicata) का उपबंध समाविष्ट है । धारा 13, 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 में समाविष्ट कतिपय तात्विक अंतरों के बावजूद समरूप हैं । धारा 13 के स्पष्टीकरण V में धारणा उपबंध समाविष्ट है, जो यह अभिकथित करता है कि समान हक के अंतर्गत मुकदमेबाजी करने वाले व्यक्तियों के बारे में यह धारणा कब की जाएगी कि वे दावा कर रहे हैं । तथापि, धारा 13 के स्पष्टीकरण V में केवल दो व्यक्ति आच्छादित हैं, जो किसी निजी अधिकार, जिसके बाबत वे यह दावा करते हैं कि वह अधिकार उनके और अन्य लोगों का सामान्य अधिकार है, के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं । इसके विपरीत 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 का स्पष्टीकरण VI के अंतर्गत वे व्यक्ति आच्छादित हैं, जो किसी ऐसे सार्वजनिक अधिकार या निजी अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं, जो उनके और अन्य के सामान्य अधिकार हैं । 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के स्पष्टीकरण V और 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के

---

(4) आदेश 23 के नियम 1 के उपनियम (1) के अधीन ऐसे वाद में दावे के किसी भाग का परित्याग नहीं किया जाएगा और उस आदेश के नियम 1 के उपनियम (3) के अधीन ऐसे वाद का प्रत्याहरण नहीं किया जाएगा और उस आदेश के नियम 3 के अधीन ऐसे वाद में कोई करार, समझौता या तुष्टि अभिलिखित नहीं की जाएगी जब तक कि न्यायालय ने इस प्रकार हितबद्ध सभी व्यक्तियों को उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट रीति से सूचना वादी के खर्च पर न दे दी हो ।

(5) जहां ऐसे वाद में वाद लाने वाला या प्रतिरक्षा करने वाला कोई व्यक्ति वाद या प्रतिरक्षा में सम्यक् तत्परता से कार्यवाही नहीं करता है वहां न्यायालय उस वाद में वैसा ही हित रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति को उसके स्थान पर रख सकेगा ।

(6) इस नियम के अधीन वाद में पारित डिक्री उन सभी व्यक्तियों पर आबद्धकर होगी जिनकी ओर से या जिनके फायदे के लिए, यथास्थिति, वाद संस्थित किया गया है या ऐसे वाद में प्रतिरक्षा की गई है ।

स्पष्टीकरण – इस बात का अवधारण करने के प्रयोजन के लिए कि वे व्यक्ति जो वाद ला रहे हैं या जिनके विरुद्ध वाद लाया गया है या जो ऐसे वाद में प्रतिरक्षा कर रहे हैं, किसी एक वाद में वैसा ही हित रखते हैं या नहीं, यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि ऐसे व्यक्तियों का वही वाद हेतुक है जो उन व्यक्तियों का है जिनकी ओर से या जिनके फायदे के लिए, यथास्थिति, वे वाद ला रहे हैं या उनके विरुद्ध वाद लाया जा रहा है या वे ऐसे वाद में प्रतिरक्षा कर रहे हैं ।

स्पष्टीकरण IV के मध्य भिन्नता को दोनों उपबंधों को समाविष्ट करने वाली निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है :–

1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13	**1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11**
स्पष्टीकरण V – जहां कोई व्यक्ति किसी ऐसे प्राइवेट अधिकार के लिए सद्भावपूर्वक मुकदमा करते हैं जिसका वे अपने लिए और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यत: दावा करते हैं वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं ।	**स्पष्टीकरण VI –** जहां कोई व्यक्ति किसी लोक अधिकार के या किसी ऐसे प्राइवेट अधिकार के लिए सद्भावपूर्वक मुकदमा करते हैं जिसका वे अपने लिए और अन्य व्यक्तियों के लिए सामान्यत: दावा करते हैं वहां ऐसे अधिकार से हितबद्ध सभी व्यक्तियों के बारे में इस धारा के प्रयोजनों के लिए यह समझा जाएगा कि वे ऐसे मुकदमा करने वाले व्यक्तियों से व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करते हैं ।

प्रक्रम पर यह उल्लेख किया जाता है कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 92 में ऐसा उपबंध समाविष्ट है, जो 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 539 के सदृश्य है । तथापि, 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में धारा 91 को जनता को प्रभावित करने वाले लोक न्यूसेंस और अन्य दोषपूर्ण कार्यों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए प्रस्तुत किया गया था । 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI में विद्यमान 'लोक अधिकार के' शब्दों को धारा 91 में लोक न्यूसेंस से संबंधित वादों को प्रभावी ढंग से निपटारा किए जाने के प्रयोजनार्थ सम्मिलित किया गया था । अत: 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के स्पष्टीकरण V में समाविष्ट धारणा उपबंध को 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के स्पष्टीकरण VI में समाविष्ट तत्समान उपबंध में विस्तारित किया गया, ताकि किसी ऐसे मामले को भी आच्छादित किया जा सके, जिसमें लोग सद्भावी

किसी ऐसे निजी या लोक अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी करते हैं, जिसका दावा जनसामान्य के लाभार्थ किया जाता है । जब 1885 का पूर्ववर्ती वाद संस्थित कराया गया था, तब स्पष्टीकरण V किसी ऐसी स्थिति में लागू नहीं होता था, जिसमें लोग निजी अधिकार से भिन्न लोक अधिकार के संबंध में मुकदमेबाजी कर सकें ।

441. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. पारासरन ने दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों में ऐसे उपबंध समाविष्ट हैं, जो प्रक्रिया के मामलों से संबंधित हैं, जब कि अन्य उपबंध सारभूत मामलों पर विचार करते हैं (देखें **दुर्गेश शर्मा** बनाम **जयश्री**[1] वाला मामला) । उदाहरण के लिए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी वाद में पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील फाइल करने का अधिकार सारभूत अधिकार है और यह अधिकार उस विधि द्वारा शासित होगा, जो वाद संस्थित कराए जाने की तारीख पर अभिभावी थी । इसलिए, **गरीकपाटी वीराया** बनाम **एन. सुबइय्या चौधरी**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया :–

> "23... (iii) वाद संस्थित कराए जाने का परिणाम यह होता है कि तत्समय प्रवृत्त अपील के समस्त अधिकार वाद की पार्टियों के लिए वाद की शेष अवधि के लिए परिरक्षित हो जाते हैं ।
>
> (iv) अपील का अधिकार निहित अधिकार होता है और उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने का अधिकार वाद के पक्षों को उद्भूत होता है और उस तारीख से विद्यमान होता है, जिस तारीख से वाद आरंभ होता है और यद्यपि वास्तव में इस अधिकार का प्रयोग तब किया जा सकता है, जब प्रतिकूल निर्णय पारित किया जाता है और तब यह अधिकार उस विधि द्वारा शासित होता है, जो वाद या कार्यवाही संस्थित कराए जाने की तारीख पर अभिभावी होती है और उस विधि द्वारा शासित नहीं होता, जो विनिश्चय पारित किए जाने की तारीख पर या अपील फाइल किए जाने की तारीख पर अभिभावी होती है ।
>
> (v) अपील का यह निहित अधिकार केवल पश्चात्वर्ती

[1] (2008) 9 एस. सी. सी. 648.

[2] [1957] एस. सी. आर. 488.

अधिनियमितियों द्वारा वापस लिया जा सकता है, यदि कोई पश्चात्वर्ती अधिनियमिति अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक अभिप्राय द्वारा ऐसा उपबंध करती है, अन्यथा नहीं ।"

श्री के. पारासरन ने दलील दी कि 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के स्पष्टीकरण V द्वारा पूर्व आदेश (res judicata) की प्रयोज्यता को ऐसे मामलों में अपवर्जित कर दिया गया, जहां पूर्ववर्ती वाद जनसामान्य और अन्य लोगों के लिए किसी सार्वजनिक अधिकार का दावा करते हुए मुकदमेबाजी के प्रयोजनार्थ संस्थित कराया गया था ।

न्यायमूर्ति सुधीर अग्रवाल ने इस निवेदन को अस्वीकृत कर दिया कि 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता को पूर्व आदेश (res judicata) के सिद्धांतों की प्रयोज्यता का विश्लेषण करते हुए लागू किया जाना चाहिए । तथापि, इस आधार पर कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता लागू होगी, विद्वान् न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि 1885 का वाद और इस वाद में न्यायिक आयुक्त द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष पूर्व आदेश (res judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं होंगे ।

श्री के. पारासरन के निवेदन आवश्यक रूप से इन तथ्यों पर आधारित हैं – उनके अनुसार 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 का स्पष्टीकरण V (जो तत्समय लागू था, जब 1885 का वाद संस्थित कराया गया था) लागू था, जब पूर्ववर्ती वाद में सार्वजनिक रूप से अन्य लोगों के निजी अधिकार के आधार पर मुकदमेबाजी की जा रही थी । इसलिए, सार्वजनिक रूप से अन्य लोगों के अधिकार का दावा करते हुए पश्चात्वर्ती वाद पूर्व आदेश (res judicata) के सिद्धांत द्वारा बाधित नहीं है, जैसाकि स्पष्टीकरण V में समाविष्ट है । इस स्पष्टीकरण की परिधि को दूसरों के साथ समान रूप से सार्वजनिक और साथ ही निजी अधिकार पर आधारित दावे को आच्छादित करते हुए धारा 11 को 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में स्पष्टीकरण VI को प्रस्तावित करते हुए विस्तारित किया गया था । श्री के. परासरन ने दलील दी कि यह उपबंध, जिसको स्पष्टीकरण VI में प्रस्तावित किया गया है, का अर्थान्वयन यह नहीं हो सकता कि किसी ऐसे वाद को वर्जित कर दिया जाए, जो 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रवर्तन के पश्चात् किसी ऐसे वाद में न्यायनिर्णयन के आधार पर संस्थित कराया गया हो, जो

1885 में संस्थित कराया गया था, जब 1882 की सिविल प्रक्रिया संहिता लागू थी । उनके निवेदन के अनुसार यह प्रक्रिया का मामला होगा, किंतु यदि पूर्व आदेश (res judicata) का वर्जन लागू होगा, तो किसी पक्ष को उद्भूत सारभूत अधिकार को छीन लेगा, परिणामस्वरूप, जब तक कि 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता में भूतलक्षी प्रभाव से किसी सार्वजनिक अधिकार का दावा करने वाले वाद में पूर्व आदेश (res judicata) का सिद्धांत लागू किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई सुव्यक्त अनुध्यापन उपलब्ध न हो, 1885 में संस्थित वाद 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के स्पष्टीकरण VI के अर्थान्तर्गत वर्जन की परिधि के भीतर नहीं आ सकता ।

वर्तमान कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ यह वास्तव में आवश्यक नहीं है कि श्री के. पारासरन द्वारा किए गए इस निवेदन का अत्यंत विस्तारपूर्वक विश्लेषण मामले पर किसी भी दृष्टिकोण से किया जाए, यह स्पष्ट है कि 1885 का वाद 1882 की संहिता की धारा 13 के उपबंधों या 1908 की संहिता की धारा 11 की प्रयोज्यता के बाबत पूर्व आदेश (res judicata) की भांति क्रियान्वित नहीं होगा । 1885 के पूर्ववर्ती वाद में किए गए अभिवचनों और निकाले गए निष्कर्षों से यह दर्शित होता है कि महंत रघुबर दास केवल उस अधिकार का दावा दृढ़तापूर्वक कर रहे थे, जो उनका व्यक्तिगत अधिकार था । पूर्ववर्ती वाद प्रतिनिधिक हैसियत में संस्थित नहीं कराया गया था; उस वाद में विरचित विवाद्यक और ईप्सित अनुतोष भिन्न थे और इसलिए वे उसी वाद के गुण (properties) थे ।

शेष आगामी अंक में.......

<u>संसद् के अधिनियम</u>

अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 2001

(2001 का अधिनियम संख्यांक 45)

[14 सितम्बर, 2001]

अधिवक्ताओं के फायदे के लिए एक कल्याण निधि का गठन करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के बावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 2001 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा नियत करे ; और इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और ऐसे किसी उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रति निर्देश का किसी राज्य के संबंध में यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस राज्य में उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रति निर्देश है ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अधिवक्ता" से कोई ऐसा अधिवक्ता अभिप्रेत है जिसका नाम अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) की धारा 17 के अधीन किसी राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा तैयार की गई और रखी गई नामावली में दर्ज किया गया है और जो किसी राज्य विधिज्ञ संगम या राज्य अधिवक्ता संगम का सदस्य है ;

(ख) "समुचित सरकार" से अभिप्रेत है, –

(i) किसी राज्य की विधिज्ञ परिषद् की नामावली में सम्मिलित अधिवक्ताओं की दशा में राज्य सरकार ;

(ii) किसी संघ राज्यक्षेत्र की विधिज्ञ परिषद् की नामावली में सम्मिलित अधिवक्ताओं की दशा में केन्द्रीय सरकार ;

(ग) "विधि व्यवसाय बंद किया जाना" से अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) की धारा 26क के अधीन राज्य नामावली से किसी अधिवक्ता के नाम का हटाया जाना अभिप्रेत है ;

(घ) "अध्यक्ष" से धारा 4 की उपधारा (3) के खंड (क) में निर्दिष्ट न्यासी समिति का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ङ) "चार्टर्ड अकाउंटेंट" से चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 (1949 का 38) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथापरिभाषित ऐसा चार्टर्ड अकाउंटेंट अभिप्रेत है जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय का प्रमाणपत्र प्राप्त किया हो ;

(च) "आश्रितों" से निधि के किसी सदस्य के पति या पत्नी, माता-पिता या अवयस्क संतान अभिप्रेत है ;

(छ) "निधि" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित अधिवक्ता कल्याण निधि अभिप्रेत है ;

(ज) "बीमाकर्ता" का वही अर्थ है जो बीमा अधिनियम, 1938 (1938 का 4) की धारा 2 के खंड (9) में है ;

(झ) "निधि का सदस्य" से निधि के फायदों के लिए सम्मिलित ऐसा अधिवक्ता अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन उसके सदस्य के रूप में बना रहता है ;

(ञ) "अधिसूचना" से समुचित सरकार के राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है और "अधिसूचित" पद का तदनुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ट) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्‌वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ठ) "अनुसूची" से इस अधिनियम की अनुसूची अभिप्रेत है ;

(ड) "अनुसूचित बैंक" का वही अर्थ है जो भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 (1934 का 2) की धारा 2 के खंड (ङ) में है ;

(ढ) "स्टाम्प" से धारा 26 के अधीन मुद्रित और वितरित अधिवक्ता कल्याण निधि स्टाम्प अभिप्रेत है ;

(ण) "राज्य" से संविधान की पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट राज्य अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत संघ राज्यक्षेत्र भी है ;

(त) "राज्य अधिवक्ता संगम" से धारा 16 के अधीन किसी राज्य की विधिज्ञ परिषद् द्‌वारा मान्यताप्राप्त उस राज्य में कोई अधिवक्ता संगम अभिप्रेत है ;

(थ) "राज्य विधिज्ञ संगम" से धारा 16 के अधीन किसी राज्य में, उस राज्य की विधिज्ञ परिषद् द्‌वारा मान्यताप्राप्त अधिवक्ताओं का संगम अभिप्रेत है ;

(द) "राज्य विधिज्ञ परिषद्" से अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) की धारा 3 में निर्दिष्ट कोई विधिज्ञ परिषद् अभिप्रेत है ;

(ध) "विधि व्यवसाय का निलंबन" से अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय का स्वैच्छिक निलंबन या अवचार के लिए किसी राज्य विधिज्ञ परिषद् द्‌वारा किसी अधिवक्ता का निलंबन अभिप्रेत है ;

(न) "न्यासी समिति" से धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित अधिवक्ता कल्याण निधि न्यासी समिति अभिप्रेत है ;

(प) "वकालतनामा" के अंतर्गत उपसंजाति ज्ञापन या कोई अन्य दस्तावेज आता है जिसके द्‌वारा कोई अधिवक्ता किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी के समक्ष उपसंजात होने या अभिवाक् करने के लिए सशक्त किया गया है ;

(फ) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं किन्तु अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) में परिभाषित हैं, वही अर्थ होंगे जो क्रमश: उनके उस अधिनियम में हैं ।

अध्याय 2

अधिवक्ता कल्याण निधि का गठन

3. अधिवक्ता कल्याण निधि – (1) समुचित सरकार, एक कल्याण निधि का गठन करेगी जिसका नाम, "अधिवक्ता कल्याण निधि" होगा ।

(2) निधि में निम्नलिखित जमा किया जाएगा :–

(क) धारा 15 के अधीन राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा संदत्त सभी रकमें ;

(ख) राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा किया गया कोई अन्य अभिदाय ;

(ग) भारतीय विधिज्ञ परिषद्, किसी राज्य विधिज्ञ संगम, किसी राज्य अधिवक्ता संगम या अन्य संगम या संस्था या किसी अधिवक्ता या अन्य व्यक्ति द्वारा निधि को किया गया कोई स्वैच्छिक संदान या अभिदाय ;

(घ) कोई ऐसा अनुदान जो इस निमित्त किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा निधि को किया जाए ;

(ङ) धारा 12 के अधीन उधार ली गई कोई राशि ;

(च) धारा 18 के अधीन संगृहीत सभी राशियां ;

(छ) निधि के किसी सदस्य की मृत्यु पर, किसी समूह बीमा पालिसी के अधीन भारतीय जीवन बीमा निगम या किसी अन्य बीमाकर्ता से प्राप्त सभी राशियां ;

(ज) निधि के सदस्यों की समूह बीमा पालिसियों की बाबत भारतीय जीवन बीमा निगम या किसी अन्य बीमाकर्ता से प्राप्त कोई लाभ या लाभांश या प्रतिदाय ;

(झ) निधि के किसी भाग से किए गए किसी विनिधान पर कोई ब्याज या लाभांश या अन्य प्रत्यागम ;

(ञ) धारा 26 के अधीन स्टांपों के विक्रय द्वारा संगृहीत सभी राशियां ।

(3) उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट राशि का संदाय या उनका संग्रहण ऐसे अभिकरणों द्वारा, ऐसे अंतरालों पर और ऐसी रीति से किया जाएगा, जो विहित की जाए ।

अध्याय 3

न्यासी समिति की स्थापना

4. न्यासी समिति की स्थापना – (1) ऐसी तारीख से जो समुचित सरकार, अधिसूचना द्वारा, इस निमित्त नियत करे, एक न्यासी समिति की स्थापना की जाएगी जिसका नाम, "अधिवक्ता कल्याण निधि न्यासी समिति" होगा ।

(2) न्यासी समिति एक निगमित निकाय होगी जिसका शाश्वत उत्तराधिकर और एक सामान्य मुद्रा होगी और जिसे संपत्ति का अर्जन, धारण और व्ययन करने की शक्ति होगी और जो उक्त नाम से वाद ला सकेगी और उसके विरुद्ध वाद लाया जा सकेगा ।

(3) न्यासी समिति निम्नलिखित से मिलकर बनेगी -

(क) किसी राज्य का महाधिवक्ता	– अध्यक्ष, पदेन :

परंतु जहां किसी राज्य का कोई महाधिवक्ता नहीं है वहां समुचित सरकार किसी वरिष्ठ अधिवक्ता को अध्यक्ष के रूप में नामनिर्दिष्ट करेगी ;

(ख) समुचित सरकार के अपने विधि विभाग या मंत्रालय का सचिव	– सदस्य, पदेन ;

(ग) समुचित सरकार के अपने गृह विभाग या मंत्रालय का सचिव	– सदस्य, पदेन ;
(घ) राज्य विधिज्ञ परिषद् का अध्यक्ष	– सदस्य, पदेन ;
(ङ) सरकारी प्लीडर या लोक अभियोजक जो समुचित सरकार द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाए	– सदस्य, पदेन ;
(च) दो अधिवक्ता, जो राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे	– सदस्य, पदेन ;
(छ) राज्य विधिज्ञ परिषद् का सचिव	– सदस्य, पदेन ।

(4) उपधारा (3) के खंड (क) के परन्तुक के अधीन नामनिर्दिष्ट अध्यक्ष, पद ग्रहण करने की तारीख से तीन वर्ष से अनधिक अवधि के लिए पद धारण करेगा ।

(5) उपधारा (3) के खंड (ङ) या खंड (च) के अधीन नामनिर्दिष्ट न्यासी समिति का प्रत्येक सदस्य पद ग्रहण करने की तारीख से तीन वर्ष से अनधिक अवधि के लिए पद धारण करेगा ।

5. न्यासी समिति के अध्यक्ष या सदस्य की निरर्हताएं और उसका हटाया जाना – (1) समुचित सरकार, न्यासी समिति के अध्यक्ष या किसी ऐसे सदस्य को पद से हटाएगी –

(क) जो अनुन्मोचित दिवालिया है या किसी समय इस रूप में न्यायनिर्णीत किया गया है ; या

(ख) जो न्यासी समिति के अध्यक्ष या सदस्य के रूप में कार्य करने के लिए शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो गया है ; या

(ग) जो किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है जिसमें समुचित सरकार की राय में नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(घ) जिसने ऐसे वित्तीय या अन्य हित अर्जित कर लिए हैं जिससे न्यासी समिति के अध्यक्ष या सदस्य के रूप में उसके कृत्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है ; या

(ङ) जिसने अपने पद का इस प्रकार दुरुपयोग किया है जिससे उसका पद पर बने रहना लोकहित के लिए हानिकर होगा ; या

(च) जो किसी समय न्यासी समिति के लगातार तीन से अधिक अधिवेशनों में न्यासी समिति की इजाजत के बिना अनुपस्थित है या रहा है :

परंतु न्यासी समिति, पर्याप्त आधारों पर ऐसे अध्यक्ष या सदस्य की अनुपस्थिति माफ कर सकेगी ।

(2) न्यासी समिति का अध्यक्ष या कोई सदस्य उपधारा (1) के खंड (घ) या खंड (ङ) के अधीन तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो ।

6. न्यासी समिति के नामनिर्दिष्ट अध्यक्ष और सदस्यों द्वारा पद त्याग और आकस्मिक रिक्ति का भरा जाना – (1) धारा 4 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट अध्यक्ष या उस धारा की उपधारा (3) के खंड (ङ) के अधीन नामनिर्देशित सदस्य, समुचित सरकार की लिखित में तीन मास की सूचना देकर अपना पद त्याग सकेगा और समुचित सरकार द्वारा ऐसा त्यागपत्र स्वीकार कर लिए जाने पर ऐसा अध्यक्ष या सदस्य अपना पद रिक्त कर देगा ।

(2) धारा 4 की उपधारा (3) के खंड (च) के अधीन नामनिर्देशित कोई सदस्य, राज्य विधिज्ञ परिषद् को लिखित में तीन मास की सूचना देकर अपना पद त्याग सकेगा और राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा ऐसा त्यागपत्र स्वीकार कर लिए जाने पर ऐसा सदस्य अपना पद रिक्त कर देगा ।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट ऐसे अध्यक्ष और किसी सदस्य के जिसने पद त्याग किया है, पद में कोई आकस्मिक रिक्ति, यथाशक्य

शीघ्र समुचित सरकार द्वारा भरी जा सकेगी और इस प्रकार नामनिर्देशित अध्यक्ष या सदस्य, केवल तब तक पद धारण करेगा जब तक कि ऐसा अध्यक्ष या वह सदस्य, जिसके स्थान पर उसका नामनिर्देशन किया गया है, पद धारण करने का हकदार होता, यदि रिक्ति न हुई होती ।

(4) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी सदस्य के, जिसने पद त्याग किया है, पद में कोई आकस्मिक रिक्ति, यथाशक्य शीघ्र, राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा भरी जा सकेगी और इस प्रकार नामनिर्देशित सदस्य, तब तक पद धारण करेगा जब तक कि वह सदस्य जिसके स्थान पर उसका नामनिर्देशन किया गया है, पद धारण करने का हकदार होता, यदि रिक्ति न हुई होती ।

7. रिक्तियों आदि से न्यासी समिति की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना – न्यासी समिति का कोई कार्य या कार्यवाही, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) न्यासी समिति में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) न्यासी समिति के अध्यक्ष या सदस्य के रूप में कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के नामनिर्देशन में कोई त्रुटि या अनियमितता है ; या

(ग) न्यासी समिति का प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है जो मामले के गुणावगुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

8. न्यासी समिति के अधिवेशन – (1) न्यासी समिति प्रत्येक तीन कलैंडर मास में कम-से-कम एक बार अधिवेशन करेगी और इस अधिनियम तथा तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन कारबार के संव्यवहार के लिए प्रत्येक वर्ष कम-से-कम ऐसे चार अधिवेशन किए जाएंगे ।

(2) न्यासी समिति के तीन सदस्यों से न्यासी समिति के किसी अधिवेशन की गणपूर्ति होगी ।

(3) न्यासी समिति का अध्यक्ष या, यदि वह किसी अन्य कारण से न्यासी समिति के अधिवेशन में उपस्थित होने में असमर्थ है, तो अधिवेशन में उपस्थित न्यासी समिति के सदस्यों द्वारा अपने में से निर्वाचित कोई अन्य सदस्य, अधिवेशन की अध्यक्षता करेगा ।

(4) ऐसे सभी प्रश्न जो न्यासी समिति के अधिवेशन में आते हैं, उपस्थित और मतदान करने वाले न्यासी समिति के सदस्यों के बहुमत द्वारा विनिश्चित किए जाएंगे और मतों के समान होने की दशा में अध्यक्ष का या उसकी अनुपस्थिति में न्यासी समिति की अध्यक्षता करने वाले सदस्य का, निर्णायक मत होगा ।

9. न्यासी समिति के नामनिर्दिष्ट अध्यक्ष और सदस्यों को यात्रा और दैनिक भत्ते – धारा 4 की उपधारा (4) में निर्दिष्ट अध्यक्ष और उस धारा की उपधारा (3) के उपखंड (ङ) और उपखंड (च) में निर्दिष्ट न्यासी समिति के सदस्य ऐसे यात्रा और दैनिक भत्ते संदत्त किए जाने के हकदार होंगे, जो राज्य विधिज्ञ परिषद् के सदस्यों को ग्राह्य हैं ।

10. निधि का निहित होना और उसका उपयोजन – निधि इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए और उसके प्रयोजनों के लिए न्यासी समिति में निहित होगी और उसके द्वारा धारित तथा उपयोजित की जाएगी ।

11. न्यासी समिति के कृत्य – (1) इस अधिनियम और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए न्यासी समिति निधि का प्रशासन करेगी ।

(2) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना न्यासी समिति, –

(क) निधि की रकमों और आस्तियों को न्यास में धारण करेगी ;

(ख) निधि में सदस्यों के रूप में प्रवेश या पुन: प्रवेश के लिए आवेदन प्राप्त करेगी और ऐसे आवेदनों का उनकी प्राप्ति की तारीख से नब्बे दिन के भीतर निपटान करेगी ;

(ग) यथास्थिति, निधि के सदस्यों, उनके नामनिर्देशितियों या

विधिक वारिसों से निधियों से संदाय के लिए आवेदन प्राप्त करेगी, ऐसी जांच करेगी जो वह आवश्यक समझे और आवेदनों को उनकी प्राप्ति की तारीख से पांच मास के भीतर निपटाएगी ;

(घ) न्यासी समिति की कार्यवृत्त पुस्तक में, आवेदनों के संबंध में अपने विनिश्चय अभिलिखित करेगी ;

(ङ) निधि के सदस्यों या, यथास्थिति, उनके नामनिर्देशितियों या विधिक वारिसों की अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट दरों पर रकमों का संदाय करेगी ;

(च) समुचित सरकार और राज्य विधिज्ञ परिषद् को ऐसी कालिक और वार्षिक रिपोर्टें भेजेगी जो विहित की जाएं ;

(छ) आवेदकों को रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा या इलेक्ट्रानिक पद्धति के माध्यम से, निधि में सदस्यों के रूप में प्रवेश या पुनः प्रवेश के लिए आवेदनों के संबंध में न्यासी समिति के विनिश्चय या निधि के फायदे के दावों को संसूचित करेगी ;

(ज) ऐसे अन्य कार्य करेगी, जो इस अधिनियम के अधीन या तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन किए जाते हैं, या किए जाएं या किए जाने के लिए अपेक्षित हों ।

12. उधार लेना और विनिधान – (1) न्यासी समिति, समुचित सरकार और राज्य विधिज्ञ परिषद् के पूर्व अनुमोदन से, समय-समय पर, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए अपेक्षित राशि उधार ले सकेगी ।

(2) न्यासी समिति, सभी धनों और प्राप्तियों को, जो निधि का भाग हैं, किसी अनुसूचित बैंक में जमा करेगी या उसका समुचित सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी निगम की ऋण लिखतों में विनिधान करेगी या समुचित सरकार द्वारा प्लवित ऋणों में या ऐसी अन्य रीति में, जो राज्य विधिज्ञ परिषद्, समय-समय पर समुचित सरकार के पूर्व अनुमोदन से निदेश दे, विनिधान करेगी ।

(3) इस अधिनियम के अधीन देय और संदेय सभी रकम और निधि के प्रबंध और प्रशासन से संबंधित सभी व्यय निधि में से संदत्त किए जाएंगे ।

13. लेखा और लेखापरीक्षा – (1) न्यासी समिति उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगी और लेखाओं का वार्षिक विवरण और वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में तैयार करेगी, जो विहित की जाए ।

(2) न्यासी समिति के लेखाओं की वार्षिक रूप से राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा नियुक्त चार्टर्ड अकाउन्टेंट द्वारा लेखापरीक्षा की जाएगी ।

(3) चार्टर्ड अकाउन्टेंट द्वारा लेखापरीक्षा किया गया न्यासी समिति का लेखा उसकी लेखापरीक्षा रिपोर्ट के साथ उस समिति द्वारा राज्य विधिज्ञ परिषद् को भेजा जाएगा और राज्य विधिज्ञ परिषद् उसके संबंध में न्यासी समिति को ऐसे निदेश जारी कर सकेगी, जो वह ठीक समझे ।

(4) न्यासी समिति, उपधारा (3) के अधीन राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा जारी निदेशों का अनुपालन करेगी ।

(5) न्यासी समिति, निधि में से लेखापरीक्षा के लिए ऐसे प्रभारों का संदाय करेगी जो राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा नियत किए जाएं ।

14. सचिव की शक्तियां और कर्तव्य – न्यासी समिति का सचिव, –

(क) न्यासी समिति का मुख्य कार्यकारी प्राधिकारी होगा और उसके विनिश्चयों को कार्यान्वित करने के लिए दायी होगा ;

(ख) न्यासी समिति की ओर से और उसके विरुद्ध, सभी वादों और कार्यवाहियों में, न्यासी समिति का प्रतिनिधित्व करेगा ;

(ग) न्यासी समिति के सभी विनिश्चयों और विलेखों को अपने हस्ताक्षर से प्राधिकृत करेगा ;

(घ) अध्यक्ष के साथ संयुक्त रूप से न्यासी समिति के बैंक खाते का संचालन करेगा ;

(ङ) न्यासी समिति के अधिवेशन बुलाएगा और ऐसे अधिवेशनों के कार्यवृत्त तैयार करेगा ;

(च) सभी आवश्यक अभिलेखों और जानकारी के साथ न्यासी समिति के अधिवेशनों में उपस्थित होगा ;

(छ) ऐसे प्ररूप, रजिस्टर और अन्य अभिलेख रखेगा, जो समय-समय पर विहित किए जाएं और न्यासी समिति से संबंधित सभी पत्र व्यवहार करेगा ;

(ज) वित्तीय वर्ष के दौरान न्यासी समिति द्वारा किए गए कारबार का वार्षिक विवरण तैयार करेगा ;

(झ) ऐसे अन्य कार्य करेगा जो न्यासी समिति और राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा निदेशित हैं या किए जाएं ।

15. राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा कतिपय धनों का निधि में संदाय – राज्य विधिज्ञ परिषद्, निधि में वार्षिक रूप से ऐसी रकम का संदाय करेगी जो अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) की धारा 24 के खंड (च) के अधीन प्राप्त की गई नामांकन फीस के बीस प्रतिशत के बराबर हो ।

अध्याय 4

अधिवक्ताओं के किसी संगम की मान्यता

16. अधिवक्ताओं के किसी संगम की राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा मान्यता – (1) अधिवक्ताओं का कोई संगम, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से पूर्व एक संगम के रूप में रजिस्ट्रीकृत है, ऐसी तारीख से पूर्व, जो राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा इस निमित्त अधिसूचित की जाए, मान्यता के लिए राज्य विधिज्ञ परिषद् को ऐसे प्ररूप में, जो विहित किया जाए, आवेदन कर सकेगा ।

(2) अधिवक्ताओं का कोई संगम, चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो, जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से या उसके पश्चात् एक संगम के रूप में रजिस्ट्रीकृत है, संगम के रूप में अपने रजिस्ट्रीकरण की तारीख से तीन मास के भीतर राज्य विधिज्ञ परिषद् को ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, मान्यता के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन मान्यता के लिए प्रत्येक आवेदन के साथ, –

(क) संगम के नियमों और उपनियमों की एक प्रति होगी ;

(ख) संगम के पदधारियों के नाम और पते होंगे ;

(ग) संगम के सदस्यों की एक सूची होगी, जिसमें प्रत्येक सदस्य का नाम, पता, उम्र, राज्य विधिज्ञ परिषद् की नामांकन संख्या और नामांकन की तारीख तथा व्यवसाय का साधारण स्थान अंतर्विष्ट होगा ।

(4) राज्य विधिज्ञ परिषद् ऐसी जांच के पश्चात् जो वह आवश्यक समझे, संगम को मान्यता दे सकेगी और मान्यता का प्रमाणपत्र, ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, जारी कर सकेगी ।

(5) उपधारा (4) के अधीन राज्य विधिज्ञ परिषद् का किसी संगम की मान्यता के बारे में किसी भी विषय पर विनिश्चय अंतिम होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में, "रजिस्ट्रीकृत" से सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत या रजिस्ट्रीकृत समझा गया अभिप्रेत है ।

17. राज्य विधिज्ञ संगमों और राज्य अधिवक्ता संगमों के कर्तव्य – (1) प्रत्येक राज्य विधिज्ञ संगम और राज्य अधिवक्ता संगम, प्रत्येक वर्ष 15 अप्रैल को या उससे पूर्व राज्य विधिज्ञ परिषद् को उस वर्ष की 31 मार्च को यथाविद्यमान अपने सदस्यों की सूची भेजेगा ।

(2) प्रत्येक राज्य विधिज्ञ संगम और राज्य अधिवक्ता संगम, राज्य विधिज्ञ परिषद् को –

(क) सदस्यता में किसी परिवर्तन की, जिसके अंतर्गत प्रवेश और पुन: प्रवेश सम्मिलित है, ऐसे परिवर्तन के तीस दिन के भीतर सूचना देगा ;

(ख) अपने सदस्यों में से किसी की मृत्यु या व्यवसाय की अन्यथा समाप्ति की या व्यवसाय के स्वैच्छिक निलंबन की घटना की तारीख से तीस दिन के भीतर, सूचना देगा ;

(ग) ऐसे अन्य विषय की सूचना देगा, जो राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा समय-समय पर अपेक्षित हो ।

अध्याय 5

सदस्यता और अधिवक्ता कल्याण निधि में से संदाय

18. निधि की सदस्यता – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व, राज्य के किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकरण में व्यवसायरत प्रत्येक अधिवक्ता, जो उस राज्य में किसी राज्य विधिज्ञ संगम या राज्य अधिवक्ता संगम का सदस्य है, इस अधिनियम के प्रारंभ से छह मास के भीतर न्यासी समिति को निधि के सदस्य के रूप में प्रवेश के लिए, ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, आवेदन करेगा ।

(2) प्रत्येक व्यक्ति जो, –

(क) इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् राज्य विधिज्ञ परिषद् की नामावली में अधिवक्ता के रूप में सम्मिलित किया गया है ;

(ख) राज्य के किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकरण में व्यवसाय कर रहा है और जो उस राज्य में राज्य विधिज्ञ संगम का या राज्य अधिवक्ता संगम का सदस्य है,

अधिवक्ता के रूप में अपने नामांकन के छह मास के भीतर न्यासी समिति को निधि के सदस्य के रूप में प्रवेश के लिए ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, आवेदन करेगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी आवेदन की प्राप्ति पर न्यासी समिति, ऐसी जांच करेगी जो वह उचित समझे और या तो आवेदक को निधि में प्रवेश देगी या अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से आवेदन को अस्वीकार कर देगी :

परंतु आवेदन को अस्वीकार करने वाला कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि आवेदक को सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो ।

(4) प्रत्येक आवेदक, आवेदन के साथ न्यासी समिति के खाते में दो सौ रुपए की आवेदन फीस का संदाय करेगा ।

(5) प्रत्येक अधिवक्ता, जो निधि का सदस्य है, निधि में प्रत्येक वर्ष 31 मार्च को या उससे पूर्व पचास रुपए के वार्षिक अभिदान का संदाय करेगा :

परंतु प्रत्येक अधिवक्ता, जिसने उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन आवेदन किया है अपने पहले वार्षिक अभिदान का निधि में सदस्य बनने के तीन मास के भीतर संदाय करेगा :

परंतु यह और कि कोई ज्येष्ठ अधिवक्ता, एक हजार रुपए का वार्षिक अभिदान करेगा ।

(6) निधि का ऐसा कोई सदस्य, जो किसी वर्ष के लिए वार्षिक अभिदाय का उस वर्ष के 31 मार्च से पूर्व संदाय करने में असफल रहा है, निधि की सदस्यता से हटाए जाने के लिए दायी होगा ।

(7) निधि के किसी सदस्य को, जिसे उपधारा (6) के अधीन निधि की सदस्यता से हटाया गया है, ऐसे हटाए जाने की तारीख से छह मास के भीतर दस रुपए की पुन: प्रवेश फीस के साथ बकायों का संदाय करने पर निधि में पुन: प्रवेश दिया जा सकेगा ।

(8) निधि का प्रत्येक सदस्य, निधि की सदस्यता में प्रवेश के समय अपने आश्रितों में से एक या अधिक का नामांकन, उसकी मृत्यु की दशा में इस अधिनियम के अधीन सदस्य को संदेय किसी राशि को प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करते हुए, करेगा ।

(9) यदि निधि का कोई सदस्य, उपधारा (8) के अधीन एक से अधिक व्यक्तियों का नामांकन करता है तो वह नामांकन में नामनिर्देशितियों में से प्रत्येक को संदेय रकम या अंश विनिर्दिष्ट करेगा ।

(10) निधि का कोई सदस्य किसी भी समय न्यासी समिति को लिखित में सूचना भेजकर नामांकन रद्द कर सकेगा ।

(11) निधि का प्रत्येक सदस्य, जिसने उपधारा (10) के अधीन अपना नामांकन रद्द किया है, पांच रुपए की रजिस्ट्रीकरण फीस के साथ नया नामांकन करेगा ।

(12) निधि का प्रत्येक ऐसा सदस्य, जिसका नाम अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) की धारा 26क के अधीन राज्य की नामावली से हटा दिया गया है या जो स्वेच्छा, व्यवसाय निलंबित करता है, ऐसे हटाए जाने या निलंबन के पन्द्रह दिन के भीतर ऐसे हटाए जाने या निलंबन की जानकारी न्यासी समिति को देगा और यदि निधि का कोई सदस्य बिना किसी पर्याप्त कारण के ऐसा करने में असफल रहता

है तो न्यासी समिति ऐसे सिद्धांतों के अनुसार जो विहित किए जाएं इस अधिनियम के अधीन उस सदस्य को संदेय रकम को कम कर सकेगी ।

19. निधि के किसी सदस्य को अनुग्रह अनुदान – न्यासी समिति, निधि के किसी सदस्य द्वारा उसे किए गए आवेदन पर और दावे की सत्यता के बारे में अपना समाधान करने के पश्चात् निम्नलिखित आधार पर निधि में से ऐसे सदस्य को अनुग्रह अनुदान अनुज्ञात कर सकेगी, –

(क) उसके अस्पताल में भर्ती होने की दशा में या बड़ी शल्य क्रिया की दशा में ; या

(ख) यदि वह यक्ष्मा, कुष्ठरोग, लकवा, कैंसर, विकृतचित्त या ऐसी ही अन्य गंभीर बीमारी या नि:शक्तता से पीड़ित है ।

20. पुनर्विलोकन – न्यासी समिति, स्वप्रेरणा से या किसी हितबद्ध व्यक्ति से प्राप्त आवेदन पर, इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन उसके द्वारा आदेश पारित किए जाने के नब्बे दिन के भीतर, ऐसे आदेश का पुनर्विलोकन कर सकेगी, यदि वह किसी भूल के अधीन पारित किया गया था, चाहे वह तथ्य की हो या विधि की या किसी तात्विक तथ्य की उपेक्षा से हो :

परंतु न्यासी समिति, इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला ऐसा कोई आदेश तब तक पारित नहीं करेगी जब तक कि ऐसे व्यक्ति को सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो ।

21. व्यवसाय के बंद करने पर रकम का संदाय – (1) प्रत्येक अधिवक्ता को, जो पांच वर्ष से अन्यून अवधि के लिए निधि का सदस्य रहा है, अपना व्यवसाय बंद करने पर, अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट दर पर रकम का संदाय किया जाएगा :

परंतु जहां न्यासी समिति का यह समाधान हो गया है कि निधि के किसी सदस्य ने ऐसी निधि के सदस्य के रूप में उसके प्रवेश की तारीख से पांच वर्ष की अवधि के भीतर अपना व्यवसाय किसी स्थायी नि:शक्तता के कारण बंद किया है वहां न्यासी समिति ऐसे सदस्य को अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट दर पर रकम का संदाय कर सकेगी ।

(2) जहां निधि के किसी सदस्य की मृत्यु उपधारा (1) के अधीन संदेय रकम को प्राप्त करने से पूर्व हो जाती है वहां, यथास्थिति, उसके नामनिर्देशिती या विधिक वारिस को निधि के मृतक सदस्य को संदेय रकम संदत्त की जाएगी ।

22. निधि में सदस्य के हित के अन्य संक्रामण, कुर्की, आदि पर निर्बन्धन – (1) निधि में किसी सदस्य के हित या निधि के किसी सदस्य या उसके नामनिर्देशिती या विधिक वारिस का निधि से कोई रकम पाने का अधिकार, समनुदिष्ट, अन्य संक्रांत या प्रभारित नहीं किया जाएगा और किसी न्यायालय, अधिकरण या अन्य प्राधिकारी की किसी डिक्री या आदेश के अधीन कुर्की के लिए दायी नहीं होगा ।

(2) कोई लेनदार, निधि के या निधि के किसी सदस्य या उसके नामनिर्देशिती या विधिक वारिस के उसमें किसी हित के विरुद्ध कार्यवाही करने का हकदार नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "लेनदार" के अंतर्गत तत्समय प्रवृत्त दिवालियापन से संबंधित विधि के अधीन नियुक्त राज्य या कोई शासकीय समनुदेशिती या शासकीय रिसीवर भी आता है ।

23. आय-कर से छूट – आय-कर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) या आय, लाभ या अभिलाभ पर कर से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य अधिनियमिति में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन गठित निधि में उद्भूत आय को आय-कर से छूट प्राप्त होगी ।

24. निधि के सदस्यों के लिए समूह जीवन बीमा और अन्य फायदे – न्यासी समिति, निधि के सदस्यों के कल्याण के लिए, –

(क) भारतीय जीवन बीमा निगम या किसी अन्य बीमाकर्ता से निधि के सदस्यों के जीवन के लिए समूह बीमा पालिसियां प्राप्त करेगी ; या

(ख) निधि के सदस्यों और उनके आश्रितों के लिए चिकित्सीय और शैक्षिक सुविधाओं के लिए ऐसी रीति से उपबंध करेगी जो विहित की जाएं ; या

(ग) निधि के सदस्यों को, पुस्तकें क्रय करने के लिए धन की व्यवस्था करेगी ; या

(घ) निधि के सदस्यों के लिए, सामूहिक सुविधाओं के निर्माण या उनके अनुरक्षण के लिए धन की व्यवस्था करेगी :

परन्तु न्यासी समिति, धारा 18 की उपधारा (5) के अधीन प्राप्त कुल वार्षिक अभिदान का दस प्रतिशत, अधीनस्थ न्यायालयों में विधि व्यवसाय करने वाले निधि के सदस्यों के लिए सामूहिक सुविधाओं के निर्माण या अनुरक्षण पर व्यय करेगी ; या

(ङ) किसी ऐसे अन्य प्रयोजन के लिए निधियों का उपबंध करेगी जो न्यासी समिति द्‌वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं ; या

(च) किन्हीं ऐसे अन्य फायदों के लिए उपबंध करेगी जो विहित किए जाएं ।

25. न्यासी समिति के विनिश्चय या आदेश के विरुद्‌ध अपील – (1) न्यासी समिति के किसी विनिश्चय या आदेश के विरुद्‌ध अपील राज्य विधिज्ञ परिषद्‌ को होगी ।

(2) अपील विहित प्ररूप में होगी और उसके साथ निम्नलिखित होंगे –

(क) उस विनिश्चय या आदेश की प्रति जिसके विरुद्‌ध अपील की गई है ;

(ख) अनुसूचित बैंक की किसी भी शाखा में राज्य विधिज्ञ परिषद्‌ के खाते में पच्चीस रुपए के संदाय के साक्ष्य स्वरूप रसीद ।

(3) जिस विनिश्चय या आदेश के विरुद्‌ध अपील की गई है, उसकी प्राप्ति की तारीख से तीस दिन के भीतर अपील फाइल की जाएगी ।

(4) ऐसी अपील पर राज्य विधिज्ञ परिषद्‌ का विनिश्चय अंतिम होगा ।

अध्याय 6

स्टाम्पों का मुद्रण, वितरण और रद्‌दकरण

26. अधिवक्ता कल्याण निधि स्टाम्पों का राज्य विधिज्ञ परिषद्‌ द्‌वारा मुद्रण और वितरण – (1) समुचित सरकार, राज्य विधिज्ञ परिषद्‌

से इस निमित्त अनुरोध प्राप्त होने पर पांच रुपए मूल्य के या ऐसे अन्य मूल्य के जो विहित किया जाए, अधिवक्ता कल्याण निधि स्टाम्पों का मुद्रण और वितरण करवाएगी जिसमें विहित किए जाने वाले डिजाइन में "अधिवक्ता कल्याण निधि स्टाम्प" अंतर्लिखित होगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक स्टाम्प 2.54 से. मी. x 5.08 से. मी. आकार का होगा जो अधिवक्ताओं को विक्रय किया जाएगा ।

(3) स्टाम्प राज्य विधिज्ञ परिषद् की अभिरक्षा में रहेंगे ।

(4) राज्य विधिज्ञ परिषद् स्टाम्पों के वितरण और विक्रय का नियंत्रण, राज्य विधिज्ञ संगमों और राज्य अधिवक्ता संगमों के माध्यम से करेगी ।

(5) राज्य विधिज्ञ परिषद् राज्य विधिज्ञ संगम और राज्य अधिवक्ता संगम स्टाम्पों के उचित लेखे, विहित किए जाने वाले प्ररूप और रीति में रखेंगे ।

(6) राज्य विधिज्ञ संगम और राज्य अधिवक्ता संगम, राज्य विधिज्ञ परिषद् से उसके मूल्य का संदाय करने के पश्चात्, जिसमें से आनुषंगिक व्ययों के लिए दस प्रतिशत की कटौती की जाएगी, स्टाम्पों का क्रय करेंगे ।

27. वकालतनामों पर स्टाम्प का लगा होना – (1) प्रत्येक अधिवक्ता निम्नलिखित मूल्य के स्टाम्प लगाएगा –

(क) किसी जिला न्यायालय या जिला न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों में उसके द्वारा फाइल किए गए प्रत्येक वकालतनामे पर पांच रुपए का ;

(ख) किसी अधिकरण या अन्य प्राधिकरण या उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में उसके द्वारा फाइल किए गए प्रत्येक वकालतनामे पर दस रुपए का :

परन्तु समुचित सरकार, पच्चीस रुपए से अनधिक मूल्य के स्टाम्प इस उपधारा के अधीन लगाया जाना विहित कर सकेगी :

परन्तु यह और कि समुचित सरकार, किसी जिला न्यायालय या जिला न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों या किसी अधिकरण या अन्य

प्राधिकरण या उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में फाइल किए जाने वाले प्रत्येक वकालतनामे पर भिन्न-भिन्न मूल्यों के स्टाम्पों का लगाया जाना विहित कर सकती है ।

(2) स्टाम्प का मूल्य न तो किसी मामले में "खर्च" होगा और न ही किसी भी दशा में मुवक्किल से लिया जाएगा ।

(3) किसी अधिवक्ता द्वारा उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंधों के किसी उल्लंघन से वह निधि के फायदों से संपूर्णत: या भागत: वंचित हो जाएगा और न्यासी समिति ऐसे उल्लंघन की रिपोर्ट राज्य विधिज्ञ परिषद् को समुचित कार्रवाई किए जाने के लिए करेगी ।

(4) जिला न्यायालय या जिला न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय या किसी अधिकरण या अन्य प्राधिकरण या उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए प्रत्येक वकालतनामे पर लगाई गई प्रत्येक स्टाम्प ऐसी रीति से रद्द की जाएगी जो विहित की जाए ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

28. कतिपय व्यक्तियों का फायदों के लिए पात्र न होना – कोई ज्येष्ठ अधिवक्ता या ऐसा व्यक्ति, जो केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार से पेंशन प्राप्त करता हो, धारा 19 के अधीन अनुग्रह अनुदान या धारा 21 के अधीन उसके द्वारा विधि व्यवसाय को बंद करने पर रकम के संदाय या धारा 24 के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) के अधीन किसी फायदे का हकदार नहीं होगा ।

29. सद्भावपूर्वक किए गए कार्य का संरक्षण – समुचित सरकार या न्यासी समिति या न्यासी समिति के अध्यक्ष या किसी सदस्य या सचिव या राज्य विधिज्ञ परिषद् या किसी व्यक्ति के विरुद्ध ऐसी किसी बात के लिए जो इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन सद्भावपूर्वक की गई है या की जाने के लिए आशयित है, कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं होगी ।

30. सिविल न्यायालयों की अधिकारिता का वर्जन – किसी सिविल न्यायालयों को ऐसे किसी प्रश्न को तय करने, विनिश्चित करने या निपटाने अथवा किसी मामले का अवधारण करने की अधिकारिता नहीं होगी जो इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन न्यासी समिति या राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा तय किया जाना, विनिश्चित किया जाना अथवा निपटाया जाना अपेक्षित है ।

31. साक्षियों को समन करने और साक्ष्य लेने की शक्ति – न्यासी समिति और राज्य विधिज्ञ परिषद् को, इस अधिनियम के अधीन किसी जांच के प्रयोजनार्थ, निम्नलिखित विषयों की बाबत वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय किसी सिविल न्यायालय में निहित हैं, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को हाजिर करवाना या उसकी शपथ पर परीक्षा करना ;

(ख) दस्तावेजों के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;

(ग) शपथ पत्र पर साक्ष्य प्राप्त करना ;

(घ) साक्षियों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ;

(ङ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाए ।

32. अनुसूची 1 और 2 का संशोधन करने की शक्ति – (1) समुचित सरकार, न्यासी समिति की सिफारिश पर और निधि में रकम की उपलभ्यता पर सम्यक् विचार करते हुए, अधिसूचना द्वारा, अनुसूची 1 में विनिर्दिष्ट दरों में संशोधन कर सकती है ।

(2) केन्द्रीय सरकार, जब कभी आवश्यक समझे, अधिसूचना द्वारा अनुसूची 2 में संशोधन कर सकती है ।

33. समुचित सरकार की निदेश जारी करने की शक्ति – (1) इस अधिनियम के पूर्वगामी उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यासी समिति, इस अधिनियम के अधीन शक्तियों का प्रयोग या कृत्यों का निर्वहन करते समय, वृत्तिक और प्रशासनिक विषयों से भिन्न

नीति के प्रश्नों पर, ऐसे निदेशों से आबद्ध होगी जो समुचित सरकार, समय-समय पर, उसे लिखित रूप में दे :

परन्तु न्यासी समिति को, जहां तक व्यवहार्य हो, इस उपधारा के अधीन कोई निदेश दिए जाने से पूर्व अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया जाएगा ।

(2) समुचित सरकार का विनिश्चय, चाहे वह प्रश्न नीति का हो या नहीं, अंतिम होगा ।

34. समुचित सरकार की न्यासी समिति को अधिक्रांत करने की शक्ति – (1) यदि किसी समय समुचित सरकार की यह राय हो कि –

(क) न्यासी समिति के नियंत्रण से परे परिस्थितियों के कारण, वह इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या इसके अधीन उस पर अधिरोपित कृत्यों का निर्वहन या कर्तव्यों का अनुपालन करने में असमर्थ है ; या

(ख) न्यासी समिति ने, समुचित सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन दिए गए किसी निदेश का पालन करने में या इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या इसके अधीन उस पर अधिरोपित कृत्यों का निर्वहन या कर्तव्यों का अनुपालन करने में बार-बार व्यतिक्रम किया है ; या

(ग) ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनसे लोकहित में ऐसा करना आवश्यक हो गया है,

तो समुचित सरकार, अधिसूचना द्वारा और उसमें विनिर्दिष्ट किए जाने वाले कारणों से, न्यासी समिति को छह मास से अनधिक उतनी अवधि के लिए, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाए, अधिक्रांत कर सकेगी और अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से, उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को न्यासी समिति के नियंत्रक के रूप में नियुक्त करेगी :

परन्तु समुचित सरकार, ऐसी कोई अधिसूचना जारी करने से पूर्व, न्यासी समिति को प्रस्थापित अधिक्रमण के विरुद्ध अभ्यावेदन देने के

लिए युक्तियुक्त अवसर देगी और न्यासी समिति के अभ्यावेदनों, यदि कोई हों, पर विचार करेगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन न्यासी समिति का अधिक्रमण करने वाली अधिसूचना के प्रकाशन पर –

(क) न्यासी समिति के अध्यक्ष, सदस्य और सचिव अधिक्रमण की तारीख से ही उस रूप में अपने पदों को रिक्त कर देंगे ;

(ख) वे सभी शक्तियां, कृत्य और कर्तव्य, जो न्यासी समिति द्वारा या उसकी ओर से इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या उसके अधीन प्रयोग या निर्वहन किए जा रहे हों, उपधारा (3) के अधीन न्यासी समिति का पुनर्गठन होने तक, न्यासी समिति के नियंत्रक द्वारा प्रयोग की जाएगी और निर्वहन किए जाएंगे ; और

(ग) न्यासी समिति के स्वामित्व में या नियंत्रणाधीन सभी संपत्तियां और निधि, उपधारा (3) के अधीन न्यासी समिति के पुनर्गठित होने तक, समुचित सरकार में निहित होंगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अधिक्रमण की अवधि के समाप्त होने पर या उससे पूर्व, समुचित सरकार, ऐसी समिति के अध्यक्ष, सदस्यों और सचिव की नई नियुक्ति द्वारा न्यासी समिति का पुनर्गठन करेगी और ऐसी दशा में, ऐसा व्यक्ति, जिसने उपधारा (2) के खंड (क) के अधीन अपना पद रिक्त किया था, पुनर्नियुक्ति के लिए निरर्हित नहीं समझा जाएगा ।

(4) समुचित सरकार, उपधारा (1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना की एक प्रति और इस धारा के अधीन की गई किसी कार्रवाई की पूर्ण रिपोर्ट और वे परिस्थितियां जिनके कारण ऐसी कार्रवाई की गई है, यथास्थिति, संसद् के प्रत्येक सदन या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन, जहां उसके दो सदन हों, या जहां ऐसे विधान-मंडल का एक सदन हो वहां उस सदन के समक्ष शीघ्रतम रखवाएगी ।

35. केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार, जहां समुचित सरकार है, अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के कार्यान्वयन के लिए नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों द्वारा निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) धारा 11 के खंड (च) के अधीन भेजी जाने वाली नियतकालिक और वार्षिक रिपोर्टें ;

(ख) वह प्ररूप और रीति जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के अधीन वार्षिक लेखा विवरण और वार्षिक रिपोर्ट तैयार की जाएगी ;

(ग) धारा 14 के खंड (छ) के अधीन रखे जाने वाले प्ररूप, रजिस्टर और अन्य अभिलेख ;

(घ) वह प्ररूप जिसमें अधिवक्ताओं का कोई संगम, धारा 16 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन राज्य विधिज्ञ परिषद् को मान्यता के लिए आवेदन कर सकेगा ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा धारा 16 की उपधारा (4) के अधीन मान्यता प्रमाणपत्र जारी किया जाएगा ;

(च) वह प्ररूप जिसमें कोई अधिवक्ता, धारा 18 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन निधि के सदस्य के रूप में प्रवेश के लिए आवेदन देगा ;

(छ) वे सिद्धांत जिनके अनुसार निधि के किसी सदस्य को संदेय रकम में से धारा 18 की उपधारा (12) के अधीन कटौती की जाएगी ;

(ज) धारा 24 के खंड (ख) के अधीन निधि के सदस्यों और उनके आश्रितों के लिए चिकित्सीय और शैक्षिक सुविधाएं देने की रीति ;

(झ) धारा 24 के खंड (च) के अधीन दिए जाने वाले अन्य फायदे ;

(ञ) धारा 25 की उपधारा (2) के अधीन अपील का प्ररूप ;

(ट) धारा 26 की उपधारा (1) के अधीन मुद्रित और वितरित किए जाने वाले स्टाम्पों का मूल्य और डिजाइन ;

(ठ) वह प्ररूप और रीति जिसमें धारा 26 की उपधारा (5) के अधीन स्टाम्पों के लेखे रखे जाएंगे ;

(ड) पच्चीस रुपए से अनधिक स्टाम्पों का मूल्य, जो धारा 27 की उपधारा (1) के पहले परन्तुक के अधीन विहित किया जाए ;

(ढ) धारा 27 की उपधारा (1) के दूसरे परन्तुक के अधीन प्रत्येक वकालतनामे पर लगाए जाने वाले स्टाम्पों का मूल्य ;

(ण) धारा 27 की उपधारा (4) के अधीन स्टाम्पों के रद्दकरण की रीति ;

(त) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना हो या विहित किया जाए ।

36. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार, जहां समुचित सरकार हो, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों का कार्यान्वयन करने के लिए ऐसे नियम बना सकेगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए गए नियमों, यदि कोई हों, से असंगत न हों ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात् :–

(क) धारा 11 के खंड (च) के अधीन भेजी जाने वाली नियतकालिक और वार्षिक रिपोर्टें ;

(ख) वह प्ररूप और रीति जिसमें वार्षिक लेखा विवरण और वार्षिक रिपोर्ट धारा 13 की उपधारा (1) के अधीन तैयार किए जाएंगे ;

(ग) धारा 14 के खंड (छ) के अधीन रखे जाने वाले प्ररूप, रजिस्टर और अन्य अभिलेख ;

(घ) वह प्ररूप जिसमें अधिवक्ताओं का कोई संगम, धारा 16 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन राज्य विधिज्ञ परिषद् को मान्यता के लिए आवेदन कर सकेगा ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा धारा 16 की उपधारा (4) के अधीन मान्यता प्रमाणपत्र जारी किया जाएगा ;

(च) वह प्ररूप जिसमें कोई अधिवक्ता, धारा 18 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन निधि के सदस्य के रूप में प्रवेश के लिए आवेदन करेगा ;

(छ) वे सिद्धांत जिनके अनुसार निधि के किसी सदस्य को संदेय रकम में से धारा 18 की उपधारा (12) के अधीन कटौती की जाएगी ;

(ज) धारा 24 के खंड (ख) के अधीन निधि के सदस्यों और उनके आश्रितों के लिए चिकित्सीय और शैक्षिक सुविधाएं देने की रीति ;

(झ) धारा 24 के खंड (च) के अधीन दिए जाने वाले अन्य फायदे ;

(ञ) धारा 25 की उपधारा (2) के अधीन अपील का प्ररूप ;

(ट) धारा 26 की उपधारा (1) के अधीन मुद्रित और वितरित किए जाने वाले स्टाम्पों का मूल्य और डिजाइन ;

(ठ) वह प्ररूप और रीति जिसमें धारा 26 की उपधारा (5) के अधीन स्टाम्पों के लेखे रखे जाएंगे ;

(ड) पच्चीस रुपए से अनधिक स्टाम्पों का मूल्य, जो धारा 27 की उपधारा (1) के पहले परन्तुक के अधीन विहित किया जाए ;

(ढ) धारा 27 की उपधारा (1) के दूसरे परन्तुक के अधीन प्रत्येक वकालतनामे पर लगाए जाने वाले स्टाम्पों का मूल्य ;

(ण) धारा 27 की उपधारा (4) के अधीन स्टाम्पों के रद्दकरण की रीति ;

(त) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना हो या विहित किया जाए ।

37. नियमों और अधिसूचनाओं का संसद् और राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाना – (1) केन्द्रीय सरकार द्वारा इस अधिनियम के

अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और धारा 32 के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना, बनाए जाने या जारी किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा/रखी जाएगी । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उक्त सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम या अधिसूचना में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा/होगी । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए या अधिसूचना जारी नहीं की जानी चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा/जाएगी । किन्तु नियम या अधिसूचना के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(2) राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम और धारा 32 के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना बनाए जाने या जारी किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के, जहां इसके दो सदन हों, प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां ऐसे राज्य विधान-मंडल में एक सदन हो, उस सदन के समक्ष रखा जाएगा/रखी जाएगी ।

38. व्यावृत्ति – इस अधिनियम के उपबंध, उन राज्यों को लागू नहीं होंगे जिनमें अनुसूची 2 में विनिर्दिष्ट अधिनियमितियां लागू हैं ।

अनुसूची 1

[धारा 21(1) और धारा 32(1) देखिए]

निधि के सदस्य के रूप में वर्षों की संख्या	संदेय रकम की दर
(1)	(2)
30	30,000 रुपए
29	29,000 रुपए
28	28,000 रुपए
27	27,000 रुपए
26	26,000 रुपए
25	25,000 रुपए
24	24,000 रुपए
23	23,000 रुपए
22	22,000 रुपए
21	21,000 रुपए
20	20,000 रुपए
19	19,000 रुपए
18	18,000 रुपए
17	17,000 रुपए
16	16,000 रुपए
15	15,000 रुपए
14	14,000 रुपए
13	13,000 रुपए
12	12,000 रुपए
11	11,000 रुपए
10	10,000 रुपए
9	9,000 रुपए
8	8,000 रुपए
7	7,000 रुपए
6	6,000 रुपए
5	5,000 रुपए
4	4,000 रुपए
3	3,000 रुपए
2	2,000 रुपए
1	1,000 रुपए

अनुसूची 2

[धारा 32 (2) और धारा 38 देखिए]

1.	उत्तर प्रदेश अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1974 (1974 का 6) ।
2.	बिहार राज्य अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1983 (1983 का 16) ।
3.	मध्य प्रदेश अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1982 (1982 का 9) ।
4.	दि आंध्र प्रदेश एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1987 (1987 का 33) ।
5.	दि उड़ीसा एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1987 (1987 का 18) ।
6.	राजस्थान अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1987 (1987 का 15) ।
7.	दि तमिलनाडु एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1987 (1987 का 49) ।
8.	दि गुजरात एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1991 (1991 का 14) ।
9.	दि गोवा एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1995 (1997 का 2) ।
10.	दि असम एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1998 (1999 का 18) ।
11.	दि महाराष्ट्र एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1981 (1981 का 61) ।
12.	हिमाचल प्रदेश अधिवक्ता कल्याण निधि अधिनियम, 1996 (1996 का 14) ।
13.	दि केरल एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1980 (1980 का 21) ।
14.	दि कर्नाटक एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1983 (1985 का 2) ।
15.	दि वेस्ट बंगाल एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1991 (1991 का 13) ।
16.	दि जम्मू एण्ड कश्मीर एडवोकेट्स वेलफेयर फंड ऐक्ट, 1997 (1997 का 26) ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145
2.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
3.	भारत का सांविधानिक इतिहास – (103वां संविधान संशोधन तक) – श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
4.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व – डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2024	कीमत रु. 2,500
2. भारत का संविधान (पाकेट एडीशन)	2024	कीमत रु. 325

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ` 2,100/-, ` 1,300/- और ` 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को ऑन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष **:** 011-23385259, 23387589, फैक्स **:** 011-23387589, ई-मेल **:** am.vsp-molj@gov.in